शासनकलक्षी विविध विषयक ग्रथमाला पुष्प पहिला।
सर्वकल्याण प्रकाशन-१
णमोत्थु ण समणस्स भगवओ महावीरस्स ।

श्री

जैन धर्मका विज्ञान

卐

लेखक

कर्म साहित्य प्रकाण्डवेता सयममुर्ति स्व आराध्यपाद

श्रीमद् विजयप्रेम सूरीश्वरजी म.

युगघर परमोपकारी भवोदधितारक परमशासन प्रभावक सुविशाल

गच्छाधिपाति आराध्यपाद गुरुभगवत श्रीमद् विजय

रामचन्द्र सूरीश्वरजी महाराजाके

शिष्य

पू. मुनि श्री भुवनचन्द्र विजयजी म

प्रकाशको

कीर्तिपाल एस कापडीआ
ठे घडीआली पोल कोलाखाडी
वडोदरा

अरविंद एम पारेख
ठे ९१ कृष्णगली स्वदेशी
मारकेट मुम्बई-२

अर्पण भावना

जडवादके जमानेमें-अजोड-अडग-शास्त्र सिद्धांत-शुद्ध सामाचारी संरक्षक-सम्यग्दर्शनप्रदानप्रकाण्डकुशल-परमोपकारी-मेरे भवोदधितारक-आराध्यपाद गुरुभगवंत-समर्पगच्छाधिपति आ. भगपंत श्रीमद्

विजय रामचन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा

केतारक गुरुदेव पू. **विजय प्रेमसूरीश्वरजी के** महान गुरुदेव **पू. विजयदान सूरीश्वरजीको** अपने पट्टधर बनानेवाले प्रौढप्रतापी निःस्पृहशिरोमणि पू. **विजय कमल सूरीश्वरजी महाराजा** और वीसमी सदीके अजोड प्रभावक पू. **विजयानन्द सूरीश्वरजी महाराजा** अपरनाम **न्यायाम्भोनिधि पू. आत्मारामजी म.** साहिब-दोनों बडदादागुरुके हस्तकमलमें **'जैनधर्मका विज्ञान'की** हिंदी आवृत्ति अर्पण करता हुआ प्रमोद पाता हुं.

चरण किंकर

बाल भुवनचन्द्रकी

कोटिशः वन्दनावलि

अस्तर पेज २ से शूरु

वदी चतुर्थीए-वर्ष ८२, प्रारंभे, खीलवी युवानी शुद्ध धर्मोपिदेशे, पाटवीरकी प्रकाशे, वाणी धीर गंभीर आत्माकी. राजते भावहितसे, दोसो शिष्यके सार. गर्जना रक्षाकी, साथ वीरका साथमें. कीर्ति विमला भुवनत्रये, कांति निर्मला ज्योत्स्ना सही.

गुरुराज राजे **विजय रामचन्द्र सूरीश्वरा** बाल हैये **भुवनका**

चंद्रसम उज्वला

शतकोटि वंदना.

परमोकारीके चरणारविंदमें

'बाल' भुवनचन्द्रकी

बीसवीं सदीके अजोड शासन प्रभावक, कुमत-अन्धकार निवारक सत्यतत्त्वगवेषक, पंजाबदेशोद्धारक, न्यायाम्भोनिधि श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वरजी महाराजा

अपरनाम पू. आत्मारामजी म. साहेब जीनकी पाटपरंपरामें पू. विजयरामचन्द्र सूरीश्वरादि ३०० श्वेतकमल वीतराग शासनकी सुरभि फैला रहे हैं

कोटिशः वन्दनावली

मिलापचन्द चेतनदास नाहटा

निस्पृहशिरोमणि, प्रौढप्रभावी अनेक राजवीप्रतिबोधक.
अनुपम निडर वक्ता सिद्धांतरक्षाकटिबद्ध श्रीमद
विजयकमल सूरीश्वरजी महाराजा

जीन महापुरुषके प्रथम पट्टधर सकलागमरहस्यवेदी
पू. पा. श्रीमद् विजयदान सूरीश्वरजी महाराजाका विशाल
शिष्यगण भारत वर्षमें शासनका जयनाद् गजा रहा है.

कोटिशः वन्दनावली
पतंगकुमारी मिलापचंद नाहटा

श्री वीतरागाय नम

बीसवी शताब्दिके अनुपम शासक संरक्षक ।

सत्यगवेषक–शास्त्र समर्थक–नीडर व्याख्याता वादी गज केसरी–न्याय–अभोनिधि आराध्यपाद–परमगुरु भगवत, महान जैनाचार्य– **स्व. श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वरजी महाराज**

"आत्मारामजी महाराज साहेब—

माने ?

उनकी पांचमी बेठक पर विराजमान समर्थ शासन संरक्षक आराध्यपाद.

"श्रीमद् विजयरामचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज उनके शब्दोमे

"भगवान श्री जीनेश्वर देवोके आदेशानुसार शुद्ध मार्गकी प्राप्ति, रक्षा और प्रभावना के लिए अत्यत कष्ट-परिश्रम उठानेवाले । बीसवी शताब्दिके अनुपम महापुरुष–

जन्म जैनेतर कुलमें और पिता तत्कारण वश सरकार की हाजरीमें । पुण्योदय होने से रक्षा हुआी । जहाँ देव वीतराग, गुरु तो निग्रन्थ, धम अहिंसा और त्यागमय ऐसा सुनने मिला । उक्त रक्षण था । स्थानकवासी गृहस्थ । उनके पिताके मित्र– उक्त सम्प्रदाय के मान्य सामयिक प्रतिक्रमणादिका अभ्यास । उसीमेसे वैराग्य की भावनाका जन्म और स्थानकवासी दीक्षा ।

सदाचार का सुन्दर पालन । स्वाध्याय मे बडी लगन । तत्व के स्वरुप को जानने की उत्कठा । उसमेसे सत्यासत्यका निर्णय मानसिक शक्ति । उक्त सम्प्रदायमे उस वक्त व्याकरणको व्याधिकरण माना जाता । व्याकरण सीखा नही जाता था । आगम–सख्या ४५ मे से ३२ मानी जाती थी । यद्यपि ३२ में "मूर्ति" का उल्लेख तो सही । जयपुरके सम्प्रदाय भक्तो को

और सलाह प्राप्त हुई थी। "तुम व्याकरण मत पढो।" "अगर पढोगे, तो तुम्हारी बुद्धि बिगड जायगी।" परन्तु पुण्य पुण्यका और क्षयोपशम क्षयोपशम का कार्य तो करते ही रहते है।

मिल गये **रतनजी** स्थानकवासी साधु। परन्तु मान्यता में मूर्तिपूजक। स्वयम् सूत्रों के अर्थ निर्युक्ति-भाष्य चूर्णि-टीका आदिके अनुसार करते। श्री **आत्मरामजी महाराज** उनके पास पढने लगे। सत्य अर्थ समज गये। व्याकरण भी आवश्यक लगा। पढे हुए सूत्र रतनचदजी के पास फिरसे पढे। गुरु आज्ञासे विहार करके अलग हो जाना पडा। परन्तु अशुचि-शुद्धि, मूर्ति नीदासे दूर रहनेका इत्यादि आत्मोन्नतिकारक मुल मन्त्र मिल गये।

प्रशसा बढती चली। प्रकाश फैलाता चला। संप्रदायके बडे पूजनीय अमरसीघजी भी आकृष्ट हुए। स्वयम् व्याख्यान सुननेके लिए शिष्य-वर्गके साथ गये। व्याख्यान सुननेके लिए पंजाब वहावरा बन चुका था। अद्भुत शक्ति थी उक्त बानीमें सत्य सनातन मिल जाय, बादमें पूछना ही क्या? १९२३ की यह बात अमृतसरकी भगवतीजीकी बलवत्तर व्याख्यान और वह भी सटीक। तद्दन नक्कर ठोस सत्यका उच्चारण हुआ। "जो लोग पूर्व आचार्योंकी अर्थ प्रणालीको छोडकर, मन कल्पित अर्थ करते हैं। उनकी परलोकमें गति नहीं होगी।

बस! यह सुनते ही अमरसिंघजी का दिभाग बिगड गया—पारा चढ गया। अपने शिष्योंको भी ज्ञान देनेकी बात हवामें उड गई। स्थानकवासी श्यालकोट के अग्रेसर उपस्थित थे। मनका आवेग निकाला। आजकल आत्माराम को बहुत अभिमान आ गया है।

परन्तु मैं उसका अभिमान नष्ट कर डालुंगा । मारे सामने उसकी क्या मजाल ? गृहस्थ समजदार था । अमरसिंघजी को समझाया । "आत्मारामजीके साथे चर्चामें नहीं पडना अगर चर्चा करोगे तो हमारे मतकी जड उखाड डालेगे ।" मुझे तो पूरा विश्वास है कि आत्मारामजीको उत्तर देनेकी किसीमे भी क्षमता नही हैं ।

एकबार आत्मारामजी महाराजको एकाँत स्थलमे मिले । "तू तो हमारे सम्प्रदायमे रत्न है । असिलिए तो अपनेमे फूट पड जाय ऐसा तुझे न करना चाहिये । उसका स्पष्ट और ठोस उत्तर मिला । 'शास्त्रोमे पूर्व आचार्य, महात्मा—जो कुछ कह गये है, असिमे विरुद्ध प्ररुप–कथन मैं कदापि नही करूंगा । मैं आपसे भी प्रार्थना करता हूँ कि सत्यासत्यका निर्णय आप भी कर ले । और असत्य जिद छोड दो । क्यो कि यह मनुष्य जन्म बार बार नही मिलता है ।

अिस घटनाके बाद श्री आत्मारामजी महाराजने पद्धतिसर सम्यग् मार्गका प्रचार करना शुरु किया । यह बात की जानकारी अमरसिंघजीको तो मिल ही गई । उग्र कार्यवाही की गई । ऐसी भावना भरे पत्र निकाले कि किसीने भी आत्मारामजीको रहेनेका आवास और गोचरी कुछ नही देना । कठिन कसोटी हुअी । परन्तु घरमे ही फूट थी । सचमुच थोडेसे साधुलोग श्री आत्मारामजी म. के पक्षमे थे । ज्ञान प्राप्त करनेकी भी तमन्ना थी । अिस समय श्री आत्मारामजी म । देहलीके आसपासके गावोमे घुमते थे । विहार करना भी बडा कठिन था । दृढ निर्णय शक्ति और फिरसे पंजाबकी ओर लौटे । सत्यकी भावना जगी और साधु–महात्मा अमरसिंघजी

को छोडकर आ गये श्री आत्मारामजी-म-के पक्षमें। विप्लवमें खलबली मच गई। और वह था सत्यके शरणमे।

पजाबमें शास्त्रशुद्ध मार्गका प्रचार सन् १९३२में लुधियानामें शुद्धमार्गके ठेकेदार अिकट्ठे हुअे। साधुओंकी प्रार्थना। सद्‌गुरुका स्वीकार करके फिरसे दीक्षा। शेत्रुंजय-गिरनारकी यात्राओंका स्वीकार। लुंधियानासे मारवाड, आवू, अचलगढ। भोंयणीजीसे महमेंदावाद वहांकी जैन जनताने भव्य हृदयसे स्वागत किया। परन्तु यह पुरुप तो थे सत्यमार्गी। खोज डाले **पू. बूटेरायजीको**।

एक वार अिस महाशयजीको मूर्तिवादमें परास्त कर डाले थे। बादमें पहुंचे महातारक **तीर्थराज शेत्रुंजय**। "अब तो पार भये हम," साधो। उस उक्तिका गौरवपूर्ण उच्चारण किया। वहांसे फिरसे लौटे अहमेंदाबाद। पू. बूटेरायजी—म. का बने शिष्य। उनके साथमें थे अन्य सोलह व्यक्ति। किसीको लगी पृथ्वी घुमती गोल।

पहली बार आये थे उस समयसे मार्गकी रक्षा गुरु हो गई थी। गृहस्थ गुरु। नाम था शान्तिसागर। मस्तक पर पगडी, हाथ पर अंगुठी, फलक पर वैठते थे। जैन मतके नाम पर कुमत चलाता था।

अपने आपको महाज्ञानी मानता था। पू. आत्मारामजी-म-ने वना दिया चूप। पू. श्री १९३२मे सवेगी दीक्षा प्राप्त कर चुके। १९५२में काल धर्म कर गये। बीस वर्षके समयमें महाशासनके शुद्ध धर्मको देठावान और जोशीला-सुन्दर बना दिया।

पट शिष्य पू. श्री लक्ष्मीचन्दजो (विसनचदजो) आदिके साथ चातुर्मास अहमेदावादमे फिरसे सिद्धि-गिरि गीरनार । चातुर्मास भावनगरमे । वर्षाऋतुके बाद पुन सिद्ध गिरि आदि । पुन पजाव । सच्चा हुआ बीज प्रफुल्लित करना पडेगा न । पानी पहुँचा । जोधपुरके श्रावकोका पत्र ३५ स्थानवासीके साथ चर्चा । पहुँचे जोधपुर । परन्तु एक दिन पहले ही, साधुओं ३४ साधु जोधपुरसे प्रस्थान कर चुके। शेप जो रह गये थे, सत्य समझकर शिष्य बने ।

स्थानकवासी स्थानमे एक घटना घटी पजावमे । दो निरस स्थानकवासीओमे, अनाजमें जीव मानने वाले । या न माननेवाले । जो नही मानते थे, उनके साथ चर्चा, पादरी और ब्राह्मण पन्डितोकी मध्यस्थी, अजीव मत गलत ठहरा ।

जोधपुरमे ५० घर श्रध्धावान थे । पू श्री की पवित्र—वानीके प्रभावसे बने ५०० । १९४२ का चातुर्मास उन्होने सुरतमे किया । हुकममुनिका मागसे विपरित प्रचार चालू था । अध्यात्म नाम पर सत् क्रियाका लाप करने लगे । फिरसे एक ग्रन्थ रचा था । ग्रन्थमेसे पू श्रीने १४ प्रश्न निकाले । मांगे उनके प्रत्युत्तर । सतोप कारक उत्तर मिले कहाँसे ? सुरतके सघ द्वारा प्रश्नोत्तर भेजे । "श्री जैन एसोसीयेशन ओफ इन्डीया पर । सस्थाने जैन शास्त्र ज्ञानके अभिप्राय प्राप्त किये । हुकम मुनि ठहरे जुठा । सुरतकी सस्थाने ग्रन्थको गलत सबूत कर दिखाया । अप्रमाणित घोषित किया ।

ऐसा भी एक प्रसग जेठमलजी स्थानक वासी साधुका "सम्यक् तत्त्वसार" नामक ग्रथ लिखा । पू श्रीने "सम्यक् त्वशल्योद्धार" ग्रथ बडी भाषामे लिखा ग्रथ प्रकट हुआ ।

गलत केसकी धमकी दी गई। परन्तु पू. श्रीका गुंजारव और सामने वाला पक्ष चूप हो गया।

उनका "तत्व निर्णय प्रसाद तत्वादर्शन इत्यादि ग्रंथ। पूजा-स्तवन-साहित्य इत्यादि अनोखी प्रतिभा बतलाते है। अनोखा खजाना है। और भावोत्पादकता अनोखी है। महापुरुषकी नम्रता लघुता आदि वैसे है। ग्रथके अंतिम भागमें लिखा है- दृष्टि दोष, मतिमन्दता, अनाभोग, प्रमाद और आलस्यके कारण जिनाज्ञा विरुद्ध कुछ लिख पाया हो, तो उनको खोजनेकी सिद्धांतज्ञात कृपा करें।

यह तो हुई साधारण बात, पू. श्रीके खमीर और सात्विताका एक उदाहरण। परन्तु पू. श्रीने सरक्षण और प्रभावनाका कार्य कठिन कालमें किया। शासनका प्रवाह चालू रखा है। उसका मीठा फल आराधक वर्ग आज भी आस्वादी रहा है।

पू. पा श्रीका स्वर्गवास ज्येष्ठ सूद ७ मंगलवार -मध्य रात्रीमें हुआ। अग्निदाह अष्टमी पर हुए। इत्यादि अपेक्षितकृत स्वगवासका दिन मनाते है। विरुद्ध होने वालोने मृत्युको भी विकृत बनानेके लिए और पवित्र देहको बिगाडनेके लिए बहुत कोशिश की? परन्तु प्रखर पुण्यके पास किसकी मजाल! विष देनका गलत ओर बनावटसे भरे समाचार फैलाया। अधिकृत अधिकारी पर तार भेजा गया। श्मसान यात्रा विलम्बमे डालनके लिए-तलास हुई। युक्तियाँ रची। परन्तु निष्फल हुए। अग्नि दाह हा जाने पर भी व शान्त न हुए। खाककी भी छानबीन हुई। परन्तु परिणाम शून्य। निष्फल बन चुके। पवित्र खाकका स्वागत दर दर पर हुआ। गलत

ईर्षा और द्वेष कहाँ तक नीम्न कक्षा तक ले जाते हैं। उसका है यह ज्वलत उदाहरण।

पुण्य पुरुपकी पुण्यगाथाके आयोजन के लिए कहाँसे लाना क्षयोपक्षम। श्रेष्ठ शासन रक्षक, निडर सिद्धात प्ररूपक परम सत्यके महा गवेषक, नम्र धर्म साहित्य सर्जककी विरासत भी उतनी प्रबल और शासन समर्पित-प्रभावक पुरुप हुए। नि स्पृही महात्मा पू विजयकमल सू. म उनके अनन्य पटधर थे। महापुरुषके सुशिष्य पू वीर. वी म उपाध्याय पदको उज्वल बना गये। पू उ वीरवि म के अतेवासी-सकल-आगम रहस्य वेदी पू विजयदान सू म. और उनके भी सुशिष्य-कर्म साहित्य प्रकाँड वेत्ता। वैराग्य महोदधि पू विजयप्रे म सू. म. शासनके सघर्षके समयमे सुरक्षक रहे और स्वपर कल्याण साध गये। पू विजयप्रेम सू म. के महान् अतेवासी और भवोदधि तारक गुरु भगवत पू. रामचन्द्र सू. म. पू विजय कमल सू म इत्यादि चारो भगवन्तोकी नि सीम कृपा-आशीर्वादके कारण अद्भुत शासन सिध्धात रक्षा कर रहे है। 'व्याख्यान वाचस्पति'का गुरुदत्त शासन भक्ति बिरुद यथार्थ रूपमे विकसित, उत्तमकोटी पर दिखा रहा हैं। ऐसी अद्भुत परपरा के सर्जक और वि श्वतन्त्रके महा शासनका सर्वतोमुखी सरक्षक-प्रतापी महापुरुषके चरणारविदमे भावपूर्व कोटिश वन्दनावली.

बाल-भुवनचन्द्र की।

प्रौढ प्रतापी, सद्धर्म संरक्षक पू. आचार्य देव ।
श्रीमद् विजयकमल सूरीश्वरजी महाराज। ॥

यह थे अिस कालके लिए एक तेजस्वी पुरुष । **पू. विजयानंद** सू म. के अनन्य पट्टालकर । सुरक्षित हुअी शासनकी सुविधा उसके-अस्तित्व तक । बादमें आयी विनाशक असर जमानावादकी वह विचित्रता पहुँची गणवेशधारीओं तक। जिसका विघातक असर पडा आज तक ।

जन्म १९०८ सारसामे (पंजाब) । 'रामलाल नाम । ललाट भविष्य बोल दे। भविष्यके किसी भी महापुरुष अवश्य होगे । पिता रुपचन्द्रजी और यति किशोरचन्द्रजी दो थे मित्र। किशोरचन्द्रजी रामलालको देखकर आकृष्ट हुए । गद्दी सौंपने पर भी आमाद हुए। मित्र के पास याचना और प्राप्त होने पर प्रशंसा । बारह सालकी उम्रमें यतिदिक्षा सन् १९२० । अमरकोष और कल्पसूत्र कन्ठस्थ कर लियां । और व्याकरण भी शुरु कर दिया । आठ साल तक अभ्यास जारी रहां । परन्तु यति पद पर हुअी अरुचि । सही आग की उत्सुकता । उसमें फिर भी किशोरचंद्रजी—प्याजकी तरकारीके लिए भक्तामर और लहसुनकी तरकारीके लिए कल्याणमन्दिर संज्ञाओंका संकेत करे। परन्तु यति प्रविण। ट्रेझरीकी 'चावी सोंप दी । परन्तु रामलाल भी धर्मका लाला कैसे ही लालची बने ।

रामलाल पहुँचे जगराया **बीसनचन्द्रजीके** पास साधु स्थानकवासी परन्तु पू. आत्मारामजी म, के कारण पक्के मूर्ति पूजक । आप ही संवेगी दिक्षित **बने** और नाम **पू. लक्ष्मी विजयजी** म. स्थानकवासी दीक्षा जिरामें १९२९ । संवेगीदीक्षा अहमदावामें ।

पू कमल विजयजी महाराज त्याग भावना भी अनोखी ? 'फकडके भी फकड । कडी शरदीमे भी एक पतला आसन और सिर्फ एक ही चादर । तप तो आत्माका हो तेज और सयमका कवच । प्राय प्रतिदिन एकासणु और ठाम चौविहार वर्षों तक । स्वाध्याय भी अच्छा और सुन्दर । सुना गया है कि प्रतिदिन ५० श्लोक कठस्थ करते थे । कौमुदीव्याकरण और अध्यात्म शास्त्र जैसे कई ग्रंथ कठस्थ कर डाले थे ?

गुजरात मे कई साल तक भ्रमण करके, सिधारे गुजरानवाला, जहाँ रहते थे इच्छारसिंह भयकर आदत । बडी खुशीके साथ जानवरोको कटवाते थे । मांस तैयार करवाकर पचीस-पचासोके साथ जाफत करते थे । एक विनति पू श्री के पास आयी । साहेब ! ईच्छारसिंह को सुधारो तो महान उपकार ।

व्याख्यान स्थान के पाससे गुजराते समय ईच्छारसिंहको ले आये । पू श्री की राजऋषिके समान तेजस्वी व्यक्तिका आकर्पण अनोखा ही हुआ । मांसाहार विरुद्ध दीलस्पृशी उपदेश । "जो मांस भोजी होता है । उन पे सोलह सोलह हाथके नागके जुते गिरते हैं । सरदारने कहा, "पाला तो मेरे सर पर ही पडेंगे ।" क्योकि यहाँ तो मेरे सिवा ओर कोई मास भक्षक है ही नही । पू गुरुदेव —तुम्हारे शरीरमे एक ही कांटा चुभ जाय, तो सही नहीं जा सकता है, और जानवर के शरीर मे तीक्ष्ण भाला, बरछी भोकते हो तो अब आपकी क्या दशा होगी ? परभवमें आपकी इससे भी बडी भयानक दशा होगी ? सरदार सावचेत बनकर सरदार बने । आजीवन मांस भोजन न करनेकी प्रतिज्ञा ।

पू. श्री. मक्सीकाबाद (मूर्शीदाबाद)। सूना गया कि जैन जागीदारके मालिकोंके तालबोंमें मच्छलियाँ पकडनेका ठेका दिया जाता है। **राजा बुद्धिसिंहजी** आदिको बुलवाया। सख्त शब्दोंमें मृदु हितशिक्षा। तुम लोग ऐसी हिंसा करके कहाँ जाओगे? ऐसी हिंसा करना वो तो हिंसक पशुसे भी भयकर पशुता है। वैसा राक्षीपना छोडना आत्मश्रेय है। हिंसा वंद और वंद हुए कर्मोके वंधन। धाघलोसे पर थे पू. श्री। कराणा छोटा गाँव।

उसी स्थान पर बना स्वाध्यायका धाम। सिर्फ दिगंवरोंके ही घर थे। वहाँ किये चातुर्मास तीन। साधित किये रत्न तीन। सम्यक्-दर्शन, ज्ञान चारित्र।

परमोपकारी परम गुरु देव **श्री आत्मारामजी** ने १९५२ में कालधर्म प्राप्त कर चुके। आज्ञांकित शिष्योने वर्षों तक मनोमन्थन किया। अंतमे अति आग्रह पूर्वक सर्वतोमुखी सर्व सम्मति से पू. श्री की अनन्य पट्टालकार आचार्य पद पर नियुक्ति की। १९५७ महा सूद १५ गच्छाधिपति भी आप ही बन पाये। बिना आदेश उपदेशसे उध्धार किया इदर तीर्थ का। १९६०में वरौदाके सीयाजीरावको उपदेश। परन्तु प्रारंभ निश्चित करनेके लिए बड़ी दिकत। बारहव्रतधारी संगीतरत्न वैद्यराज वालभाई आदिके द्वारा।

बहुतसे स्थानों पर बहुतसी युक्तियाँ द्वारा मांसभक्षण बंद। बाहर ओटले पर बैठकर बगला आदि स्थानोंमें। गीनीओंकी प्रभावना-मासखमणादि-तपश्चर्या। बॉगलेकी विचित्र साध्वी। ससारी हालतमें विधवा होने पर माँस त्यागी और साध्वीपनमें

हरकत नही । पू श्री के प्रशात उपदेशसे परिवर्तन और छोडा मांसभक्षण । दावदा, उमेटा, मोगर देवास आदि स्थानोंके नरेशों पर सफल उपदेश ।

सुरतका सुन्दर प्रसग-पोलीस सुप्रीन्टेन्डेन्ट मुस्लीम पू श्री का सुना उपदेश । तापी नदीमे पाँच माइल तक मछलियाँ नहीं पकडनेका और झलरी नही बिछवानेका हुक्म । अतिउग्र पुण्य और पाप भी तत्कालिक फल प्रदान करते है। मुस्लीम अधिकारी थोडे ही समयमे कच्छके हाकेम ।

पाटणके फोजदार पू श्री के परिचयमे आये । अबदूल रसीहुलान अपने ज्ञाति भाईओसे कहते 'बीसमिल्ला उल रहेमान' उल रहीम" जिसका अल्लाह सभी जीवोंके प्रति रहम और दयालुवाला होता है, वह अन्य जीवोको हिंसा करनेकी मुक्ति कैसे द ।

चारित्र्य शुध्धि तो अनोखी ही थी । एक बार अशक्तिके कारण अवाक् बन गये थे । गृहस्थोओने भावावेशमे गादलेका उपयोग किया । स्वस्थ होते हुए ही ख्याल आया, "उठा लो यहाँसे अपने एक पतले आसन पर ही सोना पसद किया । भक्तोंकी बहुत चहल-पहल रहती थी । तुरन्त ही "मौन ।" अत्यधिक समय आत्मचिन्तन म । क्यो महायोगी थे न ? नि स्पृह पनका गुण बलवत्तर था । ठाक नजदीकके, नि स्व,थं भक्तिकारक अतेवासीको भी शास्त्र सिद्धातके बारेमे थोडी सी मुक्ति न द । मकम बने रहते । देवद्रव्यके विषयमे गुल्ला पडकार एक गणवेषधारीका और एक सप्ताहकको दिया था । भीम-कान्त गुणका प्रत्यक्ष दशन पू श्री मे होते थे । शासन समर्पितोकी और वात्सल्य अनुपम ही था । वैसे ही शासन

प्रत्यनीकोंके प्रति कटाक्ष भरी वड़ी दृष्टि रहती थी। यह था आचार्य पद शोभनकारी एक विशिष्ट महा गुण। अंतिम समाधि १९८३ महावद ६ जलालपुरमें।

प्रसगोंका ओर-छोर नहीं। चित्र आलेखन सक्षेपमें गागर में सागर भरनेका काम। माप दंडसे गुण महोदधि कैसे मापा जा सके? और गुणकारीके गुण अवश्य गाना चाहिये, बिना गाये रहा भी नही जा सकता है। क्षयोपशम अल्प। भावना प्रबल। इस महापुरुषका प्रत्यक्ष दर्शन विद्यार्थी अवस्थामें, इसके बहुतसी बार परिचय मगर अल्प प्रमाणमें।

पदवी प्रदान किया 'ज्ञानीमे'। पू. **विजयदान सु. म.** और **विजय लब्धि सु. म.** को सं. १९८१में। सुयोग्यकी सही कीमत करके शासन रक्षाकी सुन्दर भावभरी फर्ज अदाका प्रदान किया। उक्त प्रत्यक्ष दर्शनका प्रसग पुण्यमय और प्रभावशाली था। उक्त पू. विजयदान सू. म. के पट्ट प्रभा पू **विजयप्रेम सु. म.** और आर परमदयालुके पट्टालंकार पू. **विजयरामचद्र सु. म.** दोनों आराध्यापाद गुरु भगवन्तोंकी निःसीम भावदयाके कारण वीतराग भगवंतका महा शासनकी साधुता प्राप्त की। अलपांश भी उसको जीवनमें ओतप्रोत करनेके लिए प्रयत्न करता हुआ 'राम'का यह लघु शिष्य 'राम' की भाव आराम देती निश्रामे, बम्बई लालबागका आराधनमय उपाश्रयसे होते हुए, सं. २०३३ ना श्रावण सूदी ६ भृगुवार (शुक्रवार) भाव अर्पण कर रहा है।

कोटिशः कोटिशः वन्दनावली

बाल-भुवनचन्द्र की।

प्रभावक परमापि पू. श्री **विजयकमल सूरीश्वरीजीके**

चरणारविंदमें

णमो जिणसासणस्स

पूर्वकथन

अनत उपकारी परमतारक भगवान श्री जिनेश्वरोंने सर्व श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान और सर्वोत्कृष्ट आचारमय परम कल्याणकारी श्री वीतराग धर्मका उपदेश किया है। जिसकी आराधना के द्वारा भूतकालमे अनत आत्मा दुखकी परपरासे सर्वथा मुक्त होकर, बिना किसी प्रकार की बाधा, अनत सुख के स्वामी बने हैं। वर्तमान कालमे महाविदेह आदि क्षेत्रो मे अनेक आत्मा भगवान श्री जिनेश्वरके द्वारा प्रकाशित धर्मकी आराधना मे अपना सर्वोत्कृष्ट पराक्रम लगाकर घाति-अघाति कर्मो का क्षय करके शाश्वत सुखधामकी ओर बढते चले जा रहे है। भावीकाल मे अनन्त आत्मा इस रीतिसे सर्वज्ञ वीतराग भगवान श्री तीर्थंकर देवने जिस धर्मका उपदेश दिया है उसकी आराधना करके सिद्धि सुखके शाश्वत काल तक भोक्ता बनेगे इसमे कोई शका नही है।

सर्व श्रेष्ठ कोटिके आचारो और सर्वोत्तम विचारोका सुभग सुखद और मगलकारी समन्वय विज्ञान स्वरूप कहा जाता है। इस प्रकार का सम्यग् ज्ञान और सम्यक् क्रियारूप विज्ञान श्री जेन शासनके अतिरिक्त अन्य किसी स्थानमें

नहीं मिलता। इसलिये जैन दर्शन सर्वश्रेष्ठ कोटिके लोकोत्तर आचारो और सर्वश्रेष्ठ कोटिके लोकोत्तर विचारों की प्ररुपणसे करनेवाला लोकोत्तर धर्म-दर्शन है। इस से भिन्न जगतके तत्त्वज्ञान-विज्ञान और शिक्षण की बातें और संस्कारों अथवा संस्कृतियोंकी बातें केवल बातें ही है। 'विना मूल की शाखा की समान' मेरी माता वन्ध्या है।' इस प्रकारके वचनों के समान और 'आकाश कुसुम'के समान भ्रांतिमूलक हैं। शिक्षा-संस्कार और संस्कृति के तत्त्वज्ञानका जो सच्चा कल्याणकारी स्वरुप है उसको समझ कर आत्मा के अभ्युदय के लिये क्रांति अथवा उत्क्रांति के सत्त्वे स्वरुप को जानकर वास्तविक उन्नति लिये जितना भी पुरुषार्थ है वह जैन दर्शनके ज्ञान के विना तीन कालमे नहीं हो सकता। इस कारण केवल असार और दुःखरुप परन्तु सुखके आभास रुपमें प्रतीत होनेवाले पौद्गलिक सुखकी सच्ची पहचान जैन दर्शन के तत्त्वज्ञानको विना प्राप्त होना असभव है। इस कारण ही जैन दर्शनमें संसार के समस्त पौद्गलिक सुखोंको असाररुप प्रकाशित करके उनका त्याग को सच्चे पुरुषार्थ के रुपमें कहा है।

इस प्रकारके सर्व कल्याणकारी जैन दर्शन को समझने लिये सरल, रीतिसे लिखा हुआ प्रकृत प्रकाशन सच्चे मार्गदर्शक के समान है। 'गागरमें सागर' के समान जैन धर्मके तत्त्वज्ञानको प्रकृत पुस्तकमें सुबोध और सुवाच्य शैली से लेखक मुनिराजश्री भुवनचन्द्र विजयजी म. ने अत्यन्त सुन्दर और

बालोपयोगी सुबोध शैलीके साथ प्रवाहबद्ध रुपमे सकलित किया है।

यह प्रकाशन सचमुच मननीय प्रेरणादायी और बोधप्रद है। जैन धमके विज्ञान के विपयमे यह पुस्तक पाच विभागोंमें विभक्त है। इस पुस्तक के प्रथम विभागमें जन धर्मके तत्त्वज्ञान के विपयमे और उसके अनुष्ठान के विपयमे उपयोगी और उपकारक वस्तुओ का सकलन है जो श्री जैन धर्मके आराधक आत्माओके लिये अतीव उपयोगी है। इसी प्रकार सम्यग् ज्ञान और सम्यग् क्रियाके तत्त्वज्ञानका सुन्दर समन्वय इस विभागमे चर्चित हुआ है। अनित्य आदि १२ भावनाओ, मैत्री आदि ४ भावनाओ, पाच महाव्रतो, पाच समितियो, तीन गुप्तियो, और आठ प्रकारके कर्मों तथा महाप्रभावक तीर्थो इत्यादिके विपयो की सक्षिप्त किन्तु मर्मस्पर्शी विवेचना से यह विभाग समृध्ध बना है। इसके अतिरिक्त छे द्रव्यो के स्वरुपात्मक जैन तत्त्वज्ञान और उसकी आचार व्यवस्था का अत्यन्त सुन्दर और सर्वजनग्राह्य शैलीसे सकलन लेखक मुनिराजश्रीने यहा पर किया है।

पुस्तकके दूसरे विभाग मे जैन दृष्टिसे विश्व व्यवस्थाका का सुन्दर निरुपण देखा जा सकता है। ईसको जानकर सर्वज्ञ भगवानोने जैन धर्मकी तत्त्व व्यवस्थाका प्रकाशन किया है यह वस्तु सहज ही प्रतीत हो जाती है। अनन्त श्री तीर्थंकर

भगवानोंने भूत कालमें अपने अनन्त ज्ञान के द्वारा जिसका उपदेश दिया है और वर्तमान समयमें महाविदेह क्षेत्रमें सर्वज्ञ तीर्थंकर देव जिसका उपदेश दे रहे है और भाविकालमें अनन्तानन्त श्री तीर्थंकर देव जिसका उपदेश करेंगे: वह तीन कालोंमें अपने एक स्वरुपमें ही रहता है। उसमें किसी प्रकार का फेरफार नहीं होता। उनसे अर्थको जानकर भूतकालमें अनन्त श्री गणधर भगवानोंने उसको सूत्ररुपमें गूंथा। वर्तमानकाल में अनेक गणधर भगवान जिस द्वादशांगी की रचना करके अपने शिष्य-प्रशिष्योंकी परम्परा को दे रहे हैं और भाविकालमें अनेक भगवान गणधर जिसको सूत्र रुपमें देंगे वह अर्थरुपमें तीनों कालमें वही की वही रहेगी।

जैन दर्शन की यह सर्वज्ञमूलक परम्परा जिस त्रिकालाबाधित के साथ अविच्छिन्न प्रवाहसे वह रही है। उसके कारण यह परम्परा अनुपम तत्वज्ञान और आचार मूलक सर्व श्रेष्ठ और त्रिकालाबाधित सिद्ध होती है। जगतके तीनों लोकों का व्यवस्थित सत्य परिचय सिद्धान्त ग्रंथोंके गणितानुयोगनाम तीसरे अनुयोग में है। उसका निरुपण लेखक मुनिराजश्रीने रस भरी सुवोध शैली के साथ विश्वव्यवस्था नामक इस दूसरे विभागमें किया हैं।

तीसरे विभागमें लेखक मुनिराजश्रीने आवश्यक सूत्रोंके विषयमें गंभीर मनन के साथ पदार्थका स्वरूप प्रकट किया

है। वह अनुष्ठानोका आदर करनेवाले श्रद्धालु जीवोके लिये रस भरा है और भगवान श्री जिनेश्वर देवके परमतारक धर्मानुष्ठानके लिये दृढ श्रद्धाको उत्पन्न करनेवाला है और इसलिये अत्यन्त मनन करने योग्य है।

चौथा विभाग पुस्तकके समस्त विषयोकी सकलनाके शिखर पर कलशके समान अत्यन्त महत्वका है। जैन दर्शन के हार्द को समझनेके लिये और जैन दर्शनके सम्यग् मार्गसे विचलित करनेवाले वर्तमान कालके विषम वातावरणमे जो प्रश्न उठ खडे होते हैं उन सबका मर्मग्राही और शास्त्रीय समाधान अत्यन्त मनोमुग्धकारी और बाल भोग्य शैलीसे लेखक मुनि प्रवरने किया है। जिससे श्री वीतराग परमात्माके मार्गमें श्रद्धा दृढ होती है।

अन्तिम विभागमें जैन दर्शन शास्त्रके ग्रन्थोके विषयमें सुन्दर विवेचना करनेके अनन्तर जैन पर्वोकी महत्ता और उनके अनुष्ठानोके विषयमे उपयोगी वस्तुओका निरूपण है।

इस ग्रंथ रत्नके पांचो विभाग, वर्तमान कालके अल्पज्ञानी अज्ञानी और विशेषज्ञानी, समस्त जिनशासनरसिक धर्मात्माओं का अनन्त उपकारी परमतारक भगवान श्री जिनेश्वरदेवके शासनमें दृढ अनुराग प्रकट करनेके लिये आलबन स्वरूप है। इसके अतिरिक्त जो लोग अनन्त उपकारी परमतारक श्री वीतराग परमात्माके धर्ममे श्रद्धाको विचलित कर चूके हैं

अथवा जिनकी श्रद्धा विचलित हो रही है उनको श्री वीतराग देवके सम्यग् मार्गमें अविच्छाविक परिणत बनानेवाले है ।

संक्षिप्त होने पर भी विषयके निरूपण की दृष्टिसे महत्व-पूर्ण यह उपकारक ग्रन्थ द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरण-करणानुयोग और धर्मकथानुयोग रूप समस्त श्रुतज्ञान की वानगीका स्वाद दिलानेवाला है और जैन तत्त्वज्ञानके लिये प्रवेशद्वारके समान है ।

तत्त्व जिज्ञासु सभी आत्माओंको मनन-चिंतन और निदिध्यासन द्वारा जीवनकी आध्यात्मिक उन्नतिके लिये इस उपकारक ग्रन्थका अवलोकन अवश्य करना चाहिये ।

प्रस्तुत ग्रन्थरत्नके विषयोंकी योजनामें जिन्होंने प्रेरणा की है और जिन्होने उसके प्रकाशनमें आदिके अंत तक रस लिया है उन विद्वान श्री रत्नभूषण विजयजीकी शास्त्ररुचि प्रशंसापात्र है । वे परमपूज्य आगम ग्रथों और सिद्धांत ग्रथोंके लिखानेमें अत्यन्त उत्कृष्ट उत्साह दिखला रहे है । जो वर्तमान कालमें यांत्रिक युगकी हवासे विचलित होकर जैन सिद्धाँत ग्रंथों और श्रुतज्ञान की आराधना-रक्षा और प्रभावनाके प्रति शक्तिके होने पर भी उपेक्षा अथवा अवज्ञा करते हैं उनके लिये सचमुच वे प्रेरणारूप हैं ।

इन मुनिराजश्रीके अनुरागभरे प्रोत्साहनसे पू. परमतारक परमाराध्यपाद, परम शासन प्रभावक, व्या. वा., परमगुरुदेव

आ० म०, श्री विजय रामचन्द्र सूरीश्वजी महाराजके शिष्यरत्न विद्वान लेखक मुनिराज श्री भुवनचन्द्र विजयजीने अत्यन्त परिश्रमसे इस ग्रन्थरत्नकी रचना की है। उनका यह परिश्रम समस्त सुमुक्षु जीवो के कल्याण की कामनासे किया गया है इसलिये अत्यन्त बहुमान भरी प्रशशाके योग्य है।

पूज्यपाद गच्छाधिपति परमगुरुदेवश्रीके पट्टविभूषक प्रशात-मूर्ति विद्वद्वय आ० म० श्री विजयजितमृगांक सूरीजीके लिये समर्पित और उनके शिष्यरत्न विद्वान मुनिवर्य श्री रत्नभूषण विजयजीकी प्रेरणासे प्रसिद्ध होनेवाला यह ग्रन्थ समस्त आत्म-कल्याणकामी जिन शासन रसिक मुमुक्षु जीवोके लिये मोक्ष मार्गकी अनन्य साधन श्री रत्नत्रयीकी आराधनामे प्रेरक बनकर वर्तमान काल की विषमय विषम अवस्थामे सुदेव-सुगुरु और सुधर्मरूप तत्त्वत्रयीकी अत्यन्त सेवा-उपासनामें और अचल अनन्त अक्षय स्वरूप सिद्धि स्थानकी प्राप्तिमे सहायक बने — यही एक मगलकामना हैं।

आश्विन सुक्ला १० रविवार
वीर स २४९९
जैन ज्ञान मदिर
नाथालाल गम पारेख मार्ग
अरोरा पासे माटुन्गा
बम्बइ-१९.
दि ७-१०-७

निवेदक
पू पाद परमतारक परमकृपा सागर-परमगुरुदेव-गच्छाधिपति आचार्य भगवत श्री विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज श्रीका शिष्याणु आ वि
कनकचन्द्रसूरि

उपकार श्रेणि

यह बड़ा भाग्यकी अस्मिता है । सकलागम रहस्यवेदी पू. विजयदान सूरीश्वरजी महाराजाकी हमारे पू. दादाश्री चुनीलाल नरोत्तमदास कापडीआ पे भारी धर्मकृपाथी । वात्सल्य वारिधि चारित्र चूडामणि पू. विजयप्रेम सूरीश्वरजी महाराजाकी निःसीम धर्मकृपा हमारे पू वडील काकाश्री चिमनलाल चुनीलाल कापडीया और हमारे पू. पिताश्री सुंदरलाल चुनीलाल कापडीया (पू. मुनिश्री भुवनचंद्र विजयजी म.) में बरस रही थी । दीलका आनन्द कीसी तरहसे व्यक्त किया जाय ! समर्थ गच्छाधिपति परमोपकारी शासन संरक्षक पू. विजयरामचंद्र सूरीश्वरजी महाराजा हमारे पू. पिताश्रीके भवोदधितारक आत्मरक्षक और कृपादाता बन ही रहे हैं । हमारे सारे कुटुम्बके महान प्रेरणादाता है ।

और सुवर्णमें सुगंध भली । पू. प्रवचनदाता गुरुभगवन्तके विद्वान वक्ता और लेखक शिष्यप्रवर पू. श्री विजय कनकचंद्र सू. म.ने यह लघु ग्रन्थ 'जैन धर्मका विज्ञान' का पूर्वकथन लिखकर हमारी ग्रन्थ प्रकाशनकी पवित्रवृत्तिको घेरा प्रोत्साहन दिया हैं.

पू. आचार्यश्रीकी लेखनकला और इसमें भी न्यायवृत्ति अनुमोदना-प्रशंसा हम करें, इससे अलावा वाचकोंकी शुभ मनोवृत्तियें क्यों न छोडदे ?

कीर्तिपाल कापडीया
प्रकाशक.

प्रशान्तमूर्ति-स्वाध्यायरत-वाचनादक्ष
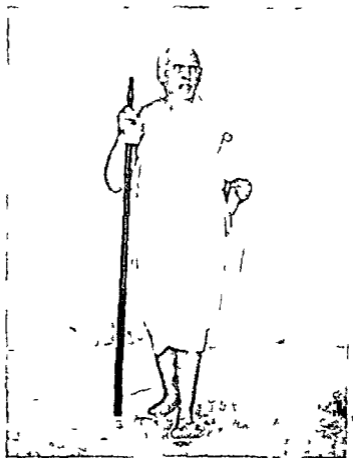
स्व. पू आ श्री विजय जितमृगाङ्क सू म को
कोटिश वन्दना

मिलापचन्द चेतनदास नाहटा मुलतान
पतगकुमारी मिलापचन्द , ,,

श्री जैन धर्म का विज्ञान

प्रथम विभाग

१. श्री जैनधर्मकी समझ

श्री जैन धर्म अनादि कालसे है। कभी भी न था ऐसा भी नही है। था, था और था होगा, होगा और होगा। काल एक साअिकिल है। अुसके भी दो पहिये। उत्सर्पिणि और अवसर्पिणि। प्रथममे रस कस और हृदयके भाव बढते रहे दूसरेमे घटते रहे। अब हम अवसर्पिणि कालम। अुसम पहले तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभदेव हुए। नाभिराज पिता और मरुदेवी माता।

अुस समय मनुष्य फलोका आहार करते थे फल बहुत स्वादिष्ट और शरीरको पुष्ट करनेवाले थे। नर जैसे वृक्षोमे रहते थे। न लोभ न अधिक क्रोध भी। नम्र और सादे और मिलजुल कर रहने वाले थे। वृक्ष कम हो गये। फल भी कम होने लगे। अनाज खानेका शुरू किया। अन्य और भी कलाएँ ऋषभदेवजीने सिखाअी।

भगवान ऋषभदेव स्वामि साधु हो गये। राजपाट छोडकर। भिक्षा देनेमे भी कोअी न समझे। एक वर्षके

उपवास हुए । वर्षी तपका पारणा श्रेयाँस कुमारने करवाया । निर्दोष गन्नेके रससे । परमात्मा श्री ऋषभदेवको सारे-विश्वका ज्ञान हुआ । देव-दानव-मानवको धर्म समझाया । कभी पशु पक्षी भी समझे । यह धर्म है. 'जैन धर्म' । राग-द्वेष और मोहके जीतने वाले श्री जिनेश्वरने कहा, अिसलिये 'जैन धर्म'। आत्माके दुश्मनोंको मार डाले अिसलिये 'अरिहंत' । 'नमो अरिहंताणं' 'अरिहंतोंको नमस्कार यह भी धर्म' । अिस तरह अिस समयमें धर्मका प्रारंभ हुआ ।

२. धर्म माने क्या ?

सरलता, सत्य और दया ये प्रारभका धर्म है । आत्माको पहचानना यह बडा धर्म है । यह शरीर और 'आत्मा' अलग है । शरीर नाशवत है । आत्मा अमर है । यह समझ ही धर्म । तत्त्वका ज्ञान भी धर्म है । आत्मा अनादि कालसे है । पाप-पुण्य के कर्म अुसे लगे हुए हैं । अिसलिये सुख-दुःख हैं । जन्म-मरण के दु ख बहुत भयकर हैं । अिसमैसे बचनेका मार्ग वही 'धर्म' । जन्म मरण बन्धनसे मुक्ति माने हमेश का सुख, सुख ही सुख । शरीर नही । शुद्ध सात्विक हमेशका नित्यानद, सदैवानद । ऐसे आनदको पैदाकर-साधन भी 'धर्म' ।

३ धर्मके साधन क्या ?

सबसे बडा साधन 'नवकार महामंत्र' देव-गुरु-धर्म तीनों अिसमें मिले । समझकर गिने अुसका सदैवका दु.ख मिटे ।

अरिहन और सिद्ध देव। आचार्य-उपाध्याय-साधु-गुरु उन पाचोंको भावसे नमस्कार यह भी धर्म।

अरिहन प्रारंभमे हम जैसे मानव। परन्तु बहुत गुणवन्त महामानव दुनिया की सुखकी खान छोडकर साधु बन जाय। पाच महाव्रत-बडे बडे नियमोंका पालन करे। कठिन तप करे। कैवल्य प्रकटे। मुक्तिका शुद्ध मार्ग बतलावे। क्रोध-मान-माया और लोभ के नाशका उपाय बतावे। बहुतसे आत्माओंको सन्मार्ग पर चढावे। बहुतोंको मुक्तिमे भेजे। स्वयम् तो जाय ही। अिसलिये 'अरिहत बडा उपकारी। सर्वश्रेष्ठ उपकारी। अिसलिए अरिहत 'देव'।

सिद्ध भगवत मुक्तिमे रहे। हमे भी मुक्तिमे जानेकी इच्छा हो जाय। अिसलिये वे भी उपकारी। 'नमो सिद्धाण' सिद्ध भगवन्तो को नमस्कार हो। अिस तरह अनत सिद्धोको सुबहमे नमस्कार करें। पावन हो जाअिये, कल्याण प्राप्त करे।

आचार्य शासनके सरताज। शासन माने धर्मका सुकान। हरकोअी योग्य व्यक्तिको तारे वह शासन। ईर्षा-कलहको नष्ट करे वह शासन। विश्वके प्राणी मात्रका कल्याण चाहता है, वह शासन। दुनियाको मर्यादामे रखता है, वह शासन। शासनकी स्थापना अरिहन्त करते हैं। रक्षण आचार्य करते है। आचार्य अरिहन्त के पदके प्रतिनिधि। प्रेम, भक्ति, करुणा, दयाके सागर आचार्य है। पाँच आचरणोंका पालन करे। पचाचारका

उपदेश दे। मुक्तिके मार्ग पर जीवोंको स्थापे। सद्गति और मुक्ति भी दे।

उपाध्याय अभ्यास करावे। आगम शास्त्र साहित्यका। सही ज्ञान प्रदान करे स्वाध्याय करे और करावे। ग्यारह अंग शास्त्र, बारह उपाँग शास्त्र, शेष बाओीस शास्त्र ऐसे पैंतालीस आगम–शास्त्रोके गहरा अभ्यासी जैन शासनके महामन्त्री।

साधु-महात्मा जैन शासनके सुभट। सच्चे रोनीया–पहरेगीर। स्वयम् जाग्रत और दूसरोंको भी जाग्रत रखे। जीवोंको धर्ममें खीचे, धर्मंमे सहायक बने। पाँच महाव्रतोका पालन करे। पालनेवालोंको मदद करे। स्वयम् मुक्तिमार्गकी साधना करे और दूसरोको साधना करनेमें प्रेरणा करे।

यह, पांचोंको किया हुआ, नमस्कार कल्याण करे। बहुत जन्मोमें किए हुए, बहुत पापोका नाश करे। पापोका नाश सबसे बडा मंगल। अिसलिए नवकार मन्त्र महामंगल। सर्वोत्तम सबसे ऊँचा आलंबन इसलिए

'सुमिरन करो, मन्त्र मंगलकारी नवकार"।

८. श्री जैन मंदिर और श्री जिनमूर्ति किसलिए ?

अरिहंत देवोंका अनंत उपकार। सुखी बननेका सर्व श्रेष्ठ मार्ग बतलाया अिसलिये। उस कृपालु नाथका सत्कार–पूजा

वह है प्रथम धर्म । दुनियामे भी उपकारीका सन्मान होता है। उपकार भूला नहीं जाता है । साधारण नौकरी दिलवा दे तो भी या खाने पीनेकी व्यवस्था करवा दे तो भी । अरिहन्त तो आज्ञाका पालन करे उसको स्वर्ग भी दे । सुख-शांति-ऋद्धि-सिद्धि दे । अंतमें मुक्तिमें स्थिर करे । क्या ! क्या ! करनेका मन न हो जाय । उसके लिए अनेक जीव प्रभुश्रीको पहचाने इसलिये मंदिरोकी व्यवस्था । सुंदर, स्वच्छ आलिशान, आँखको आकृष्ट करे ऐसी । प्रभुश्रीकी मूर्ति मनको आनंद देनेवाली ।, आँखे तरबतर हो जाय वैसी । समता रससे निष्पन्न । आत्माके तापको दूर करती । देहके दुःखोको भुलाती । आत्माके स्वरूपको समझाती । मुक्तिमार्गमे खींचती । धर्मके मर्मको समझाती है।

जिनालयमे सुखी आते है । दुःखी भी आते हैं । श्रीमंत आते हैं । गरीब भी आते हैं । सभीको प्रभु श्री अच्छे लगते हैं । मस्तक नवांते हैं । दिल झुकाते है । किये हुए पापोका, एकरार करते हैं । भूलोका पछतावा करते है । मनको पवित्र बनाते हैं । भगवानके बताए हुए माग पर चलनेका निश्चय करें । दान देनेका मन हो जाय । स्वभाव स्वच्छ और सरल बना दें । भंडारमे रुपया या पैसा डाले । शीलका पालन करनेका मन हो जाय । तप करना अच्छा लगे । नोकारसी, आयबिल, एकासना भी करें । खान-पानका शौक कम कर दें । उपवास-तीन उपवास भी करे । भावसे

विभोर हुआ दिल आनंद मग्न बने । यह संसार नाशवंत है । चिंताओंका कोई भी अंत नही । रोग भी बहुतसे हैं । चिंता-व्याधि अधिकसे भी अधिक । शांति मिलती नही है । दुःखके पहाड–सचमुच, संसार बुरा है । मुक्ति ही अच्छी है अिस तरह भावधर्मकी प्राप्ति होती है ।

५. स्वस्तिक या साथीया किस लिए!

चार पखवाला साथिया-स्वस्तिक । चावलका और मोतीका भी । चार गतिका नाश करनेके लिए-(१) मनुष्य (२) पशु-पक्षी वनस्पति (३) देव (४) नारक । ये चार गतियाँ । आत्मा चार गतियोमे घूमता है । बहुतसे दुःखोंमें भ्रमण करता है । क्या यह अच्छा लगता है ? इन सबोसे छुटकारा पानेका निश्चित सकल्प ही स्वस्तिक है, छूटनेका मार्ग तीन ढेरोमे 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग' अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्रसे मुक्तिका मार्ग मिल जाता है । सिद्धशिलाकी चंद्र जैसी आकृति, यह है सिद्धोंका स्थान वही है मुक्ति ।

६. सम्यगदर्शन माने क्या ?

दर्शन का अर्थ है श्रद्धा । सही चीजको सच मानना । गलत चीजको गलत मानना । रागद्वेषसे पर है अरिहत देव" । अिसलिए वह है सच्चे देव । मोह अंधकारमें डाले । सत और असतका ज्ञान न होने दे । रागसे चिकने कर्मोका बधन होता है । द्वेषसे ईर्षा कलह बढते है । पशु–पक्षी और नारकके

भवमे जाना पडे। वहाँ दुःख नही सहे जा सकते हैं। नये कर्मोका ढेर हो जाय। दुःखोकी परम्परा बढती हैं। अिस समझके साथ सही देवको मानना वही श्रद्धा है। अिस तरह कचन कामिनीका त्यागी-पचमहाव्रतधारी वही है गुरु। पच महाव्रतोंका पालन करें। निर्दोष भिक्षासे जीवन निभावे। सबोको सही माग पर ले चले। वह है गुरु। वह है साधु। वह है श्रद्धा। धर्म तो वही है जो अरिहत देवने कहा। भूत-भविष्य और वतमान-तीनो कालोका ज्ञान है अरिहतको। सर्वश्रेष्ठ सत्य प्रभु श्री ही कह सकते हैं। इसलिए वह कृपालुकी आज्ञा ही धर्म है। ऐसी पक्की मान्यता वही है दशन-श्रद्धा।

७ सम्यग्ज्ञान किसे कहा जाय?

श्रद्धापूर्वककी समझका अर्थ है ज्ञान। आत्माकी प्रगति कराता है, वह है ज्ञान'। सत और असतका भान ज्ञान कराते है। यह करने योग्य या यह न करके योग्य है। इसे खाना चाहिये इसे न खाना चाहिये। इसे पीना चाहिये, इस न पीना चाहिये। इसे पढना चाहिये, इसे न पढा जाय। इस प्रकारका विवेक बल 'ज्ञान' से प्राप्त होता है। आत्मा है। अनादि कालसे है। आत्मा और शरीर अलग अलग है। कर्मोके बोझसे आत्मा लदा हुआ है। कर्मोके कारण ही यह शरीर है। सुख पुण्यका फल है। दुःख पापका फल है। सुख-दुःखमें समभाव

रहे, वह है धर्म । कर्मको क्यों न आने दे । पुराने कर्मोंका नाश किस तरह होगा ? कर्मके बंधनसे मुक्त हो जानेकी युक्ति वह है धर्म । मुक्ति पाना वही है आत्माका ध्येय, नहीं हैं धन, दौलत या बगला प्राप्त करनेका । ये तो दुनियाके नाशवंत सुख है । यह समझ-भान वही है ज्ञान ।

८. 'सम्यक् चारित्र' क्या चीज़ हैं?

चारित्रका अर्थ है, कर्मोंका च्यवन—नाश । श्रद्धाके साथ लगे हुए ज्ञानसे आराधना—अमल । खाना आत्माका धर्म नहीं है । देहके अस्तित्वके लिए खुराक लेनी पड़ती है । इसलिए अभक्ष्य नहीं खाना चाहिए । अपेय नहीं पीना । न देखने योग्य न देखना । सुनने योग्य ही सुनना । मृदु स्पर्शमें आनन्द न मानना । सुगंधमें मोह न रखना । दुर्गंधमें द्वेष नही । शक्तिके अनुसार तप करना । दान शीलके प्रति आदर रखना इन सब सामान्य धर्मका पालन करना । यह चारित्र प्राप्त करनेका मार्ग है । चारित्र अमलमें साधुत्वमें है । पंच महाव्रतोंके पालनमें । पाँच समिति, तीन गुप्तियोंके रक्षणमें आगम शास्त्रोंके गहन तत्वको समझकर आचरण करनेमें । दुनियासे—दुनियाके व्यवहारसे दूर रहकर आत्माके अभ्यासमें सुखका त्याग, दुःखका आदर, यह है चारित्र ।

९. चैत्यवंदना किस लिए?

अरिहंत भगवानकी भक्ति दो प्रकारकी होती है । द्रव्यसे और भावसे अष्टप्रकारी सत्तरभेदी आदि द्रव्यपूजा । १ अभिषेक,

२ केशरयुक्त चन्दनसे नव अंगोमे पूजन, २ पुष्प, ४ धूप, ५ दीप, ६ अक्षत, ७ नैवेद्य ८ फल, यह है अष्ट प्रकारी पूजा। चैत्यवन्दनामे देवाधिदेव श्री अरिहंतके गुणगान होते हैं। पापसे भरे हुए अपने आत्माकी निंदा होती है। यह है भाव पूजा। अरिहंत भाव प्राप्त करनेके लिए।

१० सदैव गुरु वन्दन करना चाहिये

जैन शासनके गुरुदेव अर्थात् विश्वके दीपस्तंभ। समाजके सच्चे पथदर्शक। आत्माका पहरेदार, बिना वंदन हमारा दिन निष्फल मानना चाहिए। वन्दनसे नम्रताका गुण खिल उठता है। सत्सगसे गुण प्राप्त होते हैं। विवेक की जागृति होती है। वाणी सुननेका भाव प्रकट होता है। वीत-रागकी वाणी रागद्वेषकी गठबधन नम्र बनाती है। मार्गका भान होता है। मार्गानुसारी बननेमे क्षमता मिलती है, सत्य नीति, प्रामाणिकता अच्छे लगते हैं। लक्ष्मीका मोह टूट जाता है। धर्मकृत्यमे मन लग जाता है। शासनकी शान समझमे आने लगती है। धर्मका मर्म समझमे आ जाता है। श्रद्धा मजबूत बनी रहती है। आत्मामे परमात्मा होनेकी लगन लगती है। बस, सम्यक्त्व-निर्मल श्रद्धा प्रकट हो गई।

११ जैन शासनको समर्पित साधु महात्मा सम्यक्त्व पर भार किस लिए रखते हैं।

सम्यक्त्व, वह है मुक्ति महालयकी नीव। बिना सम्यक्त्व साधु, साधु नही है। श्रावक श्रावक नही है। पंच महाव्रत या बारह अणुव्रतोकी कीमत नही है। यदि हृदयमे सम्यक्त्वका

सूर्य न प्रकाशता हो, तो सत्यको सत्य मानकर प्रचार करना। जहाँ तक हो सके, उसका जीवनमें अमल करना और वह भी आगमकथित विधि आज्ञानुसार। आगम-नियुक्ति भाष्य-चूर्णि-टीका पचांगी है। उनमे सपूर्ण श्रद्धावन्त वह है साधु। श्रावक-श्रावक, शास्त्र श्रवण करे। विवेकसे त्याज्य क्या है और ग्रहण करने योग्य क्या है उसका भेद पहचान सके। क्रिया-अनुष्ठानमे सदा तत्पर रहे। सत्य क्या है। अनंतज्ञानी, सर्वज्ञ, भगवत श्री अरिहत जो विश्व कल्याणके लिए कह गये हैं- वह सकल विश्वको दु:खित स्थितिमें ही तीर्थंकर देव देखते है: इन्द्रादिदेव भी स्वर्गमें भी पूर्ण रीतीसे सुखी नही है। उनको भी वहांसे गिरकर मनुष्य पशु-या पछी के रूपमें जन्म धारण करना पडता है। जन्म मृत्यु दु:खकी खानें है। आधि - व्याधि - उपाधि ये तीन प्रकारकी दु:खकी आग है। रागसे वहुत जन्म। द्वेपसे वहुत जन्म। क्रोध तो श्याम रग का सर्प है। लड्डूको भी विष वना दे। मान और सान भी ठिकाने न रहे। माया छिपी हुई नागिनी जैसी है। लोभका कोई अन्त भी नही है। सागरको मर्यादा है लेकिन लोभको नही। काम-विषयेच्छा तन-मन-धन-प्राण और आत्मा पाँचोंकी घातक है। आगामी भवोमें दु:खके पहाड खडे कर दे। वैसा है वडा भयकर संसार। उसका त्याग है श्रेयस। ससार त्याग का क्या अर्थ है? लक्ष्मीका लालच कीर्तिका मोह, सगे सवंधियोकी भावना-लगनी छोड देना-इन सवोको छोडना उसीका नाम है संसारका त्याग।

पचमहाव्रतधारी साधु बनना। अगर न हो सके तो क्या ?
बननेकी भावना रखकर प्रयत्न जारी रखना। उसके लिए
श्रावकके बारह व्रतादिका पालन करना, साधुओंकी निर्दोष-
सौम्य-शान्त भक्ति करना। इस तरह ससार बुरा और मुक्ति
एक ही अच्छी। यह जीवन सूत्र। इस सूत्रसे बधा तो
गृहस्थाश्रममे भी सुखी बनेगा। दुःखमे भी दुर्ध्यान नही।
सुखमे सागर जैसा गभीर। मन मुक्तिमे। देह ससारमे
आत्मा साधुत्वके लिए तडपता। नव तत्त्वोका अध्ययन करता।
कोई भी काय, बिना सम्यक्त्व अच्छा नही बन पावेगा।
क्या उसके अच्छे फलाकी प्राप्ति हो सकेगी ? क्या धर्मको धर्म
कहा जाय ? ऐहिक पारलौकिक भाव बिनाका धर्म भाव,
अरिहत कथित हो सम्यक्त्व। सम्यक्त्व माने आत्मदीप।
ससार समुद्रमे तरनेका जहाज।

१२ गुरु अनादिके-गुरु मुखसे पच्चक्खाण किसलिए।

आज धारासभाका चुनाव होता है। पक्ष व्यक्तिको पसद
करता है। टिकट देता है। चुनाव होने के बाद व्यक्ति प्रधान
बनता है। अपितु राष्ट्रपति आदि शपथ विधि करवाते है।
किस लिए ? पेढी या फर्म रजिस्ट्रेशन मांगती है। उसका मन
सहज पच्चक्खान लेनेसे विशेष परिपक्व हो जाय। मनोबलमें
दृढता आती है। व्यवहारमे सरक्षण मिलता है। प्रामाणिकताकी
जागृति रहे। पापका भय और उनका परिणाम आंखके सामने
रहा करे। पच्चक्खान गिरते हुएको बचाने वाली पुण्यकी नाव,
आत्माके लिए पहरेदार है।

१३ व्याख्यान–शास्त्रवाणी प्रतिदिन सुनना !

खाना–पीना प्रतिदिन ! वैसे ही वे पदार्थ ? वैसी ही वे चीजे ? क्यों उदासी नही ? शरीरको रखने के लिए या जीभके आस्वादके लिये ? शरीरका अधिष्ठाता मालिक तो 'आत्मा'। पुण्य या पाप उसके लिए ! सुख दुखका भोक्ता वह बनेगा। उसके रक्षणके लिए कौनसी खुराक है ? पापसे बचनेके लिए और भयंकर कुकृत्योसे रक्षण पाने के लिए कौनसा साधन है ? वीतरागकी तारक मार्गदर्शक वाणी। उस वाणीमें वीरता और धैर्य भी है। स्वर्ग अपवर्ग मुक्तिके मार्ग भी है। साधुत्वका सुन्दर सायन्टीफीक आकर्षण भी है। गृहस्थत्वके योग्य चावी भी है। जिनके भक्त जैनोंकी परख भी है। अहिसा और सत्यकी शुद्ध व्याख्या भी है। दान–दयाके झरने भी है। सत्य–नीति प्रामाणिकत्वकी सुरेख भी है। क्या सुन्दर तत्त्व उसीमें नहीं है। श्रावकके मुख्य कर्तव्य। सद्‌गुरु मुखसे श्रवणद्वारा आह्लादक बनते हे। वानी तो वीतरागकी ही।

१४. सामायिक का क्या रहस्य है ?

क्या थका हुआ आदमी अपने घर नहीं आता है ? श्रम दूर करके विश्राम पाता है न ? सामायिकमें आत्मा अपने घरमें वैठता है। अपने सम्यक्त्वके गुणोका भोक्ता बनता है। संसार क्षणभर भूल सकता है। ससारकी जहरोली-झझट से

छुटकारा पाता है। उसको रागद्वेषका वातावरण छू नहीं सकता है। अरिहतका ध्यान होता है। पाप जाता है। कर्म नष्ट होता है। पुण्यका उदय होता है। 'समणो इव हवइ सावओ'। साधु जैसा श्रावक बनता है, सिर्फ अडतालीस मिनटके लिए। अगर भावना जीवन भर लेनेकी, साधुत्वका स्वीकार करनेकी, हो तो सामायिक आत्मगुणका अनुभव है। ससार सागरमे मधुर झरना है। श्राविकाओके लिए, अनुकूलतासे हो सकने वाली सुन्दर धर्मसाधना है।

१५ क्या प्रतिक्रमण अति आवश्यक है ?

प्रश्नमे उत्तर अतरगत है। शास्त्रमे सुबह और शामके "प्रतिक्रमणको" "आवश्यक" शब्दमे ही बतलाया है। गणधर भगवान भी आवश्यक सूत्रोकी रचना प्रथम करते हैं न ? वह प्रतिक्रमण शामको होगा। किये हुए दोषोसे पीछे हटनेकी क्रिया बिना हिचकिचाये। अपने हृदयके भाव प्रकट करना। अर्थकी विचारणाके साथ मनमे किए हुए अपराधोकी नाखुशी अपने पामरत्वका ख्याल। रास्ते चलते किये हुए जीवोकी हिंसाका अफसोस चोरासी लक्ष जीव योनिकी ओर क्षमापना। अठारह पापोकी मिथ्या दुष्कृतत्व। फिरसे न बन पावे इसलिए शक्य सावधान रखना। देव स्तुति—गुरुवदन। सद्ध्यान, श्री सघकी शाति समाधिके लिए समकिती देवोको जागृत रखना। यह है प्रतिक्रमणकी पावन क्रिया, स्वपर हितकारी जागृतिके आदोलनको जीवन्त रखने वाली।

१६. रातमें सोते समय क्या करना ।

प्रश्न सरल है। साधु महात्मा तो स्वाध्याय करते है। पोरिसी पढाते हैं। चार मंगलमय उत्तम तत्वोंको याद करते है। उनका शरण स्वीकारते है। आहार उपाधि देहको मर्यादामें बाँधकर अंतमें त्याग करवाते है। नमस्कार महामन्त्रका स्मरण करते हुए समाधिका स्वीकार करते हैं। सुश्रावक गृहस्थ भी अपनी मर्यादामें यह विधि जरुर कर सकते हैं। अतमें सारे दिनमें किए हुए पापोंको यादकर पछतावा करते है। सभी जीवोंकी ओर मैत्री करुणा भाव प्रकट करते हैं। किसीके साथ कलह-कंकास हुआ हो तो सुबहमें उठते समय क्षमापन कर देते है। सोते समय निर्मल भावना सेवते अरिहंतके ध्यानमें रहे। कदाचित् देह त्याग हो जाय तो भी सद्गति हो जाय।

१७. "सुबहका कर्तव्य"

बडी सुबहमें जेसे ४ और ५के बीचके समयमें उठना चाहिये। इसलिए स्वास्थ्यकी रखवाली भी हो जाय। उठते समय अरिहंत और सिद्धोंका स्मरण करो। फलत: न करना पडे भव भ्रमण। आत्मामें हो जाय रमण। प्रतिदिन रागद्वेषका गमन हो जाय। मुक्तिमें हो जाय आत्माका गमन। प्रतिक्रमण आदि होना चाहिए।

१८. प्रातः पूजा-दर्शन-वदन

दर्शन दुरितका-पापका नाश करता है। दर्शन परम तारक देवाधिदेव श्री अरिहन भगवन्तका। हाथमे चौदह सुपन युक्त रजतकी जरीयान युक्त डिब्बी-बटुआ। अक्षत फल नैवेद्य शक्तिके अनुसार तो होता ही है। मिठाओी-मेवा खाने वाले, मिठाओी-मेवा भी लेकर जाय। चाहे बदाम या शक्कर भी लेकर जाय। प्रात पूजा वासक्षेप और धूपसे। हाथ-पैर अगादि शुद्ध करके शुद्ध वस्त्र पहनकर, बिना मूर्तिको वासक्षेपसे पूजा करें। स्पर्श ऊपर से चैत्यवदन स्तवन करना। गुरु महाराजकी उपस्थितिमे वदन-पच्चक्खान। पच्चक्खानका पारना न। हो तो सामायिक अगर पारना हो तो जिसके पीछे व्याख्यान श्रवण करना चाहिये।

१९. मध्याह्न पूजा भक्तिका रंग

हाथमे सुन्दर रजतका थाल। भीतर केसर-बरास-कस्तुरीका माल। सुगध बहाने वाले पुष्प। शक्य हो तो गायका दूध, सुन्दर, मुलायम स्वच्छ अंगोछा। फल, नैवेद्य आंखोको अच्छा लगे वैसा। अक्षत नुकुला। निसीहिके कहने पर प्रवेश करो। रास्तेमे ससारकी बाते नही। तीन प्रदक्षिणा करें। तीनों जगतके नाथ है न ? दर्शन-ज्ञान चारित्र लेना है न। देव-गुरु धर्मको हृदयमे स्थापित करना है न। बरास मिश्रित केसर घिसकर तैयार करें। ओरसींयाकी भी जयणा करके।

पंचामृतसे प्रक्षाल करें। अंगुछा से स्वच्छ करता जाय। आत्माका मैल अनादि कालका उतरता जाय। धन्य जैन शासनकी प्रक्रिया।

अकेला बराससे विलेपन करे। बादमें नव अंगोंमें पूजा करे। नवो अगोंकी चमत्कृतिआँ दोहोंके द्वारा हृदयमें धारण करे। पुष्पोंसे शरीरको शृंगार करे। सोना-चांदीके वर्क-बादला यथाशक्ति उपयोगमे ले। धूप दशांगका। धूपदानी चाँदीकी तेजस्वी। शुद्ध घी का दीप मानो के कैवल्य ज्ञान की ज्वलंत ज्योत। अक्षतका स्वस्तिक। आज भी सुवर्ण से रचित अक्षतका स्वस्तिक करने वाले हैं। राजा श्रेणिकका अल्प अनुकरण धन्य। स्वस्तिक विश्वका कल्याण करो,। मेवा मिठाइयोंके थाल भरे हुए हैं। फल बिलकुल कीमती होना चाहिए। इस तरह अष्ट प्रकारी पूजा विधि की जाती है। सब प्रकारके पापोंका नाश होता है। हमारे अपने कार्य सिद्ध होते रहते हैं। और हमें भी आत्मामें शान्ति मिलती रहती है। इस तरह मुक्तिपद तक हमें पहुँचा देते है। भाव पूजा हमें भवसे तारती है। संगीतके स्वर आत्माको जागृत बनाते है। ससार अलग कर देते है। मोहका नाश करे। आत्माका कल्याण करे। भकित मुक्तिकी दूती है।

२०. व्यापारके लिये भी फुरसत

पेट सब कुछ कराता है। पेट खटखटाहट करती है। साधु बननेको अशक्त आत्माको शरीर निभानेके लिए पोषण

चाहिये न। धनवानको तो व्यापार-धधेकी जरुरत नही। या लोभ कहाँ जा कर ठिकता है ? और लोभके प्रति घृणा भी नही है। पोषणके लिए, नौकरी, व्यापार, धधा या कुछ न कुछ काम करना ही पडता है। न्याय नीति या प्रामाणिकतासे धन उपार्जन करना। अपितु इस समयमे कैसे। हा, इस समयमे भी सिद्धात वह सिद्धात ! अविचल और अकाट्य है। परन्तु निर्बल अनिवार्य स्थितिमे क्या करे इसका कोई ठिकाना नही। अपितु सिद्धात अचल रहता है। निर्बल भी हृदयका तो सच्चा परन्तु सयोगोके वश बनकर दु खित दिलसे कमजोर। अतमे, अति धन लोलुपतासे पेटको भरनेके लिए क्या नही होता है।

२१ लक्ष्मी पुण्य के अधीन।

लक्ष्मी या वैभव, सुन्दर, तन्दुरस्त शरीर या अनुकूल कुटुम्ब, मान, कीर्ति या यश, ये सब तो पूर्व भवके पुण्यके अनुसार मिलता ही है। स्थायी रहता है, उपभोग भी हो सकता है। पूर्वजन्ममे किये हुए पवित्र कार्य, पुण्य। किये हुए दुष्कर्म ही पाप। पुण्यका फल सुख। पापका फल दु ख। बडे पुण्यके कारण मेहनत बिना भी प्राप्ति होती है। सामान्य पुण्यके कारण थोडा सा उद्योग करना पडे। पापमिश्रित पुण्य अनीति करावे। लक्ष्मी तो बिलकुल अस्थिर है। थोडे समयमे धनवान, थोडे समयके बाद गरीब कगाल बन जाय। अतमे तो चाह जितनी दौलत हो, तो भी यहाँ रखकर ऊपर जाना है। इसके लिए पाप-प्रपच कपट इत्यादि। ऐसा कर कहाँ जाना दुर्गतिमे। इसलिए कहा, "न्याय सपन्न विभव।" पैसे कमाना हो तो न्यायमे। धन्नाजी भी अपनी आमदनी छोडकर चले

जाते हैं। भाईयोंके संतोष खातिर। बल्कि जहाँ जाय वहाँ लक्ष्मी आगे ही खडी रहती और भाई उनके भीखारीके भिखारी। इसके भेद 'पुण्य' और पाप। 'धर्म घटे धन जाय' बिना किसी आशासे किया हुआ धर्म अवश्य रक्षण करता है। "धर्मो रक्षति रक्षितः। धर्मका संपूर्ण पालन करो। धर्म कौल देता है। जहाँ तक मुक्ति न मिले वहाँ तक 'सुख' सुख और सुख। ऐसे सुखमें भी पागल न बनने दे यही धर्म। पुण्य धर्मका बच्चा है।

अिस तरह दिनचर्याका अल्प विचार किया। अब पहचानेंगे श्री तीर्थंकर देवोंको! महाभाग गणधर भगवन्तोंको। ज्ञानकी पूर्ण कक्षावाले पूर्वधर भगवन्तोंको, और शासन रक्षक समर्थ सूरीश्वरोको।

२२. श्री तीर्थंकर भगवन्त कितने ?

प्रवाहके अनुसार श्री तीर्थकर भगवन्त अनंत ? इस अवसर्पिणीका २४। श्री ऋषभदेव भगवान, श्री अजितनाथ, श्री संभवनाथ, श्री अभिनंदनस्वामी, श्री सुमतिनाथ, श्री पद्मप्रभस्वामी, श्री सुपार्श्वनाथ, श्री चंद्रप्रभस्वामी, श्री सुविधिनाथ, श्री शीतलनाथ, श्री श्रेयांसनाथ, श्री वासुपूज्यस्वामी, श्री विमलनाथ, श्री अनतनाथ, श्री धर्मनाथ, श्री शांतिनाथ, श्री कुंथुनाथ, श्री अरनाथ, श्री मल्लिनाथ, श्री मुनिसुव्रतस्वामी, श्री नमिनाथ, श्री नेमिनाथ श्री पार्श्वनाथ, श्री महावीर स्वामि। चौबीस तीर्थंकर विश्वका कल्याण करें कल्याण करे। भव्यात्माओंका तारक जयवंता वर्ते। जय हो।

बडी शांतिकी एक गाथा—ॐ ऋषभ-अजित-सभव-अभिनंदन-सुमति—पद्मप्रम—सुपार्श्व-चन्द्रप्रभ-सुविधि-शीतल –

श्रेयाँस-वासुपूज्य-विमल-अनत-धर्म-शाति-कुथु-अर-मल्लि-मुनि-सुव्रत-नमि-नेमि-पार्श्व-वधमानाता जिना शाता शातिकरा भवन्तु स्वाहा ।

भगवत श्री ऋषभदेव स्वामी पहले तीर्थंकर, पहले साधु, पहले राजाको हमने प्रारभमे ही याद कर लिया । सोलहवे श्री शातिनाथ भगवान । अुन्होने पूव भवमे कबुतरको बचानेके लिए अपनी जानकी कुर्बानी दे दी । देवोने पुष्प वृष्टि की । इन्द्रने आकर प्रशसा की । यह अद्भुत चरित्र पढने योग्य है ।

बाअीसवे श्री नेमिनाथजी । बालब्रह्मचारी भगवान । श्री कृष्णका पिताके सबन्धसे भाअी । स्वयम् विवाह करना चाहते नही । अपितु रसमके अनुसार बारात निकालने दी । पशुओंके रक्षणका निमित्त बनता है । राजिमतीके शहरसे वापस लौटते हैं । जिसमे राजिमतीको पूर्व भवका सबन्ध याद आ जाता है । गिरनार पर दीक्षा अगीकार । मातापिताको समझाकर कि मुझे भोगकर्म छूट गये हैं । कैवल्यज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है । राजिमती साध्वी बन जाती है । वह पहले मोक्षमे जाती है । भारतवर्षकी अति भव्य गाथा है । त्याग और सयमके गीत गाती । रहनेमि और राजीमतिका प्रसग आता है । अद्भुत शील और प्रबोधन ।

तेईसवे विश्व विख्यात श्री पार्श्वनाथ भगवान, शरीरका रग हरा था । ऐसे ही तीर्थंकरोका शरीर अद्भुत होता है । कान्ति तेजस्वी होती है । कमठ तापसके अग्निकुण्डमे सपको बचाते हैं । नौकर स्वामीके हुक्म से नवकार मत्र सुनाता है । सर्प मरकर धरणेन्द्र होता है। स्वामी बागमे नेम राजुलका चित्र देखते हैं । दीक्षा लेते हैं। रानी प्रभावतीके अश्रु सतत

बहते हैं। स्वामी जंगलमें काउसग्ग मुद्रामें है। वनहाथी आता है। नाथके चरणोंमे पानीसे प्रक्षालन करता है। चारों ओर कमल बीछवाता है, कलीकुंड नामक तीर्थ बनता है। वह कमठ मर कर मेघकुमार देव होता है। स्वामिकी नासिका तक जलकी वृष्टि करता है। स्वामी ध्यानमें निश्चल है। धरणेन्द्र स्वप्रिया सह आता है। मेघमालीको डराता है। मेघमाली स्वामीकी शरण स्वीकारता है। बस, दस भवका वैर शान्त होता है। सम्यक्त्व प्राप्त होता है। अपकारी पर भी परमोपकार। कमठ और धरणेन्द्र पर भी समभाव। न राग न द्वेष। केवल ज्ञानकी प्राप्ति के बाद मुक्तिमे सिधारे।

२३ 'भगवन्त श्री महावीर देव'।

चौवीसवें तीर्थपति। शासनके सिरमोर। नाथके भव २७ माने जाते हैं। सम्यक्त्व प्रगट हो जाय उस समय से। पहले भवमे 'नयसार' नाम था। अुनके कर्तव्य बडे अच्छे। अुनके वहाँ भूखो को अन्न मिलता था। अुनका व्रत था अतिथिसत्कारका। गुरुजनोंका विवेक और विनय बहुत। प्रतिदिन मातापिताकी भक्ति करे। राजाके विश्वस्त मित्र और सारे शहरकी देखभाल रखते थे। राजाके लिए लकडियाँ लेनेके लिए जगलमे भी जाते। उसके साथ खान-पान नौकर भी बहुत रहते थे। दुपहरी ढली साढे बारह बजे होंगे। भोजनकी तैयारियाँ हुअी। क्या अतिथि है? किसे दिया जाय? भयकर जगलमे अतिथि भी कहाँ मिल जाय। परन्तु अन्यको दिए बिना स्वयम् नही खाते थे। डेरेके बाहर जाकर तलाश करते थे। अगर कोई भूला भटका मानव या सन्यासी मिल जाय। पवित्र भावना जगलमै भी मंगल खडा कर देती है। दूर सुदूर

महात्मा देखे गये। वे बहुत श्रमित और पसीनेसे तरबतर थे। तुरन्त ही धूपमें भी स्वयम् सामने चले। नमस्कार करके कुशल पूछी। आपश्री ऐसे भयंकर जंगलमें कहाँ आ गये।

सार्थको कह कर 'गोचरीके लिए गए। सार्थ चला गया। रास्तेमें भूले पड़े। सार्थपति पर नयसार को क्रोध आ गया। परन्तु 'शान्त पापम्' कह कर मनको शान्त कर दिया। बहुमान पूर्वक डेरे की ओर ले चले। साधु निर्दोष भिक्षा लेते हैं। वृक्षके नीचे जाकर अपनी क्रिया विधि करते हैं। बादमें आहार पानीका उपयोग करते हैं। नयसारको यह प्रक्रिया देखकर बड़ा आनंद आता है। स्वयम् रास्ता दिखलानेके लिए जाते हैं। साधुओंको नयसारका आत्मा बड़ा अच्छा लगता है। पूछते हैं क्या हम दो शब्द कह सकते हैं। खुश होकर कहो, अपना शिष्य समझकर फरमाइये। वृक्षके नीचे बैठना है। सुदेव-सुगुरु सुधर्म का स्वरूप समझाता है। संसारकी भयंकरताका ख्याल कराता है। पुण्यके सुन्दर परिणाम। पापके घातक दुःख। क्षणभंगुरता जीवनकी, लक्ष्मीकी चंचलता, इत्यादि समझाते है। आत्माका शुद्ध स्वरूप और मुक्तिका ध्येय हृदयमें स्थापित करते है।

गद्गद् कंठसे विनति करता है और पैरोंमें शीश झुकाता है। महाभाग अर्ज करता हूं। परमोपकार हुआ। मेरा उध्धार हुआ अपूर्व खजाना दिया। आप मेरे गाँव पधारे। मेरी सर्वस्व धन दौलतका आप स्वीकार कर लें। 'हम हैं जैन साधु, हमें कुछ न चाहिये' धर्ममें कुशल बनो। दानके भाव बढ़ाते रहो। 'धर्मलाभ' साधुओंने रास्ता लिया। नयसार दृष्टि पहुँच सके वहाँ तक देखता है। हृदय आनंदकी हिलोरें ले रहा है।

समाधिमरणसे स्वर्ग सिधारे । वहाँसे भगवन्त ऋषभदेवका पौत्र मरिचि बनता है । स्वामीकी एक ही देशना सुनकर दीक्षा लेता है । उच्चकोटिका संयम पालन । परन्तु किसी भी भवका पापोदय रुकावट करता है । दुःख सहा नही जा सकता है । त्रिदंडीका वेष पहनता है । पैरोमें पादुका । गेरुए रंगके वस्त्र । सिर पर छत्र इत्यादि । अपनेको निर्बल, कषाय-युक्त मानता है । अपितु चलता है, प्रभुजीके साथ । उपदेश मार्गका ही देता है । और साधु बननेके लिए स्वामी के पास भेज देता है। परन्तु भावी विचित्र है । बीमार पड गए । सवेगी साधु सेवा न करे यह बात-समझता जानता है। शिष्य बनानेका मन होता है । 'अड़ियल प्रकृतिका' कपिल मिल जाता है । प्रभुके मार्गमें ही धर्म है । परन्तु यहाँ भी है । उत्सुत्र बोलता है, भवभ्रमण बढता है । बाद कितन ही भवोमे मनुष्य और देव भी बनता है । मनुष्यमें त्रिदडी बनकर तापस बनता है ।

अतमें विश्वभूति राजकुमारके रूपमे जन्म लेकर दीक्षा लेता है। फिरसे सम्यकत्व प्रकट होता है । परन्तु मानसे क्रोध उत्पन्न होता है, नियाणा करता है । किए हुए महाधर्मकी बिक्री करके विनिमय करता है । ऊंची आराधनामे उग्र पुण्य पैदा हुआ है । विनिमय फल देता है । त्रिपृष्ट वासुदेव त्रिखडका मालिक महाराजा बनता है । शक्तिके केफ में शेर को फाड डालता है । सत्ताके गर्वमे शय्या पालकके कानमे गर्म सीसेका रस डालता है । मरकर नरकमे सिधारे । नरकसे शेर और फिर नारकी ।

महाविदेहकी मुका नगरीमें चक्रवर्ती राजा बनता है । साधुताका पालन करके स्वर्गमे । नदन राजा राजर्षि बनता है ।

बीस पूज्य स्थानोकी आराधना करता है। लक्ष वर्षके संयममें एकादश लक्षसे भी अधिक, मास मासके उपवास करता है।

'सवि जीव करु शासनरसी'की उच्च भावना। आत्माके प्रत्येक प्रदेशमे। तीर्थंकर बननेका निश्चित हो गया। देवलोकमे सिधारे। वहाँसे बयासी दिन ब्राह्मणकुलमे देवानंदा माताकी कुक्षिमे रहे। हीनगोत्र कर्मका भुगवटा पूरा हुआ। यह भी क्या ?

मरिचिके भवमे भरत चक्रवर्ती महाराजाके स्वयम् पुत्र था न ? त्रिदंडी बने भी न ? श्री ऋषभदेव भगवानके मुखसे सुनने मिला, भरत महाराजाको। मरिचि त्रिदंडी चौवीसवाँ तीर्थंकर भगवान महावीर बनेगे। भरत प्रसन्न हुए। वंदन करते हुए, कहते है। त्रिदंडीत्वको मैं नही नमन करता हूँ। भावी तीर्थंकरत्वको प्रणाम करता हूँ। प्रथम वासुदेव आप ही होंगे। मुका नगरमे चक्रवर्ती भी। बस। कुल अभिमान हुआ। मेरा दादा प्रथम तीर्थंकर। पिता प्रथम चक्रवर्ती। मैं प्रथम वासुदेव—फिरसे चक्रवर्ती और बादमे तीर्थंकर अहा धन्य मेरा कुल। नाचे, कूदे और अधिकाधिक प्रसन्न भी हुए। हीन गोत्रकर्मका आत्माको बंधन हुआ (आत्मा, कर्म, असका बंधन आगे विचार करेंगे) व्यवहारमे ब्राह्मण कुल क्षत्रिय-वणिक आदिके आगे जिस तरह अच्छा माना जाता परन्तु भिक्षुक वृत्तिके कारण सूक्ष्म दृष्टिमे हीन माना जाता है।

पहले देवलोकमे (देवलोकादि विश्वव्यवस्थामे समझाऐंगे) देवेन्द्रने आज्ञा दी। सेनापति हरिणैगमेषीने गर्भ पलटा किया। माता त्रिशलाकी कुक्षिमे स्थापित किया राजवी सिद्धार्थके

वहाँ। गर्भ पल्टा साइन्टिफिक क्रिया है। उसमें विशेष आश्चर्य भी नहीं है और यह तो देवशक्तिकृत। बिलकुल तकलीफ नही। ज्ञात भी न हो। कुदरतकी कला ज्ञानी ही समजे।

नाथका जन्म हुआ। ५६ दिक्‌कुमारिकाएँ शुचिकर्म करें। ६४ इन्द्र मेरु पर अभिसिंचन करें। सब युक्ति गम्य। विज्ञान भी मंजूर रखे। मेरु कपनमें बीलकुल आश्चर्य नहीं। ये तो है, अतुलित बलके पुण्यबलके मालिक तीर्थंकर देव। देवेन्द्रोंसे पूजित अवधिज्ञानसे युक्त। जन्मसे वैराग्य सम्पन्न बचपनमें अधिक बल। स्वर्गमें इन्द्र प्रशंसा करें। न समझनेवाला देव परीक्षा करने के लिए आता है। साँप बना। फेक दिया। पिशाच बना। एक ही मुष्ठि प्रहारसे सीधा कर दिया। क्षमा याचना करके लौट गया। मातापिताने वर्धमान नाम रक्खा। इन्द्रने महावीर नाम रक्खा। अपितु विनय–नम्रताका कोई अंत नहीं।

मातापिता मोहसे पाठशाला भेजनेके लिए जाते है। यह तो है अवधिज्ञानी। अध्यापकके प्रश्नोके उत्तर कर डाले इन्द्रके पूछनेसे। यौवन खिल उठा। वैराग्य भी। त्रिशला माता व्याह करवा देना चाहती है।

परन्तु वैरागीके पास कौन बात कहेगा ? मित्रोंकी ताकतके बाहरकी बात है। उनका बूता नहीं कि ऐसी बात कह सके। अंतमें माताकी प्रेम भरी लगन से लाचार बनता है। भोग कर्मका अस्तित्व संसारमें खींच जाता है। पत्नी यशोदा भी अितनी उच्च समझवाली आदर्श स्त्री पात्र।

मातापिता स्वर्ग सिधारे। अट्ठाओस वर्षकी आयुमे संयम लेनेके लिए तैयार। क्योंकि अभिग्रह पूरा हुआ। यह भी क्या चाल गर्भमे मातृभक्ति से स्थिरता की थी। माता अत्यंत शोक मग्न हो जाती है। आक्रंद करती है। हलनचलनके साथ प्रतिज्ञा करना है। 'मातापिताकी उपस्थितिमे 'साधु' न बनना। याद रक्खो। मोहनीय कर्मका भी अंत किया जा सकता है। तोडते समय भी बहुत उलकापात मचने वाले थे। तीर्थंकर का औचित्य अपमानित होने वाला था। अिसलिए अभिग्रहकी आड रख ली थी। बडोंके आशय भी बडे और पर उपकारके लिए। माता पिताके अवमान के बाद दीक्षा ले ली जाय। ऐसी प्रतिज्ञा लेने के लिए कितने तैयार हो सकते हैं। महाज्ञानिओंकी प्रतिस्पर्धा न करे। अुनकी आज्ञाका पालन ही हमारा धर्म।

बडे भाओी नन्दिवर्धनकी आज्ञासे दो वर्ष अधिक रह गये अपितु जीवन भावसाधुत्वका था। उनतीस वर्ष पूर्ण होने पर वर्षीदान। तीस वर्ष समाप्ति के बाद संयम। बहुतसे परिसहो-दु:ख सहन किये। उपसर्ग देव-मनुष्य-तिर्यंचोंके किये हुए सह लिए। राग-द्वेषको नष्ट भ्रष्ट कर डाला। चंडकोशियेने दंश दिया परंतु उसको आठवें देवलोकमे भेजा गया। पापी संगमने बीस उपसर्ग एक रातमे किये तो भी उस पर करुणासे आंख गीली हुई। कटपूतना व्यंतरी शीतमे ठंडा पानी छिडकती है। उसको भी सम्यक धर्ममे मग्न कर दी। और वह गोशाला भयंकर आग छोडकती तेजोलेश्या प्रभुजी पर रखे। उसको भी साधु द्वारा समकितकी सामग्री दे दी। कानमे कीले लगा दिये गोपालने। वणिक पुत्र अ र वैद्यने सुश्रुषा की। दोनों पर समभाव दिखाये। धन्य है स्वामीकी समताको और धैर्यको।

स्वामी कैवल्यज्ञान प्राप्त करके चराचर विश्वके संपूर्ण ज्ञानी प्रवुद्ध वने। समवसरणमे बैठकर देशना दी। साधु वनने योग्य कोओी आत्मा नही। विना साधु गणधर भी कहाँ ? विना गणधर शासनकी अनुज्ञा भी किसको दी जाय ? पहुँचे अपापापुरी। गौतम इन्द्रभूति चर्चा करनेके लिए आये। उसके सभी सशय तोड डाले। पॉच सौ शिष्य वृन्दके साथ स्वामीके चरणोंमें साधु वने। अन्य दस भी वडे के पीछे उसके ३६०० मिलकर ४४०० वने।

नाथने तत्त्वज्ञान दिया। 'उपन्नेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा' त्रिपदी मिल गई। बीज वुद्धिके नाथ ग्यारह महानुभाव पुण्य-पुरुषोने बारह अगकी रचना की। स्वामिने शासनके तीर्थकी अनुज्ञा दी, लब्धिनिधान गणधर भगवत गौतम स्वामिको। बहुतसे देशोके राजा राजकुमार-सेठ-लक्ष्मीनदन इत्यादिने बोध प्राप्त किया। साधु, श्रावक और उच्चकोटीके मार्गानुसारी सद्गृहस्थ वने। चदनबाला-मृगावती अैसी राजकन्याएँ-राज रानियॉ भी सयम ग्रहण करके मुक्ति पा गई।

भगवत पावापुरी सिधारे सोलह प्रहर अडतालीस घटे भरकी सतत देशना दी। बहुतसे पूछे गये या नहीं पूछे गए प्रश्नोके भी उत्तर दिये गये। भारतवर्षका धर्म-भावी भी कहा। अयोगी वने। अदेही भी बने। अजन्मा वनकर अव्या-बाध अनत मुक्तिसुख प्राप्त किया। अनतशः वंदनाएँ नाथके श्री चरणोंमें।

२४. गणधर भगवंतोंकी गीति

प्रथम गणधर गुरु गौतम नमु। नाथ पर स्नेह बहुत। स्वामीके पास नम्र सेवक बने। मानो छोटे बालक। पूछे प्रश्न

पर्षदामे । उत्तर प्राप्त करके बहुत हर्षित बने। स्वलब्धिसे गिरि अष्टापद पहुँचे । लौटते समय पद्रह सौ तापसो को प्रतिबोध किया । पद्रह सौ भी ज्ञानी बने । गौतमजी रहे छद्मस्थ । विषाद होता था । स्वामी सुनाते ये "आपण होशु तुल्ला बने । देवशर्मा को प्रतिबोध करता है। लौटते समय जाना, नाथ मुझको अकेला रखकर चले गये । विलाप करते हैं। कैवल्य ज्ञान प्राप्त होता है। प्रतिबोधी बहुतसे, पहुँचे मुक्तिमे ।

नौ तो सिद्ध बन चुके । स्वामी सुधर्मा रह गये थे । आजके सभी साधु स्वामी सुधर्माके । पाटोत्सव किया । जबु स्वामी इस काल का अतिम कैवल्य ज्ञानी और मुक्ति गामी ।

प्रभवस्वामी था चोर भी पक्का । दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनो तत्त्वोकी चोरी की । साथवाले चोर पाँचसोको भी साधु बना दिया । शय्यभव स्वामिको स्थापित किया । जिसकी पसदगी की थी यज्ञके समय पर 'महता कापि चातुरी' महापुरुषोकी दीर्घद्रष्टि और पारखनका शक्ति भी अजब होती है । नमस्कार हो शय्यभव स्वामीको । अपने पुत्र मनक को भी थोडे समयमे बोध प्राप्त करा दिया । सद्गतिमे स्थापित किया दशवैकालिक सूत्रकी रचना करके । उनके शिष्य महान यशोभद्र विजयजी हुए। जिनके शिष्य आर्य सभूतिविजय और आर्य भद्रबाहुस्वामी हुए ।

२५ आर्य श्री भद्रबाहुस्वामी १४ पूर्वधर" ।

वराहमिहिरके सघ परके उपद्रव शान्त किये। शासनकी प्रभावना की। व्यतर होने पर उपद्रवोको दूर करनके लिय उवसग्गहर महास्तवन की रचना की। कल्पसूत्र की रचना करते करते आनन्द विभोर

बन गये। जिससे स्वप्नवर्णन में भक्ति रस प्रकट हो गया।
आगम पर निर्युक्तिकार श्री भद्रबाहु स्वामी को नमस्कार हो।
महा प्राणायमके ध्यानके स्वामी थे। चौदह पूर्वो का दो ही
मुहूर्तोमें पाठ करने की शक्ति इस तरह पैदा कर ली।

२६ आर्य स्थूलभद्र स्वामी १० + ४ पूर्वधर।

श्री संभूति विजयके शिष्य। गणिकाकी प्रीत छांडी दीक्षा ली।
मन्त्री मुद्रा को लौटा दिया और सच्चे साधु बने।
गुरु आज्ञा प्राप्त की। उसी प्रीति पात्र कोशाके वहाँ
चातुर्मास किया। वड़ा ऊंचा मनका संयम। रोंगटे भी न खडे
हो। चाहे नृत्य गान भी क्यों न करे। वोध दिया और
श्राविका वना दी। लौटते समय गुरुने सत्कार किया। अति
दुष्कर किया अति दुष्कर किया। ८४ चौरासी चौवीसी तक
गूंजता रहेगा गान जिसका। चरणोंमें हों नमस्कार हमारा।

उनके दो शिष्य। आर्य महागिरि, आर्य सुहस्ति। आर्य
सुहस्तिने भिक्षुकको दीक्षा दी। कालान्ते 'सप्रति' राजा।
जिन-मन्दिरोसे पृथ्वी मंडित की। राजा अशोकका पौत्र राजा
संप्रति। धर्मी माताकी उसीमें महान प्रेरणा थी। सवा क्रोड जिन
प्रतिमाएँ। सवा लक्ष जिनमंदिर, छत्तीस हजार जिर्णोद्धार। और
वहुतसी दान पुण्यकी संस्थाअें। जिसमें बिलकुल अतिशयोक्ति
नहीं।" उस समयकी जन संख्या वहुत जैनोंकी भी थी।
अनार्यदेशमें भी धर्मका फैलावा किया। धन्य है।

७. 'आर्य वज्रस्वामी—आखिरी दशपूर्वधर।

महान शासन प्रभावक पूर्वधर। जन्मके समय पिताकी
दीक्षाकी वात सुनी, रो रोकर माताको भी श्रमित कर दिया।

माताने गाँवमे आए हुए पति-साधु धनगिरिको सौप दिया बहुत जनोकी साक्षीमे। आचार्य गुरुके आदेशसे स्वीकार हुआ। साध्वीके उपाश्रयमे साध्वीओके द्वारा लालनपालन होने लगा। पारणेमे सोये। साध्वी मुखसे ग्यारह अग पढे। माता सुनदाको पुत्रकी लिप्सा जाग उठी। राजभुवनमे बात पहुँची। जिसके पास बालक पहुंच जाय उसीका ही समज लो। मिठाइयाँ-मेवे और खिलौनेसे भी न ललचाया। माँ नाखुश हुई। गुरुने धर्म-ध्वजका झडा लहराया। हपसे लेकर नाचने कूदने लगा। माता भी साध्वी बन गई। देवोने आठ वर्षीय वज्र-स्वामीकी शास्त्रीय परीक्षा की। आकाशगामिनी आदि विद्याएँ दी। जिस विद्यासे श्री सघका रक्षण किया। बौद्ध राजाको भी जैन बना दिया। बहुतोका शीश नमे ऐसी शासन प्रभावना की। सूरिजी स्वर्ग सिधारे। इन्द्रने आकर 'रथावत' तीर्थकी स्थापना की। दशवा पूर्वका लोप हुआ।

२८ शासन प्रभावक श्री श्रुतधर सूरिपुरदरो।

विक्रमसवत-प्रवर्तक राजा विक्रमको जैन बनानेवाले **पू सिद्धसेन दिवाकर सूरीश्वरजी**। अवती पार्श्वनाथ का तीर्थ प्रकट किया। कल्याणमदिर स्तोत्र बनाकर प्रसिद्धि प्राप्त की। महान तार्किक और न्याय शास्त्र के बडे दिग्गज थे। १४४४ ग्रथके रचयिता याकिनीसूनु **पू श्री हरिभद्र सूरि महाराजश्री** जिनकी कृपासे आज पूर्वगत शास्त्रोका प्रवाह और उकेल भी पाया जाता है। **पू. देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी.म** जिन्होने आगमोका एकीकरण करके वल्लभी मे पुस्तकारूढ किया। जो पूर्व भवमे भगवत महावीर का गर्भपल्टा करने वाले

हरिणैगमेषी देव थे । कलिकाल सर्वज्ञ **श्री हेमचंद्र सूरीश्वर** म. कुमारपाल प्रतिबोधक । लक्ष प्रमाण श्लोकोंके रचयिता । विविध साहित्य शाखाओंमें प्राण फूंकनेवाले । अकबर बादशाह प्रतिबोधक **जगत् गुरु पू. श्री हीरसूरीश्वरजी** म. संयम, तप और आचारमें पक्के । संयम आचारकी प्रतिभा अकबरके दरबारमें ज्वलंत हो उठी । शासन खातर कष्टोंका वर्णन दिल हिला देने वाला है और हमारे प्राण प्यारे महोपाध्याय **श्री यशोविजयजी वाचक** सच्चे न्यायविशारद बहुतसे संस्कृत प्राकृत ग्रंथोंके रचयिता गुर्जरगिरामें १२५-१५०-३५० गाथाओंके स्तवन तथा रासादिके रचयिता श्वे०दिगबर सर्वमें जिसकी ज्ञान प्रभा अनमोल मानी जाती है । वे सत्रहवीं शताब्दीमें हुए । बहुत से उपद्रव शांतिसे सह लिये । रे ! द्वेषी उपाश्रयमें घुसकर साहित्य नष्ट कर देते थे, जला देते थे । बनारसमें सर्व पंडितोंके अगुआ बने । प्रतिवादियोंको हरा कर जैनधर्मकी महा प्रभावना की ।

वीसवीं शताब्दीके **पू. आत्मारामजी. म. श्री विजयानंद सूरीश्वरीजीको** किस तरह भूले ? बडे अन्धकार युगमें शासनकी बडी रक्षा की । साधु संख्या कम थी । वैसे समय सर्वतोमुखी जैनधर्मका डंका बजाया । अशास्त्रीयता को चुनौती दी । सारे पंजाब को मूर्तिमंडित बनाने वाले, उल्टा पुल्टा मत बतलाने वालेकों परास्त करनेवाले पूंज्य श्री १९५२ की ज्येष्ठ सुद ७ की संध्याके समय स्वर्गवासी बने ।

यह है, सिर्फ, अति अल्प झांकी, रूपरेखाऐं पूज्योंके जीवनकी । शासन वाहक महापुरुषोंकी' समर्पितभाव, सत्यकी

खोज, और उसके पीछे जीवन न्योछावर करने वाले । सिद्धात समाचारीका कडक शिस्त पालन । बहुत धर्मात्माओने सद्धर्मकी स्थापनाके साथ सहिष्णुता । इत्यादि बहुत गुणनिधियोंमे परिपूर्ण थे । एक अलग ग्रन्थ बहुलसे भागोंमे बाट दिया जाता है । रचना की जाती है न ।

२८ श्री पचपरमेष्ठिके मुख्य गुण'

अरिहंत-अनत गुण के स्वामी' बारह गुण अरिहन 'देव' अतिशय चौत्तीस वानीके गुण पेंतीस । तीर्थकी स्थापना करे इस लिए तीर्थंकर । शक्रस्तव' नमुत्थुण' मे अरिहंतके अद्भुत गुणोंका वर्णन है । ललित विस्तर' टिपणीमे इसकी विशद चर्चा है ।

सिद्धगुण-८ सिद्धके स्मरणसे मोक्षकी अवस्थाका सादि अनन्त सुखका खयाल आता है । भव्यात्माओका आदश आलेम्बन है । सिद्धि सुख अनुभव गम्य है

आचार्य गुण ३६ पंचिदियके पाठ के लिए ही स्थापना स्थापित करते है । तीर्थंकरके महा प्रतिनिधि हैं । शास्त्रोंमे उन गुणोका अद्भुत वर्णन पढनेमे आता है । आदि पर्वमे तीर्थंकरमीगाद्राक्षीत् धर्मघोष मुनि धन धना सार्थवाहने साक्षात् तीर्थंकर जैसे धर्मघोष (सूरीश्वर) म को देखा ।

उपाध्याय गुण २५ पढे और पढावे शास्त्रोंको 'उपाध्याय ही आत्मा' आचार्य म शासनके राजाके स्थान पर तो उपाध्याय मत्रीके स्थान पर 'आगमदीप कभी भी न बुझ पावे । यह है उसका ध्येय । आगम शास्त्र उनका प्राण, प्राय सब कठस्थ।

साधु-गुण-२७ पाँच महाव्रतोंके पालक । सदा जागृत ५ समिति ३ गुप्तिके पालक । तप-जप स्वाध्यायमे लीन । गुरु आज्ञाधारी । गोचरीके दोष निवारक निर्दोष भिक्षाके खपी । वड़ीलोकी सेवामें तत्पर । ग्लान-बालकी वैयावच्चमें उत्साही । शास्त्रोका अध्ययन उनका व्यसन । समता उनकी साथिनी । मायाको मारे । मोहको विदारे । कायाको डरावे । आत्माकी याद करे । हास्य विनोद से पर । धर्मकार्यमे कुशल । जयना-यतना उनका मंत्र । मुक्ति ध्येय । ८वलोक विश्राम-रेस्टहाउस, मनुष्य गति मुक्ति साधनाके लिए । वेष-गणवेष वीरोंका । पालन धैर्यके साथ । जिनके भक्त उनको रुचे । हमेशा मनमें रत । देश विदेश घूमे । जिनकी वानीका विस्तरण करे । सब भवाब्धि पार करे ।

३० श्रावक किसे कहा जाय ?

जिनेश्वरकी आज्ञा मान्य रखे । सदेहे शक्य अमल करे । सुदेव सुगुरु सुधर्ममें श्रद्धा करे । जीव-अजीव-पुण्य-पाप-आश्रव संवर-निर्जरा बध-मोक्ष नव तत्त्वोमें समझ पूर्वक श्रद्धा करे । तमेव सच्चं निःसक जंजिणेहिं पवेइय' । वह सच है, और शंका रहित है, जो जिनेश्वर भगवानने कहा है । ऐसी अडिग श्रद्धा के साथ सम्यक्त्व पैदा करे । मिथ्या मान्यता को कान भी न दे । प्रतिदिन सामायिक-चतुर्विंशतिस्तव-गुरुवंदना-प्रतिक्रमण कायोत्सर्ग पच्चक्खाण रूप छ आवश्यक आराधे ।

पर्व तिथि पर पौषध करे । दान-शील-तप भाव चारों को यथाशक्ति आराधे । परोपकार रत बने रहे । अष्ट प्रकारी पूजा त्रिकाल जैन मंदिरमे भाव पूर्वक करे । गुरुवन्दन

गुरुवदन-प्रतिक्रमण-कायोत्सर्ग-पच्चक्खाण रूप छ आवश्यक आराधे।

पर्व तिथि पर पौषध करे। दान-शील-तप-भाव चारोंको यथाशक्ति आराधे। परोपकार रत बने रहे। अष्ट प्रकारी पूजा त्रिकाल जिन मदिर मे भावपूर्वक करे। गुरु वदन मे आदर भक्ति तो रहे ही। साधर्मिकों की भक्ति। (उसके प्रकार आगे देखेंगे) दुनिया मे भी व्यवहार शुद्ध हो। लिया उसको देना। व्यापार नौकरी मे प्रामाणिकता, गलत लेख भी नहीं। पर की निन्दा नही। किसी की भी निंदा नही। सच्चे गुणों के गान किये बीना चैन भी न आवे। सरल-नम्र-उदार-है हमारे श्रावक।

रथयात्रा-तीर्थयात्रा मे शक्ति न गोपवे। षट्काय के प्रति करुणा, पृथ्वी-जल अग्नि वायु-वनस्पति-त्रसकाय (हलन-चलन करने वाले जीव) छ मे पक्की श्रद्धा। कल्याण मित्रों की दोस्ती, धर्मी आत्माओं का ससर्ग। क्योंकि वह इंद्रियो का दमन करनेवाला होता है। चारित्र-साधु धर्म-दीक्षा लेने के लिए-उसका जी तडपना है। इसलिये श्री सघ (प्रभु आज्ञाधारी) पर बहुमान होता है। शक्ति हो तो आगम शास्त्र-लिखावे। साधु-महात्माओं का सहायक बने। बहु प्रकार से शासन की प्रभावना करे। ऐसे परिणत आत्मा मे-उपशम विवेक और सवर का जन्म होता ही है, होता ही है, और मुक्ति उसके हाथवेंत मे। धन्य जैन शासन।

३१ ॥ 'श्राविका का स्थान" ॥

मर्यादा से थोडा भी कम नही। वह भी मुक्ति की अधिकारीनी। साध्वी बने या गुरुजी के स्थान पर। वंदन-

व्यवहार शास्त्र मर्यादा के अनुसार, भक्ति में थोडी भी कसूर न होने पावे। श्रावक हो या श्राविका, भरहेसर की सज्जाय। सतियों की याद। साधुओं भी प्रतिदिन याद करे, मयणासुन्दरी और श्रीपाल को। देवी मदनरेखा ने पति को बोध देकर स्वर्ग में भेजा। सती द्रौपदी अति सम्यक्त्व धारिणी। असंयती नारदजी का सत्कार न किया। महा श्राविका सुलसा बडी वड भागी। भगवन्त महावीर धर्मलाभ कहलाते थे। तापस अंबड चलित न कर सका, सार्धमिक की तरह वह सन्मान प्राप्त करे। 'वत्स' देश की राजकुमारी "जयती" कैसे सुन्दर प्रश्न और विनति करती है भगवन्त महावीर को एकबार वत्स देश पधारिये। जयंती को चरणों की वंदना दीजिये। दूरी और अदूरी से वन्दना करे जयती लडकी... जिणंदजी।

श्राविका है शासन की सुनहली दीपिका। संस्कार झेलनेवाली ज्योत्सना। शासन के बालक बालिकाओं की माधुरी। उसकी वानी में धर्म की सुवास। उसके स्मितमें सन्मान और आतिथ्य सत्कार, स्तवन सज्जाय में आत्म रमणता। संसार में रहे तो भी औचित्य दाखवे बल्कि मन मोक्ष में। लडकियों को शासन के लिये भेट सुसस्कारों से भरे। सुशील, चालाक, गृहीणी, अप्रमादी, शासन की श्राविका। उसका स्थान गौरव से पूर्ण है। रेवती नाम सुप्रसिद्ध प्रभु के लिए भी औषधि दाता। घर बैठे भी प्रभुश्री की कितनी चिता। श्राविका माने स्त्री-सौरभ-शासन की सुलता।

३२. "क्या श्री साध्वीजी भूले गये हैं?"

बीलकुल नहीं। साधु संघ में अंतर्गत है ही। अपितु वह है दिव्य, मधुर साधन धर्म प्रचार का। भाषण या जाहिर

व्याख्यान द्वारा नही। मौन चारित्र्य की गहरी असर से। श्राविकाओ को शासन मे कार्यरत रखवा कर। साध्वी सघ को समृद्ध बनवा कर। सबल बनवाकर। और आज भी स्वाध्याय, सयम-तप उनको ही वृणित है। निम्न दृष्टि से विहार करे। आहार की लोलुपता नही। स्वाध्याय के बिना चैन नही। कवि नानालाल बोले थे, "नमणा नमन वदन तो है, तुम्हारे साध्वी आश्रम को। 'ससार से थकी हुई नारियो का आश्रम-घाट, वैराग्य की वेल का यह है लतामडप, सरस्वती की कुवारियो का शारदाश्रम, और सन्यस्त मठ। ससार परित्याग करे तो वह यह किनारे जा बैठे। हमारे ब्राह्मण धर्म मे भी था वह सन्यासी का आश्रम। देश काल के प्रहार से लुप्त हुआ। परन्तु अब जैन सघ मे है।"

देवरिया मुनिवर ध्यान मे रहना। साध्वी राजीमति का उपदेश भरा कठ। 'वीरा मोरा गज से उतरो।' ब्राह्मी सुन्दरी का स्वर सवान, कैसे वडे ऊँचे आदर्श ? सचमुच साध्वी सस्था आज की दुनिया की एक अडीखम अजायबी है।

३३ "तप का अितना वडा माहात्म्य क्यों ?"

तप सयम का कवच है। अभेद्य, अकाट्य, महारक्षक। तप अनाहारी पद का उत्तमोत्तम साधन है। इच्छानिरोध जैसा कोई तप नही। तप के बारह भेद। उनमे इच्छा का मन का और तन का भी निरोध है। बाह्य तप के छ भेद है।

(१) अनशन—

नोकारसी से लेकर उपवास अट्ठम मासखमणादि इसी मे। कषाय का नाश होता है। शरीर, इन्द्रियाँ काबू मे आ जाती हैं। वासना का अत और आत्मा की मुक्ति।

(२) उणोदरी—

सर्व रोग नाशक, संयम साधक, अनशन की सहायक। तप को आधार देनेवाली। यो मितं भुंक्ते स वहु भुंक्ते। मिताहारी पुष्टता प्राप्त करता है। पुष्टि से तुष्टि। तुष्टि से तप प्रेम का जन्म होता है।

(३) वृत्ति सक्षेप—

कम पदार्थों से चला लेना। पच्चीस वानगियोमें से पाँच ले कर चला लेना। खाना या पीना। जरुरिआते कम करे। चिता कम, मन भी वश में आ जाय। "मनको मारा, उसने सभी को जीता। यह अवश्य होना चाहिये या इतना होना जरुरी है, ऐसा कभी भी नही।"

(४) रसत्याग—

स्वाद पर कावू। जीभ पर कावू। इष्ट या अनिष्ट दोनों भी समान। इष्ट मे राग नही। अनिष्ट में द्वेप नहीं। खट्टा या निमकीन स्वाद की पचात नही। मिष्ट में लोलुपता नही। छः विगय में से पॉच का, दो का, या एक का त्याग। १. दूध, २. दही, ३. घी, ४. तेल, ५ कढाकृत, ६. गुड।

(५) कायक्लेश—

लोचादि-(हाथ से मस्तक के, दाढी–मुछो के बाल उखेडने की प्रक्रिया। कायोत्सर्ग- खडे रहकर अमुक समय नक काया की सभाल का भी त्याग। धूप–ठड सह लेना। खुले पैर चलना, इत्यादि।

(६) संलीनता—

अंगोपांग सीकुडना। इन्द्रियों पर कावू। "वाह्य तप,

ऐसी है वीतराग की वानी। यह तो सिर्फ हकीकत की ओर ऊँगली निर्देश है। नही, कि टिप्पण। अंत मे जहाँ है, वहाँ है, वहाँ अनुमोदन करना पडे ऐसा सुन्दर। यह तो सिर्फ ध्यान खींचनेकी वात है। श्रावक गण में भी सार्धमिक भाव जागृत होता रहे, तो यह गुण खील उठेगा। परस्पर जिनेश्वर के भक्त मददरूप क्या न वनें ? साधु–साध्वीओ की वैयावच्च यह तो है श्रावक श्राविकाओ का अपूर्व लाभ। तन-मन और धन से, समय का भोग देकर वडे उत्साहपूर्वक।

(१०) स्वाध्याय—

साधु–साध्वीओं का सच्चा प्राण। जो करेंगे वह तिरेंगे। मन को वश में कर ले। निंदा का समय नही। विकथा का भी समय नही। आत्मा की मस्ती खिल उठे। रात हो या दिन काल की मर्यादा ध्यान मे रखकर। गुरुगमसे समझकर।

(११) ध्यान—

यह एक महान प्रक्रिया है। मन-वचन काया की एक एकाग्रता की नींव है। जिनकथित क्रिया मे एकाग्रता रखने से ध्यान ओतप्रोत वन जाता है। सिर्फ नौक सिकुडकर, पद्मासन लगाकर, वैठ रहने से नहीं। वूरे विचारो की परास्ती, अच्छे विचारो की याद, यह है वुनियाद के साधन। ऐहिक लालसा नही। उत्तम साधन हैं यह, मन का अनुसधान करने का। क्षपक श्रेणि पर चढने का, परन्तु मोह को मारे विना यह न वन सके। रागद्वेप को पतले वनाये विना ध्यान होवे कैसे ? वाहुवलीजी ध्यान में वारह मास अडिग खडे रहे। परन्तु अति सूक्ष्म रूप से स्पर्श किया हुआ मान कषाय ? वह गया और कैवल्यज्ञान प्रकट हुआ। ध्यान विना, मिले नहि शान सच्ची आत्मा की।

(१२) कायोत्सर्ग—

जिसमें जिस तरह देह का त्याग है, वैसे ही ध्यान की उच्च कक्षा भी है। सगम असफल हुआ न ? ध्यान से हटाने में या कायोत्सर्ग का त्याग कराने में भगवत महावीर को। महावीर अिम तरह बने हैं। हमारे लिए ऐसा बनने के लिए यह तप-त्याग का माग रखकर मोक्ष मे चल बसे हैं अनमोल विरोहत खजाना।

३४ 'नौ पदों की महिमा'

पाँच प‍रम परमेष्ठि—

श्री अरिहत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय और साधु। सर्वोत्तम रत्नत्रयी-दशन-ज्ञान-चारित्र और य आठो के उत्थान मे बुनियाद के रूप मे या शृ गार के रूप मे तप ये नौओ का एकी-चक्र राज्य, वही है शासन का साराश—

इन नवो मे पूर्ण श्रद्धा माने सम्यक्त्व। पहले पाँच गुणी हैं। पीछले चार गुण है। गुणी के बिना गुण भी नही। गुणी मे गुण का दर्शन होता है। जिस नवपद का दूसरा नाम है श्री सिद्धचक्र भगवान। गोलाकार-वर्तुल मे स्थापना। यही स्थापना सिद्ध। उसकी सिद्धि सिद्ध न करनी पडे। अनादि सिद्ध तत्त्वो का सुरम्य चक्र। उसकी आराधना करे वह भी सिद्ध बने, प्रतिदिन अनत सुख मे विलसे। अरिहत महात्यागी। सिद्ध तो श्रेष्ठ त्यागी बन चूके हैं। आचाय भी ससार व्यवहार का त्यागी। चाहे वह ससार अवस्था मे क्यो न हो। उपाध्याय या साधु ससार के त्याग बिना हो ही न सके। सम्यक् दशन याने ससार का त्याग और जिन आज्ञा एकमात्र की दृढ मान्यता। सम्यक् ज्ञान तो ससार त्याग की प्रेरणा प्रत्येक क्षण

क्षण में करता रहता है। सम्यक् चारित्र याने त्याग भावना का अमल-पालन और रक्षण। सम्यक् तप सिर्फ शरीर को ही तपाता नहीं है। सिर्फ इन्द्रियों को शिथिल वनावें ऐसा ही नही, अपितु कर्मो को जला कर खाक वना दे और रत्नत्रयी के तेज को प्रकट करता है। तप का तेज महान है, कहते कहते उसका अंत भी नही आता। 'तप से चिकने कर्म भी नष्ट हो जाते है। ऐसा जिनेश्वर देव कहते हैं।

यद् दूरं यद् दुराराध्यं, यच्च दूरं व्यवस्थितम् ।
तत् सर्वं तपसा साध्यं, तपो हि दूर् तिक्रमम् ॥

सुयोग्य दूर की चीज को प्राप्त करा दे, अशक्य को भी शक्य वना दे। जो प्राप्न करना अति दुर्लभ हो, उन सव को सुलभ वना दे। सचमुच तप की सत्ता अनुल्लघनीय है। आराधन करे, वह सव कुछ प्राप्त करे।

३५. "श्री शाश्वती नवपद्जीकी ओलीजी महिमा।

चैत्र सुद ७ से पुनम तक। अश्विन सप्तमी से पूर्णिमा तक। दो शाश्वती-चिरकाल से जिस का महिमा था है, और होगा भी। देव देवेन्द्र भी नंदीश्वर द्वीप में जाकर अठ्ठाई महोत्सव करता है। विद्याधर भी वहाँ जाते है या वैताढ्य पर्वत पर अपने स्थान पर आराधन करते है, मनुष्य भी नौ दिन तक आयविल तप करे। पडिलेहण-वस्त्रादिका शाम-सुवह दूपहर का देव-वंदन। नौ चैत्यवंदना। शक्य हो तो नौ देरासर में उक्त पद के गुणानुसार स्वस्तिक, खमासमणा। प्रनिदिन वीस नौकार मंत्र की माला। उभय समय प्रतिक्रमण प्रतिदिन स्नात्र महोत्सव। आखिर के दिन में महापूजा, प्रभावना

और पारणें पर उद्यापन, स्वामिवात्सल्य, अनुकपा दान, जीवदया आदि के कार्य करे। यह है सामान्य विधि।

३६ "चातुर्मासिक तीन अट्ठाइयाँ"।

कार्तिक चातुर्मास की सुद सप्तमी से पूर्णिमा तक, फाल्गुन की, आषाढ मास की। आखरी विशेष कर ध्यान मे रहनी है। क्योकि साधु साध्वियाँ स्थिर चातुर्मास रहते हैं। विहार बद होता है। श्रावको का आरभ-समारभ बद होता है। आरभ-समारभ याने सासारिक कार्यों मे छोटी-बडी हिंसा को स्थान रहता ही है। धर्म आराधन मे विशेष ध्यान रहता है। पचास, पचहत्तर वर्षों पहले का विचार कर के सोचो। सुखी और सतोषी आत्माओ का, चातुर्मास मे व्यापार-धधा बद किया जाय। शस्य इतना धर्म करने मे ही रत। क्योकि धर्म समाज का प्राण था। धर्म आत्मा का सरक्षक था उनके मन और हमारे मन ?

३७. "श्री पर्युषणा महापर्व"।

यह महा पर्व चातुर्मास मे ही आता है। श्रावण वद द्वादशी से भाद्रपद सुद चतुर्थी तक। आठ दिनो तक धर्म की झलक रहती है। इस महापर्व का नाम है "सावत्सरिक महा पर्व" बारह मासो का महा पर्वदिन और वह है भाद्रपद सुद चतुर्थी, एक दूसरे की क्षमापन का महापर्व। कलह और वैर शान्त कर, दूर करने का महा पवित्र दिन। अत्र अवशिष्ट निर्बलताए दूर करने का। मगल दिन। इसलिए सातो दिन तपपूर्वक आत्मा की खोज करना। गुरु के श्री मुख से महा शास्त्र "कल्पसूत्र" इकठ्ठा होकर सुनना। उनमे साधुओं के

आचरण की बातें भी आवे। श्री नागकेतु जैसे तपस्वी श्रावक-वर्य का वर्णन भी मिले। शासनपति श्री महावीर देव का सुविस्तृत सर्वश्रेष्ठ जीवन भी सुनने में आवे। देह-मन-आत्मा पावन बन जाय। श्री आदीश्वर दादा आदि का चरित्र आश्चर्यचकित बना दे। गणधर भगवन्तों की गुणगीति बहुत से गुणों का प्राकट्य करे। स्थविर महा शास प्रभावक, रक्षक, सूरि पुरंदरों की यशगाथाएं सात्त्विकता पैदा करती है। सामाचारी सुनते ही साधु महात्माओं की उत्कृष्ट चर्या के प्रति शीर झूके।

३८. "दानादि धर्म"।

'पर्युषणा' याने चारो ओरसे आत्मा के पास ही खीसकना। दान-शील-तप भावना। धर्म का प्रवाह बाढ से चलता रहे। बहुत सी धार्मिक संस्थाअे बारह मासों तक अपने पैर पर खडी रहने के लिए तैयार हो जाय। लगडे-अपाहीज भी आनंद विभोर बन पावे। पशु-पक्षी भी आशीर्वाद दे। तेली-तंबोली मोचिओं के पेशे बद हो जाय, प्रेम से और धन से। साधर्मिको का उद्धार हो जाय। उपाधियों से मुक्त कर दिये जाय। दानेश्वरिओं के दान, राजा-महाराजाओ के भी मान छूडा दे। चंचल लक्ष्मी स्थिर हो जाती है। पागल धन शानदार बन जाय। दुनिया देखे और आनद विभोर बन जाय। आत्मा मे अनोखा आनद उत्पन्न करे।

शील-अर्थात् आत्मा का स्वभाव परमात्मा में रमण करना, परमात्मा बनने के लिए यत्नशील बनना। ब्रह्मचर्य का पालन उसका एक अग। परब्रह्म लीनता मे मददरूप। तन की तदुरस्ती ब्रह्मचर्य से, कुदरती रीति से मन को मजबूत बनाता

है। मजबूत आत्मा ध्यानारूढ हो सकता है। आत्मा का स्वरूप का विचार करे। ससार असार और क्षणभगुर लगता है। वीतराग की वानी दिल में लग जाय। छ अठ्ठाईयाँ और बारह तिथियाँ ब्रह्मचर्य के नियमवाली जैन कुल मे अवश्य होनी चाहिये। प्राचीन युग मे थी, और आज के युग मे ? अतिम कक्षा मे, कम से कम पाच तिथियो का भी अवश्य नियम होना जरुरी।

तप—अर्थात् आत्मा का प्रकाश प्रकट करने का उत्तम साधन। अनादि की आहार सज्ञा पर का काबू। अनाहारी पद। मुक्ति की मगल माला। इधर-उधर बढनी हुई इच्छाओं पर का काबू। एक सुन्दर उदाहरण का विचार करेगे। पद्रह चीजें सुखी व्यक्ति के थाल मे परोस जाती हैं। उनको कोई सुन्दर क्षण पर विचार आता है, कि अब सोलहवी नही होनी चाहिये। जरूरत पडने पर भी पद्रहोमे से। पडोस से मिठाईयाँ आई, बहन-भाभी को मन भाती। अपितु मानसिक सकल्प उसी क्षण ना कहेगा। यह भी है, बाह्य तप और मन भी ना कहेगा। रस भी न लगेगा। आत्मा भी अनादि की कुटेव पर विचार करने लगेगा। यह है, अभ्यतर तप।

भाव—आत्मा का स्वरूप तारक सुन्दर विचार। उन विचारो को भी व्यवस्थित करन के लिए बारह प्रकार की भावनाएँ होती है। और उनको भी पुष्ट करने के लिए है और चार।

३९ "बारह भावनाओ का स्वरूप"।

(१) अनित्य भावना—

कोई भी चीज कायम नही है। जो है वह भी जायगी। अत मे हम भी जायेंगे। नाशवत चीज पर ममता क्यो ?

(२) अशरण भावना—

मनुष्य बीमार पडा। सुविख्यात डॉकटरने भी आशा छोड दी। अब शरण किस की ? सगे सबंधी भी क्या करें ? सिर्फ धर्म ही शरणभूत रहेगा। सद्भाव ही शरण। अरिहंत सिद्ध साधु और जिन द्वारा भाषित धर्म, यही ४ सिर्फ "शरण" है। वही गति, वहि मति—और सब असत्य—निरर्थक।

(३) संसार भावना—

संसार विचित्र है। पूर्व भव की माता यहां पत्नी बन जाय। स्वयम् मर जाय। अपनी ही स्त्री के उदर से पुत्री के रूपसें जन्म लेकर वैर लेता है। कम्पारी कम्पन करा देनेवाला है यह संसार ! आधि, व्याधि और उपाधियोंसे पूर्ण। एक धारके समान सतत दावाग्नि, कब उसीसे छूटकारा पाऊँगा।

(४) एकत्व भावना—

आत्मा अकेला जन्म लेता है। यहाँ से मर कर भी अकेला जाता है। दुर्गति के दुःख स्वयम् अकेला ही भुगता है। उस में कोई भी हिस्सेदार बनता नही। क्योंकि अपने ही किये हुए कर्मो का फल है।

(५) अन्यत्व भावना—

शरीर आत्मा नही है। आत्मा शाश्वत तत्त्व है। शरीर है नाशवंत। माता के उदर मे उत्पन्न हुआ, तैयार हुआ। अग्नि में जल जायगा या पृथ्वी में गाड दिया जायगा। या नदी, समुद्रमें फेंक दिया जायगा। या किसी वन्य पशु-पक्षी का भोजन बन जायगा। ऐसा शरीर के लिए ही मैं ऐसे भयंकर पाप करूँ ? उसके पीछे ही पगला

बन जाऊँ ? और अपना स्वार्थ स्वयम् नष्ट कर दूं। नहीं-नही नही

(६) अशुचित्व भावना—

शरीर, लहू-माँस-हड्डियाँ-मेद-मलमूत्र-चर्म-नसे-ये सब का सग्रहस्थान है। मल-मूत्र-दूर्गंध का यह कोश-भडार घर है। उसी ही शरीर मे प्रसन्न रहने का क्या प्रयोजन? स्नान सुगधि द्रव्योसे करो, सुगधि तेल का उपयोग करो। सुदर महान कपडोसे सुसज्ज बनाओ, अपितु थोडे ही समय के बाद पसीना बहने पर तुरन्त ही वह वस्त्रो को मलीन कर देगा। नीद-मेसे उठने पर मुँह को साफ किये बिना, क्या आप बहार जा सकेंगे ? चाहे कितना भी सौन्दर्य क्यो न हो ? शरीर को पुष्ट करने के लिए जी चाहे इतनी कीमति चीजोका उपयोग करो, उत्तम पीना पीओ। परन्तु आखिर म शरीर टेढा ही टेटा रह जायगा। किसी भी रोग की आपत्ति आने पर मन की मन मे ही रह जायगी, जैसे कि वात या उदर मे शूल होने पर। शूल लकवा-या पेरेनेसीस-ऐसे समय मे बिस्तरे मे ही पडा रहना पडे। कोई इलाज भी न चले। चिन्ता कोई काम की नही। चौवीस घटो की हमेश की शुश्रूषा निष्फल! यह शरीर! इसे देखकर मन मे फूले नही समाते हो, तो, यह सिर्फ अज्ञान ही अज्ञान है।

(७) आश्रव भावना—

सासारिक कर्मों की परमाणु रजकण आत्मा पर आ कर लग जाती हैं। आत्मा को वजनदार बनाता है। चारो ओर से आता है। बिन्दु छोटे परमाणुओ के रूपमे। यह है

द्रव्य आश्रव उसीमें से पैदा होते हैं, रागद्वेष, क्रोधादि कषाय। पांचों इन्द्रियों की विषय वासना दूर करूँ। यह मलिनता दूर करूँ।

(८) संवर भावना—

आए हुए कर्मों के प्रवाह को रुकावट करनेवाली है प्रक्रिया संवर। पाँच समिति,—तीन गुप्तियाँ, दस प्रकार का यति धर्म इत्यादि, मुख्यतः साधन हैं। दौडकर आते हुए कर्मों को मारकर यह दूर करे। मैं भी प्रबल बनता हूँ। बहुत सी युक्तियो की अजमायिश करूँ। आगम शास्त्र विधि के अनुसार सुदूर फेंक दूँ कर्मो की दौड को।

(९) निर्जरा भावना—

सचित कर्म पूर्व भवों का, उनका नाश ही निर्जरा है। नाश का भी समता से उकेल है बारह प्रकार के तप। तप कर्मो को तपाकर नष्ट करें। चिकने कर्मो का नाश करता है। निकाचित भी नष्ट हो गया ध्यान के समय और वह भी क्षपकश्रेणिका। ध्यान भी एक प्रकार का तप है।

(१०) लोक स्वभाव भावना—

उत्पत्ति–नाश–और स्थिरता ये तीनों की चक्र माला चलती ही रहती है। हर चीज अस्थिर है। आत्मा भी। मनुष्य जन्मता है और मनुष्य रूप से मर जाता है। देव रूपसे उत्पन्न होता है–यही उत्पत्ति। बल्कि आत्मा तो वही है। इसलिए स्थिरता। इस तरह आत्मा की भ्रमण गति–कहाँ तक? जन्म–मरण के दु:ख कहाँ तक? सुगन्धी पुदगल, दुर्गंधी पुद्गलों में परिणाम पाएं। खाया हुआ अन्न विष्टा के रूप में बदल जाता है। इसमें से खाद होती है। उसी में से ही अन्न

ह्राता है । उसमे से मिष्टान बनता है और उसमे ही रुचि होती है ।

(११) बोधि दुर्लभ भावना—

सद्बोध या सम्यक्त्व की समझ, पहचान लेना । दिल मे बैठाना कठिन है। प्रथम तो मनुष्य जन्म, इस भव मे सद्गुरु का योग । वीतराग की वानी का श्रवण, यह मिलने पर भी उसी मे श्रद्धा । उनको आत्मा मे स्थिर करना । नवो तत्त्वो मे समझ पूवक की सुन्दर श्रद्धा । सचमुच अति दुर्लभ । पूरे पुण्यशालिओ को ये सब सजोग मिल जाते हैं और सयोग के मिलने पर भी शुद्ध क्षयोपशमभाव प्रकट करना प्रायः अल्प भवी के लिए सुशक्य । ये सब मुझे क्यो न मिले ?

(१२) धर्म भावना—

धम और सर्वज्ञ वीतराग भगवन्त ने कहा हुआ, जिसे प्राप्त हो वह महाभाग्यशाली । आत्मा के स्वरूप की समझ, सच्चे तत्त्वो का सुज्ञान । कर्मो के उत्पात और भयकर प्रकारादि । मोहनीय कर्मो का मारक मोह । ये सब तो जिन धर्म के बिना कहा से मिले ? इसलिए अरिहन्तादि की उपकारी गुरु भगवन्तो की, कल्याणमयी सार्धमिको की द्रव्य और भाव दोनो भक्ति, वही हा मेरे लिए सुधर्म प्राप्त करने का पक्का उपाय ।

४०. मैत्री आदि ४ भावनाएँ

(१) मैत्री भावना—

सब जीवो के साथ मैत्री । किसी के साथ दुश्मनावट नही । हमारे दुश्मनो के प्रति भी सद्भावना । बूरा नही किया

जाय इतना ही नही उसकी इच्छा भी नहीं करनी । "सर्वे जना: सुखिनो भवन्तु" । सद् विचारो द्वारा ही विश्व में सुख-शांति हो सकती है न ? हम अच्छी इच्छा करते हैं । परन्तु स्वयम् उस मार्ग पर न चले तो ?

(२) प्रमोद भावना—

प्रकर्ष और आनन्द किस में ? सामनेवाली व्यक्ति मे गुणदर्शन करते-सुनते, अनुभव करते । माया और विना कि्ति का दान, विना लालच का शील । दुनिया की चीज की लिप्सा बिना का तप । विना दम्भ का भाव । ये है सर्व-सामान्य गुण । सामनेवाली व्यक्ति को देखकर उनके गुणो पर आत्मा की प्रसन्नता । मन आनन्द से विभोर वने । दिल का आनन्द अपार । वही है 'प्रमोद भावना' । साधु साधु को देखकर क्या आनन्द विभोर नही वन जाता है ? सार्धमिक सार्धमिकों को देखकर क्या उसके दिल में आनन्द नही प्रकटता है ? पेथड शा. महामन्त्री के लिये कहा जाता है —घोडे पर वैठ कर जाता है । रास्ते में नये सार्धमिक को देखते है । नीचे उतर कर प्रणाम करते है । भेटते भी है । ऐसे आत्मा क्या क्या न करें ? मुझमें यह आ जाय । संसार सागर पार किया जाय ।

(३) कारुण्य भावना—

दीन-दु:खी, अपाहीज पर दया। पशु-पक्षीओं की देखभाल मरण से वचाकर सुरक्षित स्थान पर पहूँचाना । भूखों को अन्न, तृपित को पानी, वस्त्रहीन को वस्त्र देना ये सब सव सामान्य द्रव्य दया है । उक्त जरुरतें विवेकपुर.सर पहुँचाना । बाद में उनकी लाचारी का मूल कारण समझना ।

यह है भाव दया। मैं सुखी तू दुखी, मैं देनेवाला हूँ, तू लेनेवाला है। किसलिए? परम प्रभुने बतलाया हुआ धर्म पूर्वभव मे भी नही किया है। अब भी उन्हे समझकर उसका आचरण कर ले। शक्तिशाली अगर इच्छा करे तो उनको सुमार्ग पर न चला सके!।

(४) माध्यस्थ भावना—

थोडी सी कठिन है। किसी को सुधारने के लिए बहुत महेनत की। सुधार नही किया, अपितु सुधार करने की आशा भी न बतला सका। ऊपर से सामना भी करता है। क्रोध आवे या समता रखे!। विचारे के कर्म कठिन है। "सव्वे जीवा कम्मवस", सब जीव कर्माधीन है। मेरा प्रयत्न निस्वार्थ था, सिर्फ वही आनद।

ये भावनाएँ सिर्फ पचमहाव्रतधारी महात्मा ही सेवते है? नही, गृहस्थ श्रावक श्राविकाएँ भी, विशेष कर के मार्गानुसारी आत्माएँ भी। परन्तु ये है सोलह अनुपम धर्म कलाएँ।

४१. "पाँच महाव्रत अमूल्य क्यों?"

पाँचो महाव्रत, कामदेव के पाँच धनुष्यो के विनाशक है। इनके आगे 'क्रिमिनल पिनलकोड' निष्फल बन जाता है। दुनिया की आधियो का शमन करनेवाला महौषध है। विश्व शाति का सर्व श्रेष्ठ मार्ग है। अनत अव्याबाध सुख का सोपान मार्ग है। मुक्ति महल की सिढी है।

(१) हिंसा विरमण महाव्रत—

स्वय हिंसा करे नही दूसरे मे करवाते भी नही और

करनेवाले को भी अच्छा न समझे, मन-वचन-काया से भी। चलता है साढे तीन गज की दूरी से, नीचे मुख रख कर। रात में दंडासन-जीवों को बचाने का महीन साधन, (नर्म साधन का) उपयोग करे। बैठते-ऊठते रात-दिन धर्मध्वजका प्रमार्जन करने में उपयोग करे। गोचरी भिक्षा अपने के लिए भी बनाई हुई नही लेना। अपवाद मार्ग की सूझ, गहरे मार्गदर्शन की अपेक्षा रखता है।

(२) मृषावाद विरमण महाव्रत—

स्वयं झूठ न बोले, बुलावे भी नही। बोलने वाले को अच्छा न समझे मन-वचन कायासे। ये बातें समझ लेना आवश्यक है। २ से ४ चारों व्रत पहेले महाव्रत के पोषक है, संरक्षक और सवर्धक भी है। झूठ से खून-हिंसा मारामारी हो जाती भी हैं न। वैसे ही, चोरी, परस्त्री पर की आँख और धन,-"जर-जमीन और जोरु" कलह के ये तीन बच्चे है। शास्त्रविरुद्ध आगम से दूर हो कर बोलना-यह महा भयकर झूठ है। जान लेनेवाला द्रव्य-दश प्राणों का नाश करता है। वह भी सिर्फ एक ही भव के लिए। जब सूत्र-सिद्धांत के विरुद्ध बोलनेवाला समझानेवाला घातक या खूनी से भी महाघातक है। उलट पुलट समझ दे कर उलटे मार्ग पर चलाता है। जिनाज्ञा के विरुद्ध वर्ताव करावे। फलतः भयंकर कर्म पैदा करावे। नरक-निगोद में ले चले। अनंत काल तक भवभ्रमण करावे और धर्म के श्रवण को भी दुर्लभ बना दे। सहस्रो को महान और अनंत दुःखों के गर्त में ढकेल दे। इसलिए ही महामहोपाध्यायजी न्यायाचार्य, न्यायविशारद, श्री यशोविजयजी महाराजश्रीने घोषणा की है "उत्सूत्र सम पाप न किश्युं।

(३) अदत्त-आदान विरमण महाव्रत—

स्वय चोरी करे नही, करवाते भी नही। करनेवालो को भी अच्छा न समझे। मन-वचन काया से। किसी से पूछे बिना किसी भी चीज को न ले। किसी के मकान में उसकी अनुमति बिना प्रवेश भी न करे। गुरु से कुछ भी गुप्त न रखे। धन्य आचरण! धन्य जीवन!

(४) मैथुन विमरण महाव्रत—

स्वय स्त्री सग करे नही, करवाते नही। करनेवाले को अच्छा न माने। मन-वचन-काया से भी। एक माह की छोटी बच्ची का भी स्पर्श न करे। अगर भूल मे स्पर्श होने पर गुरु द्वारा दड पाने के लिए तैयार। पाँचो इन्द्रियो पर काबू, उसका नाम है ब्रह्मचर्य। रसगृद्धि बिलकुल नही। जिह्वा पर सपूर्ण काबू। मन भटकता हुआ नही। विषयविपाक मे कटु फल का सदैव विचार। आत्म गुण मे सदैव रमणता। परब्रह्म मे-परमात्मा मे एक ध्यान।

(५) परिग्रह-विरमण महाव्रत—

स्वय पैसे का स्पर्श भी नही करें। रखावे भी नही। रखनेवालो को भी अच्छा न माने मन-वचन-कायासे। परिग्रह-महापाप। सारे जगत का वडा तूफान। साधु, धनका स्पर्श भी न करेगा। अरे, पुस्तको या ज्ञानभडार पर भी ममत्व नही रखेगा। मूर्च्छा भी नही। जरूरत के बिना उपधि न रखेगा। उपधि याने वस्त्र पात्रादि। सर्व श्रेष्ठ प्रक्रिया जैन शासन की। शासन याने विश्वरक्षक स्वाभाविक सचालन।

(६) रात्रिभोजन-विरमणव्रत—

यह छट्ठा, वडा उपयोगी व्रत है।-यह है, महाव्रतों से

अलग; परन्तु प्रथम व्रत का रक्षक है। जीव दया का झरना है। स्वास्थ्य का रक्षक है, वर्धक भी है। दुर्गति की अर्गला रूप है। आज कल गृहस्थों में इस व्रत के प्रति वडी भारी उपेक्षा है, अतः भावि वूरा दिखाई दे रहा है। और रोगादि प्रत्यक्ष वढते जाते है, और वे भी असाध्य कोटि के। इसलिए ज्ञानी के कहने का आदर करो। शक्य पालन भी करो। अव पाँच समिति। तीन गुप्ति। अष्ट प्रवचन माता की अद्‌भुत ताकत का विचार करो।

४२. "पाँच समिति तीन गुप्तियाँ"

अष्ट प्रवचन माता, कैसा मधुर वात्सल्यपूर्ण उच्चार है। प्रवचन शासन—आचारधर्म—साधुधर्म की माता। "मेरा रक्षण करेगी माता।" साधु को साधुता में स्थिर करनेवाली है "माता" आठ। राजा महाराजाओ के वहाँ पांच धावमाताएँ। साधुओं को तो दुनिया की माँ से भी अधिक स्नेहभरी आठ आठ माताएँ। उनकी गोद में खेलने वाले दुनिया में न खेलेगे और न खेले। वह संसार में परिभ्रमण न करे। वह ज्ञानिओं को अच्छा लगे। उनका स्थान तुरन्त ही मुक्ति में लगे।

(१) इर्या समिति—

रास्ते में चलते अहिंसा का पालन। जीवों की पूरी रक्षा करने की इन्तेजारी। आंख नीची, चाल धीमी। दृष्टि साढे तीन हाथ दूर। वह कभी भी न वनेगा क्रूर। वह है सच्चा शूर।

(२) भापा समिति—

बोलने में पूरा विवेकी। बिना काम न वोलेगा। वह भी इष्ट—मिष्ट—हितकारी। असंवद्ध प्रलाप न करेगा। शास्त्र वचन से विलकुल दूर नही।

(३) एषणा समिति –

गोचरी के ब्यालीस दोषो से रहित। आहार-पानी लेने मे विवेक। सामनेवाली व्यक्ति के भाव मे वृद्धि हो, इस तरह। आधाकर्मी की पूरी भडक-सावधानी।

(४) आदान-भड मत्त निक्खेवणा-समिति—

वस्तु लेना-रखना। भाड-पात्र लेना, रखना-दूर करना उपधि लेना-रखना-देना-प्रत्येक मे उपयोग पुर सर की जयणा। यतना जीवदया की सपूर्ण सावधानता। स्वपर और संयम को पोषक प्रवृत्ति।

(५) पारिष्ठापनिका समिति—

कफ-खाँसी आदि सिर्फ निर्दोष भूमि मे त्यागना चाहिये। हर कोई विसर्जन करने योग्य वस्तु का सावधानीसे यथास्थान मे त्याग करना चाहिये। इधर उधर इच्छा के अनुसार बैठा नही जाय, वैसे ही किसी स्थान पर डाल देना नही चाहिये। शासन की धर्मकी– साधुता की अपकीर्ति दुनिया मे न होने पाये, उसीका खयाल रखना आवश्यक है।

सम्यग्-प्रवृत्ति-समिति। – प्राय प्रवृत्ति नही कर के आत्मा का रक्षण, वह है गुप्ति।

(१) मन-गुप्ति—

विचारो पर का कावू। मगज शक्ति पर भी कावू। गलत तरगो मे नहीं पडना, समभाव मे स्थिरता करना।

(२) वचन गुप्ति—

प्राय मौन्ड रहना।

(३) काय गुप्ति—

पाप प्रवृत्तिसे दूर रहना, अगोपाग की मलीनता। कूर्म की तरह इन्द्रियो पर कावू।

यहाँ तक प्रथम, चौथा-पाँचवा-छट्ठा गुणस्थानक अंतर्गत आ जाता है। इस तरह सर्व सामान्य स्वरूप विधि-हेय-उपादेय साधन संक्षिप्त विवरण से कहा गया। अव प्रथमसे चौदह गुणस्थानक की ओर अँगुलीनिर्देश करेंगे। जैनशासन का यह है क्रमारोह। थोडा सा गहन भी है। तुरन्त ही समझ में आ जाना थोडा सा कठिन, फिर भी है आह्लादक।

४३ "चौदह गुण स्थानकों का स्वरूप"

(१) मिथ्यात्व गुणस्थानक—

सरल समझ के लिए दो विभाग में :—

(१) अखाडे या उसरभूमि जैसा नाम मात्र गुणस्थानक। गुण नही सिर्फ गुणाभास ही है। बुद्धि उलटी। आत्मा के गुणो को प्रकट न करनेवाली महा अज्ञानदशा। मोह का गुलाम। रागद्वेष का शिकार आसानीसे वननेवाला। सत्य अच्छा न लगे। विपरीत मे स्वीकृति तुरन्त दे दे। दूसरे भेद में-मंद मिथ्यात्व की स्थिति मालूम होती है, संसार ठीक नहीं है। ऐसी ही सामान्यतः विचार धारा होने पावे। देव गुरु धर्म की वात जंचे। अपितु सुक या कुक दोनों का विभाग तुरन्त न कर सके। यद्यपि सत्य, न्याय नीति प्रामाणिकता की पक्षपात वुद्धि रहे। शास्त्रीयभाषा में, 'अपुर्नवंधक' कोटिमें रखा जा सकता है। मार्गानुसारिता में उसका प्रवेश हो सकता है। धर्म-अर्थ-काम में धर्म को ही मुख्य स्थान दे।

इस स्टेजमें श्रावक जैसी करणी मालुम होवे। साधु प्रत्ये बहुमान होवे, मोक्ष की इच्छा से धर्मक्रिया करे, किन्तु शुध्ध यथाप्रवृत्ति करण तक गीनती हो शके। चतुर्थ गुणस्थानक के योन्य स्टेज पसार करना अधुरा है सम्यक्त्वाभिमुस व्यवहारसे कह शके.

(२) सास्वादन—

चौथे आदि विशिष्ठ स्थानसे निम्न कोटिका है। वमन किये हुए मीठे आहार की डकार जैसा है।

(३) मिश्र—

तत्त्व मे रुचि भी नहीं अरुचि भी नही। जिस तरह नारियल के द्वीप मे रहनेवाले को अन्न के प्रति रुचि भी नहीं अरुचि भी नही।

(४) सम्यक्त्व या अविरत सम्यग्दृष्टि—

अति महत्त्व के लाभ की बात है। इस गुणस्थान मे आनेवाला जीव लाभ प्राप्त कर लेता है। इसमे दूर, वह प्राय, स्व-आत्मा से दूर क्रूर भी। निर्मल श्रद्धा सर्वज्ञ वीतराग के वचनो मे। वस्तु को उसका स्वभाव पहचान करे-जाने और माने भी। सद्दहे, शक्य अमलीकरण भी। अमल न करनेसे ही अविरत। उक्त प्रवृत्तिसे रुकावट न भी होने पावे। अपितु हेय को हेय ही माने और बोले। उपादेय की प्रशसा करे। प्रचार भी करे। कडक अगर कुदरत के सयोगसे महा सप्त व्यसन सेवी आत्मा भी अत करण से इस गुणस्थान को प्राप्त कर चुका भी हो। यह है जैनशासन की अनोखी-अपितु नेचरल युक्तिवद्ध विचारणा। पतितपावनी वीतराग वाणी का यह एक अद्भुत चमत्कार है। यह अगर आत्मसात् न हो, तो, बाह्य प्रवृत्ति की बहुत कीमत भी नहीं। पांच महाव्रत व्रत भी नही। बारह अणुव्रत भी विना कीमत के। सम्यक्त्व सच्ची दृष्टि-स्वरूप श्रद्धा तत्त्व श्रद्धा-यह है नींव।

चाहे इस स्टेज पर व्यक्ति मे विरति-व्रत-नियम-पच्चक्खाण न भी हो। अपि तु स्पेशयल विशिष्ठ कर्तव्य है ही।

सुदेव-सुधर्म सुगुरु की उपासना, भक्ति, प्रभावना, प्रचार, उसके दिल में। भगवान के आज्ञाकी ओर उसका अथाह प्रेम है। सत्य का सुदृढ पक्ष। सिद्धांत के लिए कुर्बानी भी दे दें। सर्वस्व कुर्बान कर दे। दानरुचि शील के प्रति सद्भाव और पालन भी यथाशक्ति। तप उसको अच्छा लगे। श्री कृष्ण महाराज को मौन एकादशी जंच गई। इस तरह दिल साधुत्वके लिए इच्छा करे। व्याकुल भी बन जाय।

(५) देशविरति—

यह गुणस्थान आत्मा की परिणति है। सिर्फ बाहर की प्रवृत्ति नहीं है। भावना का अमली करण करने की तैयारीयाँ, यह है उसीका फल। ऐसा करना चाहिये वह है. उसकी भावना। कब उसका अमलीकरण करूं—कब करूं। ऐसा तीव्र हार्दिक अभिलाष —आत्मिक— यह है परिणाम।

देशविरत पांच अणुव्रत, तीन गुण व्रत, चार शिक्षा व्रतादि में दत्तचित्त रहता है। प्रतिक्रमण पौषध आदि में उद्यमवंत रहे। स्थूल से, अंशसे व्रतों का पालन करे। सर्व विरति का अभिलाषी होता है। व्यवहार शुद्धि की सम्पूर्ण जागृति।

(६) प्रमत्त संयत—

प्रमाद करता है ऐसा नहीं, अपितु प्रमाद हो जाता है। साधुत्व का पालन करता है। अपितु छोटी छोटी बातों में स्खलन हो जाता है। मन—वचन—काया के योग उपयोग से बाहर भी चले जाय। ऊठते-बैठते, हलन-चलन घूमने में जयणा भूल भी जाय। मतलब यह है, कि अतिचार का सेवन हो जाय। परन्तु उसके प्रति जागृत रहे। न होने पावे इसके

लिए सम्पूर्ण सावचेत बना रहे। बहुत से पोइन्टस पर ख्याल रखकर जागृत बने रहना, यह है, एक गुणस्थानक।

(७) अप्रमत्त सयत—

यह दशा आती है और जाती है, झूले की गति के समान। षष्ठ स्थानकसे सप्तम स्थानक तक-बडा आनदजनक यह गुणस्थानक है। उस काल-मे आत्मा, परम आनन्द मे ही रमण करता है और ऐसे ही करते करते परिणति—परिणाम ऊर्ध्व चढते चढते आठवे गुणस्थानक मे पहुँच जाता है।

(८) अपूर्वकरण—

भव भ्रमण मे यह एक अपूर्व परिस्थित का अनुभव है। क्षपकश्रेणि में चढता जाय, तो कैवल्य ज्ञान प्राप्ति तक पहुँच जाता है और उपशम श्रेणि तक पहुँचे तो ग्यारहवें गुण स्थानक से गिरता है। यह विषय बहुत सूक्ष्म विचारणा, अभ्यास और गहरी सूझ की अपेक्षा रखता है।

(९) अनिवृत्ति बादर—

यहाँ पर आत्मा बलिष्ठ बनता है। आगे बढने का वेग भी बढता है। बादर बडे कषायो को हटा देता है। आत्मा परने कषायादि का वेग कम बनता जाता है।

(१०) सूक्ष्म सपराय—

अति सूक्ष्म लोभ के बिना अन्य कषाय विचारे मरण के समान परिस्थिति मे आ जाते हैं। सीधा बारहवे स्थान तक पहुँचने वाला "मोह विजेता" बनता है। इसके बाद थोडे समय के बाद तेरहवें स्थान पर पहुँच ने पर "सयोगी" केवली क्या न बन पावे?

(११) उपशान्त मोह—

बडा विचित्र—उक्त शान्त पडा हुआ मोह, सत्ता में से जागृत हो जाता है। ऋद्धि, शाता या रसगारव आदि द्वारा आकृष्ट होता है और बडी महेनत से चोटी तक पहुँचनेवाले का पैर खींचता है। गिरा! गिर गया। बिलकूल गिर पाया। गेवी लात-भयंकर पात। कोई छठे, कोई चौथे—कोई प्रथम। रे, कोई तो ठीक नीचे निगादे में भी। मोह तेरा उल्कापात भयंकर। सर्वथा क्रूर-निष्ठुर।

(१२) क्षीण मोह—

कैसा सुन्दर नाम है। अनादि कालसे आत्मा पर काबू रखकर बैठा था। उक्त मोह-महा मायावी-पर को अपना मनाकर पाताल में ढकेल दे। उस मोह का सर्वथा नाश हंमेशा के लिए। अंश भी उसका अस्तित्व नहीं। उक्त समय पर हँसता, खेलता, कूदता, नाचता, ऐसा जो दुनिया का नाटक है उसे देखने का ज्ञान आया समझे। आवरण गया। रात गई। मुक्ति की उषा प्रगटी।

(१३) सयोगी केवली—

चराचर विश्व को देखे उसका ज्ञान करे। भूत-भविष्य-वर्तमान के सभी पर्यायों को—फेरफारों को उत्पत्ति-स्थिति-विनाश-को आत्मा की आँखोसे देखे। कैवल्य ज्ञान-आत्मज्ञान ही समझ लो। बाह्यचक्षु की भी जरूरत नहीं। गह्वर में, पेडो, गिरि पर चढो, कान में बात करो, संज्ञा से या हाथों के इशारोसे समझाओ। ज्ञानसे सब कुछ देखे, समझे भी। इसलिये ही कहावत है कि "ईश्वर का परमात्मा का तो डर रखो।" उतने बडे स्टेज पर अब भी शरीर की बात तो रहती

ही है। मन का चाहे उपयोग न हो, अपितु वचन तो बैठा है ही। मन का चाहे उपयोग न हो फिर भी द्रव्य मन तो है ही सही। तीनो योग है। इसलिये सयोगी। कर्मबन्ध नहीं ऐसा कहने पर भी अपेक्षित। पहले समय मे बधन, दूसरे समय में वेदन अर्थात् अनुभव और तीसरे समय मे निर्जरा अर्थात कुछ भी सबन्ध नही।

(१४) अयोगी केवली—

सूक्ष्म मन का रुधन। सूक्ष्म वचन का रुधन। अत मे सूक्ष्म काया का भी रुधन। एक समय मे सिद्ध शीलासे भी ऊपर अनत काल तक। अनन्त ज्ञान मे रमते। अनन्त शक्ति के स्वामी। अनत सुख मे विलसे। "दुनिया नाटक देखे, मांझी बैठे महलाते।" सिद्ध–बुद्ध निरजन बने। आत्मा।" अजन्मा को उपाधि किस प्रकार की ? यह है महा शासन की क्रम बद्ध पद्धति। प्रस्थान और उत्थान। कोई भी प्रकार का पक्ष नही। किसी के लिए भी द्वार बन्द नही। हर कोई आत्मा भाव पूर्वक आवे। शक्ति के अनुसार सोपान पढे। उत्साह से धीरजसे, प्रेमसे भक्तिसे कोई पहले या कोई पीछे से पहुँचेगा अवश्य ही। शिखर जीत लेगा अवश्य। गीर ने पर प्रयास जारी रखे, तो अवश्य चढ जायेगा और ऊपर पहुँचेगा। यह **निर्मल, निर्बाध सार्वजनिक राजमार्ग है मानव उन्नति का।** सच्ची और आत्यतिक शाति समाधि का।

यह मार्ग मानव भव मे ही मिलता है। देवभव मे ऐसा अरे, विरति गत-प्रवृत्ति रुप छोटा-सा भी गुणस्थानक गत, उत्थान अशक्य है, इसलिए ही मानव भव महँगा है। इस समझ की व्यापकता, वही है सम्यक्त्व। इस समझ का

सपूर्ण अमल वही ही छट्ठा । उसका वेग आठ से बारह तक। उसका प्रत्यक्ष फल तेरहवां । उसका सपूर्ण अनंत फल चौदहवाँ । इस सर्वतोमुखी उन्नति के पथ में सभी का कल्याण हो, कल्याण हो ।

४४. घाति अघाति कर्म

गुणस्थान क्रमारोह में कर्म विक्षेप करेंगे । घाति याने भयकर । घाति के नाश हो जाने पर "अघाति" बेचारे । परन्तु जाति तो कर्म की ही । कोई लोखंडी सोनगढी तो कोई नम्र—मुलायम पत्थर के समान । अपितु पत्थर ही तो पत्थर । लगने पर लहू निकालेगा । इसलिए उनसे सावचेत बने रहना । उसका नाश ही कल्याणप्रद है ।

(१) घाति ४: प्रथम ज्ञानावरणीय—

ज्ञान, ज्ञानी की निदा, अवज्ञा और नाशसे बन्धन प्राप्त करेगा वह तो स्वाभाविक है । उसका फल है, बुद्धि की कमजोरी, गूंगापन, अन्धकार में डूबे रहना । ज्ञानपंचमी की "वरदत्त गुणमंजरी" की कथा बहुत कुछ कह देती है ।

(२) दर्शनावरणीय—

सम्यक्त्वी ज्ञानी–आदि का सामना करने से या वितंडा-वाद से बन्धन में पडता है । फलतः परभव में अन्ध, रतांध बनते है और पाई हुई शक्तियाँ आतर शक्तियाँ, निद्रा पचक से आवरण में आ जाती है । दब जाती है । नष्ट–भ्रष्ट हो जाती है । जो आत्म विकास के घातकत्व में परिणमती हैं ।

(३) मोहनीय–

महा भयकर । भव भव का काला सांप भावप्राण लेने में

ही खुशी । वैर-कलह-ईर्षा आदि से बन्धाता रहे । राग-द्वेष उनके संतान । तिर्यंच नारक के झहरीले भवो मे ले जाता है । परन्तु यह तो सामान्य विपाक है । परन्तु सत्य को सत्य न ठहरा देना वही है उसका स्वाभाविक दुगुण । यही दुर्गुण ही मिथ्यात्व मोहनीय । आनेवाले सम्यक्त्व को रुकावट करना वही है उसकी कमनीय कला । अगर आत्मा बलिष्ठ बने, तो शुद्ध यथाप्रवृत्तिकरण मे अपने को ले जाय । अपूर्वकरण द्वारा अनिवृत्ति करण मे निवेश करता है । अंतरकरण द्वारा सम्यक्त्व को प्राप्त कर ले, तो उसका सगा भाई चारित्र मोहनीय आकर खडा रहे । न देशविरत होने दे । न सर्व विरत होने दे । साधुत्व का कडा दुश्मन । ये दोनो को नष्ट करने दे तो धर्मराजा की महेरबानी समझो ।

(४) अंतराय—

यह भी पाँच रुपोसे रुकावट करता है । गत-भव मे जिस वस्तु मे किसीको रुकावट की होगी, उक्त वस्तु यह भव मे न मिलने दे । दान देने मे भी अंतराय करे और धर्म में वीर्य का स्फुरण न करने दे । ये दे । उसकी खास घातक प्रकृतियाँ सुविख्यात हैं । इसलिये बलात्कारसे मन के ना कहने पर भी अवश्य दान देना । इच्छा के बिना भी धर्म की प्रवृत्ति करनेसे इच्छा का जन्म होगा ।

अब (४) अघाति—(५) नामकर्म

शरीर, अंगोपांग, यश, अपयश, सुरूप, कुरूप, इत्यादि उनके खेल हैं । बहुत समझने योग्य भी है ।

(६) गोत्र—

ऊँच-नीच कुल की चावी इस गोत्र के पास रहती है ।

इसलिए ऊँच या नीचता की प्राप्ति-यह किये हुए कर्मों का ही फल है। यह लोक स्थिति है। इत्यादि बहुत सी बातें समझने योग्य भी है। जमाने के नाम पर अंध बने रहने से कोई फायदा नहीं।

(७) आयुष—

परभव का आयुष निश्चित करनेवाला। बहुत निश्चयात्मक और गाणितिक है। देव-मनुष्य-तिर्यंच या नरक, किधर जीव ले को जाना ? यह निश्चय कर के उसकी प्राप्ति करानेवाला है। देव, मनुष्य में, या तिर्यंच में जा सके। नारक-मनुष्य या तिर्यंच में जा सके। मनुष्य और तिर्यंच चारों गतियों में जा सके। यह सामान्य नियम उसके उपनियम भी समझने योग्य है।

(८) वेदनीय—

शाता-अशाता, इसके दो विभाग। शाता में सुख की ऊपज, शरीर की तंदुरस्ती बनी रहे। अशाता से रोगादि पीडा करते हैं। स्वास्थ्य भी शिथिल बने और मन को पीडा होती रहे।

४५. "कर्म साहित्य और आज का विज्ञान"

ये आठों कर्म और उनके उपविभाग १५८। यह भी बडा विज्ञान है। गहरा विज्ञान है। कर्म के परमाणु किस तरह आत्मा को आकर लग जाते हैं। आत्मा की शुभ अशुभ विचार श्रेणी लोहचुंबकत्व का काम किस तरह करती है। रागद्वेष और मोह की जंझीर कैसे भयंकर दुःख मे डालती हैं। इत्यादि संपूर्ण चर्चा जैन शास्त्रों में ही मिलेगी।

परमाणुओ की ताकत और परिवर्तन स्थिति इत्यादि बातें अभ्यास करने योग्य हैं। आज का सायन्स उसके आगे अति वामन मालूम होगा। एक मे आत्म कल्याण-लोककल्याण की भावना है तो दूसरेमें सहार की सब शक्यताएँ और सामग्री भी भरी पडी है।

४६ "श्री सघ और कर्तव्य दिशा"।

ये सब ज्ञान की श्रेणियाँ भविष्य मे ज्ञान के लिए सुरक्षित ही रहनी चाहिये न। यह कर्तव्य श्री सघ का है, श्री सघ का अर्थ है साधु-साध्वी श्रावक-श्राविकाअें। दो उपास्य। श्री सघ श्रमण प्रधान है। पू सुविहित शासन समर्पित आचार्य देव उक्त सघ के केन्द्रस्थान मे है। शास्त्र की आज्ञा के अनुसार उपदेश, प्रेरणा-प्रभावना-प्रचार करना है। श्री सघ सभी बात मे उनका मार्गदर्शन लेता है और बर्ताव भी ठीक उनके अनुसार करता है। यह है श्री सघ की सविधान प्रक्रिया। साध्वी सस्था भी एक सौम्य बल है। तप त्याग-और स्वाध्याय का भी एक अनूठा प्रतीक है। मातृसस्कार का भी एक केन्द्र है। श्राविकाओ का उद्‌भव स्थान है। भविष्य मे मातृस्थान लेनेवाले को भी जन सस्कार वही प्राप्त होने हैं। वानीमें मृदुता, दिल मे सरलता, विवेक वर्तन ने-ये सब सस्कार वहा प्राप्त होते हैं।

जीवविचार नवतत्त्व आदि प्रकरण ग्रंथो की जीवित और जागृत अध्ययन शाला वह है। सस्कार सुरभि का पुष्प-बाग ही रहो।

'श्रावक तो साध्वाचार के पालन में सहायक'। शासन के कार्यमे खडा रहनेवाला। साधु का माता-पिता ही कहो श्रावक-श्राविका है। परन्तु कब ? भक्तिपूर्ण हृदय से सभी प्रकार का वहु मान से देदिप्यमान भरा हो तब। श्रावक श्राविकाओं को सदैव चिन्ता। साधु-साध्वीओं को थोडा सा भी कष्ट न होने पाव। उनकी चिन्ता रखनेवाले। उनके भाव प्राण का रक्षण हो आत्मा के परिणाम ऊँचे बने रहे उसकी सदैव सावधानी रहती है।

इन चारो अगों को क्या आगमज्ञान की ओर जागृत नही बनना चाहिये ? महा मूल्यवान आगम शास्त्रों को लिपि बद्ध करना चाहिये। श्रावक द्रव्य का खर्च करते है। अरे ज्ञान द्रव्य की जमा की हुई रकम उसी ही प्रवृत्ति में व्यय करे, वह है हितावह। विद्वान साधु, विदुषी साध्वियाँ अपने अपने अधिकार के अनुसार आगमादि लिखे, तो निर्जरा ज्ञान का रक्षण और सयम की रक्षा भी होगी। उनके कागज ही अनोखे। उनकी स्याही घट्ट और ऊँची। यह तो है दिशासूचन सिर्फ।

आज के युग मे तो राजकीय आक्रमण का अन्त नहीं। कोई सीधा और कोइ छल से। धर्मध्वसक प्रवृत्तियाँ भी धर्म के नाम पर अतिभयकर रीति से आयोजनपूर्वक। उसी में वीर के गणवेषधारी भी शामिल होते है। उस वक्त रक्षण करना कठिन ही नही, अपितु बहुत आवश्यक भी वन जाता है। यह एक अंधकारपूर्ण युग है, जागृति के लेवास में। समझकर सावधानी से चलेगा वही फायदा ऊठा सकेगा। उपेक्षा करनेवाले का प्रायः आत्मधन नष्ट हो जायगा।

अति कीमती, अनमोल खजाना प्राप्त हुआ है श्री सघ को। सिद्धात स्थापत्य-ज्ञानकोष-तीर्थस्थान-उपाश्रय-देव मदिर-धर्मशालाएँ, ये सब एक या दूसरे प्रकार से रक्षण माँगते है। जजीर, बहुत फैल गई है। फिसल से छूटने के लिए, श्री सघ को सदैव सतर्क-सावधानी रखनी चाहिये।

४७ ॥ हमारे महा प्रभावक तीर्थ स्थान ॥

जैन शासन मे तीथ स्थान आनद-प्रमोद के स्थान नही हैं। ये हैं मुक्ति मार्ग के उन्नत शिखर। पार करे, वह तीर्थ। किससे पार होना है ! जो मानता है, मैं ससार म डूब रहा हूँ उससे। जो समझता है कि 'दुख की खान है, "ससार" बडा कष्टदायक"। ससार के सुख वे है अपने दुख के कारण। पापो से दुख और सुख के लिए ही बहुत जघन्य पाप। ऐसी समझ प्राप्त करनेवाले तीथ मे जाते है। और ससार के पार भी पहुँचते है। दूसरे सब। तो घूमते फिरते रहे और ससार का भ्रमण किया करे। कोल्हूके बैल की तरह वही का वही।

राणकपुर का मनोरम्य प्रासाद—

खेलती बोलती कला है। एक एक स्तभ मे बहुत से रुपयो का खर्च हुआ है। वह खर्च मुक्त हाथो से धन्य जीव ही करते है। यह देखने के लिए—अमेरिकन-युरोपियन प्रवासी आते हैं। जैनी लोग भी आत्म दशन करने के लिए जाते हैं। परमात्मा के दशन से आत्मदशन होता है, कला और स्थापत्य से आत्मा के गुण खिल उठते हैं। उदार दानवृत्ति अगर न हो, तो ऐसी झलक कैसे आवे। जैन धम की विश्व धर्म की घटा,

बजती है। सब का परम सत्य की ओर ध्यान खीचने की दृष्टि से। कीर्ति के कंगूरे उनके मन कंकड के समान हैं।

आबू की विमल वसही—

वस्तुपाल-तेजपाल निर्मित जिनालय। यह है परम भक्ति का आदर्श। देरानी-जेठानी के आदर्श गोंख! उन सब के पीछे सिर्फ उदार दिलसे धन का व्यय ही नही है अनोखा आत्म भोग भी है। इस निर्माण में उदारता की अवधि भी नहीं है। कलाकारों को ऋतु के अनुसार खुराक, ठण्ड हटाने के लिए गरम कपडे और जलते हुए चूल्हे। मजदूरी के रूप में स्थापत्य की भूकी के वजन के बराबर चाँदी दी गई थी। इसी तरह तैयार हुई है आबू की अद्‌भुत कला भारत की सौरभ।

देलवाडे के पित्तलिया देव:

आत्मा का चमकीला (प्रभावित) सुवर्ण।

'आबू-अचलगढ अति सुन्दर मनोहर रे लोल!

गर्व लेने योग्य 'गिरनार'—

शामला-मनोहर-नेमिनाथ भगवान के दर्शन करो और पापको दूर करो। आँखों को शीतल बनाओ और काम को मारो। ब्रह्मचर्य का महा रूपक—'राजीमति का त्याग किया सुनकर पशुओं के चित्कार।' यह एक सकेत था। संकेत मुक्ति गमन का, संयम की तैयारी का, जिसका नाम है 'प्रीति'।

'अष्टापद महातीर्थ'—

अब तो अदृश्य है। रशिया से भी अति दूर पर। हिमाच्छादित प्रदेश में अगर हो तो ज्ञानी को मालूम। चौबीस तीर्थंकरो के स्व-स्व देह-प्रमाण मूर्तियाँ। जिस की रक्षा और पूजन करते थे देव।

शिखरजी—

वीस तीर्थंकरो की निर्वाण भूमि—यात्रा अठारह मील तक की लबी है। शामळाजी का पूजन करो और पाप को दूर करो पापो से धूजो। पारसनाथ की पहाडी—भव्यात्माओ को सदैव मगल करने वाली यह पहाडी भूमि है। प्रकृति की रम्यता कश्मीर के सौन्दर्य को भी भुला दे वैसी है। वनस्पतियाँ की रमणीयता आत्म सौन्दर्य की याद करा दे।

तारगा की पहाडी—

हमे पार करे। प्रत्येक नसमे धर्म ही धर्म, जैसे वडे श्री अजितनाथ भगवान। सीडी पर चढो और भगवन्त श्री का पूजन करो। कुमारपाल महाराजा का बनवाया हुआ स्थापत्य। वडा चौक। प्रभुजी से बातें करो और पापो को हटावो। ध्यान धरो और मुक्ति पाओ।

शत्रुजय —

प्राण प्यारा-पवित्रतम पुण्यगिरि। प्रदक्षिणा करो शत्रुजय की। जहाँ आदीश्वर दादा का स्थान है। बाबा की महिमा बहुत है। ससार से पार करा दे। सद्गति अवश्य होवे। भाव से गिरिराज की प्रदक्षिणा करो। ससार बडा भयानक ! मुक्ति ही सुखकारी। ससारके सुख लुभावने है आत्मा का विस्मरण कराते हैं। साधुता आत्मा की तारक है। श्रावकपन साधुता की प्राप्ति करा देता है। उसमे सहायक है तारक तीर्थ। भक्ति से उनकी भेट करूँ और दादा के अग मे लेटू आज तो मेरा अहो भाग्य हुआ। ऐसे भावो से वदना करूँ। जयणा से विकसित मन। तन भी थकना नही। चरणो मे धन की प्राप्ति होती है। दान देने का मन हो जाता है। मुक्ति के लिए अब भव की गणना कर नही।

मंदिरोंकी पंक्तियां—सिटी ऑफ टेम्पल्स—

"उज्ज्वल जिन गृह मंडली जहाँ दीपे उत्तंगा ।
मानो हिमगिरि विभ्रमे आई अंबर गंगा ॥
बिमलाचल नितु वंदिये ।

पद पद पर निर्जरा, प्रति सोपान में जयला। बहती हुई भावना। यह आनंद और उल्लास "रोप रोड में" आता है ? ये पुण्यवंध टेकसी सर्वीस में भी कहा से मिले ? वहुत से सार्वमिक मिलते है, और पाप भी नष्ट होते हैं।

करुण कहानी है, आज के युग की या जवानों की ? आज के ऐज्युकेशन की या मावाप की वेफिक्री की। क्या जैनों का नैतृत्व इस तरह स्थिर रह सकेगा ? क्या तिरने के स्थान पर आकर अपना नव युवक डूव जायगा ? देखो, एक हाथ मे ट्रान्जीस्टर; सीनेमा की तर्ज और दूसरे हाथ में सगिनी का हाथ—मर्यादा मिर मिटी। भावना लुप्त हुई। महापुण्य के स्थान पर जघन्य पाप। अज्ञान समझो या उद्धताई मान लो। सत्य तो यह है कि 'पुण्य स्थाने कृत पाप वज्रलेपो भविष्यति।' पापों का महावध और वह भी तीर्थ स्थानों मे।

और दूसरी तो वहुत सी कल्याणक भूमिकाएँ है। काशी-चंपापुरी इत्यादि। झगडिया-भीलडीया, मांडूकजी, कुल्पाकजी, अंतरीक्षजी, नांदीपा, मुच्छाला महावीर, ब्राह्मणवाड़ा-दियाणा, इत्यादि। जिन्हें स्पर्श करने से भी पुण्य प्राप्ति। पूजने वाले पुण्यशील। प्राप्त करेगे वे पार हो जायेगे।

४८. यह 'आशातना" क्या है ?

जिस वेफिक्री के कारण भविष्य में वहुत सी 'आशाता'

बहुत से आत्माओ को प्राप्त होवे। उसी में अज्ञान मुख्य होता है। प्रत्येक कार्य को अनुष्ठान की शास्त्रीय विधि है। जैसे कोर्ट मे भी-वकीलो को भी रूल्स, और रेग्युलेशन्स के साथ रहना पडता है।

जिस तरह राजसभा या धारा सभा मे स्पीकर की मर्यादा रखनी पडती है। जो घाघल करनेवाले हैं उन की बात छोडो। यह है इस युग का व्यापक जहर। जो आज विद्यार्थी आलम तक पहुंच चुका है। जिनालय की चोरासी आशातनाएँ, गुरुदेव की तेंतीस आशातनाएँ। समझ कर दूर करनी चाहिये। वैसे ही तीर्थ स्थानो की, यात्रासघ-यात्रा की, आशातनाएँ दुर करनी चाहिये। मर्यादा के उल्लघन का अर्थ है, जान बूझकर आशातना का पापका स्वीकार करना। पाप मोल लेना। यह बात बडी गहरी और विचारणीय है। वैसे ही माता पिता की बुर्जुगो की, मर्यादा भी आर्यसस्कृति मे प्राधान्य रखती है।

४६ 'ज्ञान और ज्ञानके भेद''

ज्ञान आत्माका गुण है। आत्मा अनत ज्ञान का मालिक है। आत्मा मे शक्ति का अमर्यादित खजाना भरा पडा है। कर्मो के द्रव्य बहुत लगे हैं। जिस तरह बादलो से ढका हुआ सूर्य, धुधला प्रकाश फेंकता है और मालुम होता है कि 'दिन' है। वैसे ही सामान्य ज्ञानसे घमडी नही बनना चाहिये। आजका (एम ए पी एच. डी) उसकी गिनती मे कुछ भी नही। बेरीस्टरी भी, कुछ नही। सिर्फ घमडी बने रहने मे कुछ भी नही होगा। ज्ञान असीमित है। पूर्व मो का या चौदह पूर्व का ज्ञान, अति विशाल है। अपितु कैवल्य ज्ञान के आगे, तो वह है बिलकुल छोटे बिन्दु के समान। ऐसे जो नवपूर्वी भी आत्म-

ध्येय के बिना अज्ञानी माने जाते हैं। तो अब चाहे जैसा विद्वान क्यों न हो। ज्ञान आत्मा के उत्थान के लिए है। प्रगति के लिए है। अधःपतन के लिए नहीं। स्वपर का भेद समझने के लिए है। जड-चेतन के विवेक के लिए है। जड देह के साथ चेतन आत्मा क्यों संलग्न हुआ। कब से? बीच में मीडीयेटर कौन है। और ऊँच नीच के भेद क्यों है। गरीब और धनवान! न्यायाधीश और चपरासी। राजा और कंगाल पडित और गँवार। विद्वान और मूर्ख। सुखी और दुःखी। तंदुरस्त और नादुरस्त। इत्यादि विविध प्रकार के प्रश्नो के हल करने के लिए ज्ञान आवश्यक है।

वस्तु की वस्तु के स्वरूप में पहचान करा दे वही है ज्ञान। ज्ञानी सत्य को सत्य रूप से और झूठे को झूठा ठहरा देता है। सोना तो सोना। पीतल तो पीतल ही रह जाता है। उसमें समभाव रखना, यह एक अलग बात है। अपितु पहचानने की समझ आवश्यक है। जो जैसी स्थिति में हो वैसा ही इसको कहा जाय न! हाथी और गधा एक नहीं कहा जायगा। कोई कहे तो उसे मूर्ख माना जायगा।

सिर्फ भाषा ज्ञान या अक्षर ज्ञान किस काम का है। उद्धत या ईर्षालु न बनावे तो अच्छा होगा। इस लिए कहा गया है,

"विनय बिना विद्या नहीं"
नाहीं विनय बिना विवेक।

सर्वज्ञ शास्त्रों में ज्ञान के पाँच भेद हैं। उपभेद अकावन प्रकार के है। और तो नयभेद बहुत से प्रकार के हैं। आगम ज्ञान सचमुच पराकोटि का है। गुरुगम बिना फलदाता नहीं बनेगा। फुटेगा जरुर। आत्म दृष्टि से और व्यवहार दृष्टि से भी।

(१) मति ज्ञान—

बुद्धि का विषय है। महनत के साथ पूर्व भव का क्षयोपशम भी चाहिये। विचार पुर सर पद्धति भी मतिज्ञान है।

(२) श्रुत ज्ञान—

शास्त्र सुनने से, पढने से, गुरु मुख से उसका तात्पर्य समझने से होता है।

(३) अवधि ज्ञान—

इन्द्रियों की सहायता बिना आत्मा स्वयम् द्रष्टा बने। स्वर्ग के देवों को खास कर के होता है। मनुष्यों मे बहुत अल्प संख्या में। उस की मर्यादा होती है। अष्टांग निमित्त आदि तो मति ज्ञान मे आ जायेंगे' ज्योतिष आदि भी।

(४) मन पर्यव ज्ञान—

मन मे चिन्तन द्वारा, मनन की हुई वस्तुओं को पहचाने पर्यायों के साथ। जिनेश्वरदेव दीक्षा लेते ही तुरत उस ज्ञान को प्रकट करे।

(५) केवलज्ञान—

सिर्फ प्रकाश ही प्रकाश। चराचर विश्व को, सभी पर्यायों के साथ पहचान ले। भूत-भविष्य वर्तमान कुछ भी शेष नहीं। आने के बाद कुछ भी कम नहीं होता है। यद्यपि अनंत काल में बाद भी नष्ट नहीं होता है। मुक्ति में ले जाकर अजन्मा बना दे। आत्मा अनंत सुख में विलसे, अनंत समय तक।

इन सभी प्रकार के ज्ञानो की कोटि गुरु गम से—जैन महात्माओं से जानने से उनकी महत्ता समझ में आ सकेगी।

५०. "क्या ज्ञानी को क्रिया की आवश्यकता नहीं ?"

ज्ञानी और क्रिया में रस नही ऐसा कभी नहीं होगा। न कर सके यह संजोग से बनेगा। करने में पूर्ण रस। सच्चा ज्ञान, क्रिया की प्रेरणा करता ही रहेगा। कोई भी, पेशा बडा मुनाफा प्राप्त करानेवाला है, ऐसा मालूम होने पर उस पेशे को किये विना चैन न पडेगा। अगर धन न हो, तो किसी से कर्ज लेकर भी पेशा करेगा। तज्ज्ञ-अनुभवी की सलाह मशविरा लेगा। परंतु येनकेन प्रकारेन "मुनाफा" प्राप्त कर, कही विश्रांति करेगा।

क्रिया प्रेकटिकल ज्ञान है। बिज्ञान के विद्यार्थी को प्रयोगशाला। वैसे ही ज्ञानी के द्वारा बताए हुए सब अनुष्ठान में बड़ी दिलचस्पी होती है। सामायिक बिना उसको चैन नही। क्योंकि सामायिक ही आत्मा। समता व प्रशम की सर्वोच्च चोटी, वही है। आत्मस्वरूप। सामायिक करनेवालो को पौषध प्यारा होता है। अवश्य बारह या चौबीस घंटे का सामायिक। आरंभ-समारंभ से पर। व्यापार धंधे से मुक्त। कुटुम्ब झंझट से मुक्त। उपाश्रय में गुरु के सानिध्य में सारा दिन जप-तप-क्रिया और ध्यान में लगा रहता है। वाह ! कैसी लगाई है आत्मा की मस्ती। मोह राजा के साथ मुठभेड। मोह पतला-क्षीण होता जाय संसार में रहे परंतु मन मोक्ष में।

पौषध-सामायिक के लिए सप्रमाण गर्म आसन-मुहपत्ति-मुखवस्त्रिका चाहिये। निश्चित नियम के अनुसार और अति आवश्यक साधन। जीवदया का जागरूक प्रतीक प्रत्येक क्षण, प्रमार्जन में उपयोगी होगा। उसका नाम है "चरवला"। ऊनकी मुलायम दशीओं का बना हुआ। साधुजी के ओघे का

छोटा प्रतीक । यह आत्मा साधु बनने की इच्छा करता है, उसका वह प्रतीक है । जीवजतु को बचाकर काजा लेने के लिए, कुडा-कचरा दूर करने के लिए, 'दडासन' । उसकी लकडी की डडी लम्बी होती है ।

साथ मे स्थापनाचार्य भी होता है । पाँच अक्ष कोडा । स्थापना का निक्षेप होता है गुरु स्थान मे जिस तरह पर्वत-पूजा, प्रिया का निवास स्थान, प्रिया की याद दिलाता है । उक्त स्थापना पर आँख गडाकर, सभी क्रियाएँ करते रहना । पुस्तकादि ज्ञानादिक और क्रियादिक के ज्ञान के ही साधन मात्र हैं ।

उसी तरह "उपधान" श्रावक श्राविका के लिए । "योगोद्वहन" साधु-साध्वीयो के लिए । ४७-३५-२८ दिनो की तीन हफ्तों से उपधान की क्रिया । सुबह मे साढे चार बजे उठना । प्रतिक्रमण करना । एक सौ पूरा "लोगस्स" "चौवीस-जिनो का सुन्दर स्तवन) का कायोत्सर्ग खडे खडे करना । बीस नोकारवाली, सौ खमासमणा (पचाग प्रणिपात) तीन बार देव वदना । एक दिन उपवास । दूसरे दिन नीवी-एक समय भोजन उसमे भी वृत्ति सक्षेप और रसत्याग और वह उणोदरी । वृद्ध भी करे, बाल, जवान और प्रौढ भी करे । सब आराधना करते हैं । भक्ति करनेवाले भक्ति करते है कैसी है भव्य योजना ।

योगोद्वहन मे उपधान मे गुरु सब आराधना कराते हैं । पाठ पढावे -सूत्रो के अर्थ भी सुलझाते हैं । सब आराधक झिलते हैं ज्ञान उपासना का विधि मार्ग । योगोद्वहन मे आंतरे आयबिल और नीवी -एकासन । और महानिशीथ के योग मे ,तो पूर्ण सतत आयबिल । उसने

(४) उपानह—

एक या दो परे-युगल अधिक नहीं।

(५) तंबोल—

पान-सुपारी-मुखवास की चीज का प्रमाण।

(६) वस्त्र—

दस-पद्रहसे अधिक नहीं। नियम मुजब धारण करना।

(७) कुसुम—

पुष्पादि सूंघने के पदार्थों का भी प्रमाण।

(८) वाहन—

तांगा-मोटर-ट्रेन-प्लेन इत्यादि का प्रमाण से उपयोग।

(९) शयन—

बेडीग-पलग-गद्दे आदि का प्रमाण रखे।

(१०) विलेपन—

अंगराग-तेल-अत्तर-साबुन इत्यादि शरीर मालिस करने की चीजें।

(११) ब्रह्मचर्य—

दिन का नियम तो होता है। धारणा के अनुसार रात्रि के नियम।

(१२) दिशि—

अमुक दिशा में निश्चित मैल से अधिक न जाना, उसका प्रमाण।

(१३) न्हाण—

स्नान एक या दो बार से ज्यादा नहीं

(१४) भत—

खुराक का भी समतोल प्रमाण-चाय-दूध-फ्रुट-सब उनके प्रमाण में।

सुवह मे नियम ले शाम को याद कर ले। धारणा से कम चीजे यदि उपयोग मे ली गई हो, तो आनद। रात के लिए नियम की फिर से धारणा कर ले। सुवह मे याद कर के दिन के लिए सुवह में धारणा कर ले। श्रावक के वारह व्रतो मे सातवाँ व्रत। "भोगोपभोग विरमण" आता है। वह सारी जिन्दगी का होता है। उसीमे से हमेशा का सक्षेप होता है।

जिसके उपरात छ काय और असि–मसि और कृषि के बारे मे भी नियम करना पडता है। यह सारा प्रयोग-विधि गुरु महाराज के पास से या जाननेवाले श्रावक से समझकर जीवन मे आचरण मे रखने-योग्य है।

५३ "श्रावक के बारह व्रत।"

सयम लेने की शक्ति नही है। साधुता बहुत पसद है। इस लिए उन मार्गो का अभ्यास करने के लिए 'श्रावक' अणुव्रत लेता है। क्योकि ससार की जजीर मे फँसा हुआ है। बहुत से कार्य मन मे दु ज रहने पर भी करने पडते है इस लिए मर्यादा मे पालन हो सके। बारह व्रतो का सक्षेप मे विचार कर ल।

(१) स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत—

किसी भी चलते फिरते जीव को जान बुझकर बिना

कारण मारने की बुद्धि से मारूँगा नहीं। इस तरह "सवा वसो" दया का पालन होता है। एक अन्नी।

(२) स्थूलमृषावाद विरमण व्रत—

पाँच बड़े झूठ नहीं वोलेगे। कन्या, गाय और भूमि के लिए झूठ न वोले दूसरे की धरोहर न दबा देना। गलत गवाही न देना।

(३) स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत—

मालिक की विना आज्ञा कोई भी चीज न लेना। राजा दंड करे या लोग अपयश फैलावे ऐसा कभी न करे। ताला तोडना या जेब काटना इत्यादि।

(४) स्वदारा संतोष परस्त्री गमन विरमण व्रत—

परिणीत अपनी स्त्री के सिवा और बड़ी स्त्रियाँ हमारी माता है। समवयस्क हमारी बहनो और छोटी लडकियाँ समान। यह थी भावना व्यापक हमारे आर्यावर्त की।

(५) परिग्रह परिमाण व्रत—

धन, धान्य, हवेली, मकान, दुकानों का, भीं संख्या से या तोल से प्रमाण। जैसे कि सब मिलाकर लाख या दो लाख से ज्यादा न रखना। विशेष होने पर अच्छे कार्यो में व्यय कर देना। उससे विशेष इस नियम के मर्म को जानने के लिए आय के दस-पंद्रह या बीस प्रतिशत प्रत्येक साल धर्मादा-सात क्षेत्र और अनुकंपा के कार्यों में व्यय करे ऐसा नियम। या गृह-कुटुंब का खर्च हो जाने पर वेन्क वेलेन्स का एक चौथाई अच्छे कार्यों में।

(६) दिक परिमाण व्रत—

अमुक दिशा मे अमुक मील, विदेश मे बिना धर्म के कार्य न जाना।

(७) भोगोपभोग विरमण व्रत—

प्रथम तो महा आरभ और हिंसामय व्यापार का त्याग इस व्रत मे आता है। बाद मे कर्मादान का त्याग। भोग एक वस्तु एक वार भोग्य-आहार-पानी-इत्यादि। वैसे ही जिस वस्तु का उपयोग वार वार होता है वह उपभोग जैसे वस्त्रादि उसका का नियमन।

(८) अनर्थदंड विरमण व्रत—

यह एक मजेसे पालन करने योग्य व्रत है जैसे कि नाटक, सीनेमा न देखना। इससे विना कारण पाप का बोझ न बढने पावे। ईसमे (१) आर्तध्यान (२) हिंसक या दूसरे को विना मागी सलाह (३) हिंसक उपकरण देना (४) जुआ, नाटक सीनेमा-इत्यादि कार्यो से दूर रहने से महा पापोसे बचा जा सकता है। बच जाते हैं, क्यो बचना न चाहिये ?

(९) सामायिक व्रत—

साल भारमें अमुक सख्यामे सामायिक अवश्य करना। सामायिक की महत्ता पहले आ चुकी हैं।

(१०) देशावकासिक व्रत—

दस सामायिक एक ही दिन मे करना। व्यापार-सैरो का त्याग। विशिष्ट नियम लेना। यह एक वार कम से कम वर्ष मे करना चाहिये। तदुपरात सातवें व्रत मे लिए हुए नियमो का प्रतिदिन सक्षेप मे अर्थात् चौदह नियम धारण करना यह भी है एक 'देशावकासिक'।

(११) पौषधोपवास व्रत—

साधु न बने अपितु भावना हो तो भी पौषध प्रतिदिन किया जाय। परन्तु वह न कर सके उन सब के लिए पर्व तिथियों पर अवश्य करने का विधान है। जिनेश्वर भगवान के कल्याणकारी पर्व भी उसी तरह आराधते है। धर्म और आत्मा का पोषण करे उसी का नाम है "पौषध"। उसीमें 'आहार त्याग' सर्व से या देशसे। (२) शरीर सत्कार। (३) गृह व्यापार (४) अब्रह्म-इन चारो का त्याग होता है। बारह घंटो का दिन और रात्रि मिलाकर, चौवीस घंटा का त्याग होता है। पर्युषणा में आठ दिन के पौषध की सुन्दर आराधना बालक बालिकायें भी करते हैं। सात दिनो तक एकाशन। शक्य हो तो आखरी दिन उपवास कर ले। यह है जैन शासन की गौरव की क्रिया।

(१२) अतिथि संविभाग—

मुख्यतः कम से कम वर्ष में एक बार अवश्य। अहोरात्रि के पौषध, उपवास के साथ करते है। पारणा में मुनिवर को प्रतिलाभते है। वे जो वस्तु भिक्षा में गोचरी में ले, उतनी ही चीजे प्रायः उपयोग में लेते है एकाशन में भी। यह तो सिर्फ सुपात्र दान का प्रतीक है। और ही और तो प्रतिदिन साधु-साध्वीयो को प्रतिलाभते हैं। श्रावक-श्राविकाओं का सार्धमिकवात्सल्य करना चाहिये। उनको मान से भोजन करवाना, कपडे पहनाये जाय उनको असल स्थिति पर स्थापित करना। इत्यादि कियाओ द्वारा धर्म में सुस्थिर बनाना। जिसके द्वारा धर्म की-शासन की और जिनेश्वरदेव की भक्ति होती है।

पहले पांच अणुव्रत और छ से आठ गुणव्रद होनेसे अणुव्रत कहा जाता है ? नौ से बारह तक आत्मा बहुत प्रकार की रीतियो से तालीम बद्ध होता है (शिक्षण प्राप्त करता है। जिसलिए उसे शिक्षाव्रत भी कहते हैं। यह है 'सोपान'। जिससे साधुरूपी सस्था की चोटी तक पहुँचने का मार्ग मिलता है।

५४ 'महापाप के स्थान सात व्यसन"।

विश्व की महा बुरी अवगुणदशा, वे हैं सात व्यसन। जैन मात्र उनसे परे रहेगे। १ द्युत-जुआ, २ मास भक्षण, ३ सुरा मदिरा पान, ४ परस्त्री गमन, ५ शिकार खेलना, ६ वेश्यागमन, ७ चोरी—ये सात व्यसन वडे भयानक और प्राणघातक भी हैं। आत्मघातक भी। इस लोक का निन्दा-पात्र और बहुत से कष्ट देनेवाले। परलोक मे दुर्गति के स्थान हैं। आज का वातावरण भयकर है। कुसग का रग लगे बिना न रह पायेगा। जिसलिए कुमारो को और छोटे बच्चों को बचा लेने की माता-पिता की नैतिक फर्ज है।

५५ "आठ प्रकार के मद"।

सात व्यसन हानिकारक है। वैसे आठ मद भी आगामी भव के लिए वडे भयकर है। जिस वस्तु मे मद होता है। वह चीज आगामी जन्म मे प्राप्त नही होगी। अगर मिले तो भी हीन कक्षा की-ज्ञातिमद कुलाभिमान से मद-बल के कारण मद, सौन्दय का मद-ऋद्धि मद-तप का मद-विद्या का मद-लाभ का मद-इत्यादि।

राजा का अभिमान-उसे कठोर और अभिमानी बनाता

है। आत्मा की सत्ता के आगे राज्य कोई विसात में नहीं। कोई सत्ता के कारण अभिमानी वन जाता है। लाखो के मालिक होनेसे अभिमान करते हैं। लेकिन सत्ता सुखे घास के बराबर हैं। खुद जलकर आपस में जला देती है। शाहआलम बादशाह के रिश्तेदार एक बार घर घर भिक्षा माँगते बाजार में दिख पाए हैं।

५६. "चार संज्ञाएँ"

अनादि काल से हेरान-परेशान करनेवाली। आहार-भय-मैथुन-परिग्रह। आहार संज्ञा से जन्म से ही पय.पान; थोडी सी आवाज से भयभित वन जाता है भय संज्ञा से। स्त्री का आकर्पण पुरुष की ओर और पुरुष का आकर्षण स्त्री की ओर अनादि काल से रहा है मैथुन संज्ञा से। परिग्रह संज्ञा-धन-वित्त-दुकान हवेली-गाडी-उद्यान-मोटर इत्यादि दुनिया का तूफान उसके लिए। मैथुन संज्ञा नष्ट हो जाने पर प्रायः परिग्रह संज्ञा शुष्क होती है। आहार संज्ञा बढाने पर वढती रहै, कम करने पर कम होती है। धन्य है। उग्र तपस्वियों को।

५७. "चारों के सामने चार"

चार संज्ञा का नाश के लिए, आत्मा पर का संज्ञा का काबू दूर करने के लिए। दानशील तप भाव धर्म बहुत आवश्यक है। ये चारों महारक्षक है। आतरिक और वाह्य रीति से। तप आहार संज्ञा को क्षीण करता है। आंतरिक अनाहारी पद-मोक्ष की लगन उत्पन्न कराता है। भाव-आत्म ,स्वरूप मे संलग्नता ला कर भय संज्ञा का नाश करता है। शील-ब्रह्मचर्य आत्मा के मूल स्वरूप को जागृत करता है। तन-मन की स्वस्थता से मन की इन्द्रियों पर काबू

लाता है। स्त्रीयो की ओर का आकर्षण कम होता है। पर-ब्रह्म मे एकत्व प्राप्त करने पर एक ध्यान होने पर आकर्षण कम होता है। उर्ध्वरेता बनने पर उग्र ध्यानस्थ योगी वन सकता है। दान-लक्ष्मी को तुच्छ बनवा देता है। हाथ का मैल के समान लगती है। सपत्ति की मूर्च्छा कम होती है। दान का प्रवाह शक्ति के अनुसार अस्खलित रीति से वहता रहता है। वहुतो का उपकार होता है। अपनी आत्मा प्रसन्न वनती है। प्रसन्नता वहुत से पूर्व भवो का विनाश करती है। मुक्ति थोडे काल मे प्रकट होती है। बीच के समय मे सद्गति और जहाँ जन्म होता है, वहाँ सपत्ति वैभव की कुछ भी कमीना नही रहती। अपने को कुछ परवाह नही। धर्म कार्य मे मुक्त हाथ से काम करता रहे। साप की काचली की तरह त्याग भावना। साधुत्व सयम-साधना और परपरा मे मुक्ति। शुद्ध सच्चिदानन्द पदकी मस्ती।

५८. "सात भय"।

ऐसे भव्य आत्माओ को भय होवे क्यासे ? सात भय हो या सातसो हो। (१) इह लोक भय-मनुष्य को मनुष्यादि से भय, (२) परलोक-भय देवो से भय, (३) आदान भय-चोरी का भय, (४) आकस्मिकता का भय, (५) आजीविका का भय क्या नौकरी जायगी तो ? या व्यापार मे घाटा आ जायगा तो ? (६) मृत्यु का भय ! आह ! क्या मृत्यु होगी ? क्या मैं मर जाऊँगा ? (७) अपकीर्ति का भय-क्या मेरी वेअदवी होगी या क्या लोग मेरे लिए कुछ बुरा कहेगे ?

५९ "पाँच दान"।

दान-आत्म कल्याण की बुद्धि से ही करना। पाँच दान देनेवालो को सात भय तो न रहेंगा।

(१) अभय दान—

जीव मात्र को बचाने की बुद्धि और उसका शक्य हों वहाँ तक अमलीकरण । ऐसा मानव स्पयं अभय न वन पाय ?

(२) सुपात्र दान—

पांच महा व्रतधारी पू. साधु-साध्वियों को साधुत्व प्राप्त करने की दृष्टि से दिया जाता दान। सार्घमिकों की भक्ति विविध रीतियों से । शालीभद्र ने क्षीर का दान दिया था। रो कर प्राप्त की थी क्षीर। पूर्ण पात्र क्षीर से भरा हुआ, मास उपवासी मुनि भगवंत को अर्पित कर दी। भाव विभोर वनकर और रोगट खडे होते। दूसरी है या नही मालूम नही । अर्पण करने पर आनद का कोई ठिकाना ही नही। सारे दिन-रात भर आनंद मे। मरकर शालीभद्र। राजा श्रेणिक मगध का मालिक। वहाँ भी नहीं है वैसी रिद्धि-सिद्धी ? कोई व्यापार पेरों की झंझट नही। तदुपरांत पिताजी निन्यानबे वक्स भेजे। आहार-वस्त्र और अलंकारो का। बत्तीस स्त्रीयाँ और स्वयम्. ३३ x ३ = ९९ निन्यानवे—इन सबों का त्याग किया। और साधु वन गये। ऐसा भाव कहाँ से ? दान देने पर तीव्र अनुमोदना ? तप भी कैसा किया ? अनुत्तर देव लोक में पहुंच पाये न ? आगामी भव में मुक्ति। यह है सुपात्र दान का श्रेष्ठ फल ?

(३) अनुकम्पादान—

दान और दया आत्मा का मुख्य लक्षण-दया. दीन-दुखियों को देखकर आत्मा मे कंपन नही ? बिना माँगे भी दान दें। इच्छा के विना भी मान मिले. कीर्ति की लालच न रखकर अनुकम्पा दान है मनुष्य का सही शान। उनमे अंध-अपाहिज

के प्रति अधिक ध्यान दे। दान जिसको कोई आधार नही उसका आधार बन जाय। भारत की भव्य भूमि से दान-दया क्यो चले गये ? इस आखरी साठ साल से। सिर्फ स्वार्थ वृत्ति पैदा हुई जिसलिए ही दिल कठोर बन गया न ? पाप-पुण्य के खेल भूले गये।

(४) कीर्ति दान—

पाच दानो के अतरगन उसका स्थान। परतु प्रचलित अर्थ ठीक नहीं। धर्मवृत्ति से और धर्म औचित्य से होना चाहिए। दान धर्म की भूरिभूरि प्रशसा होती है। उसके पीछे कीर्ति तो लगी ही रहती है। बल्कि वह उन्माद उत्पन्न न करे और धर्म कार्य मे बहुत उन्नत बनावे। बहुत उत्साही बनावे।

(५) उचित दान—

धर्म के शृगार के समान है। धर्म औचित्य का शास्त्र मे स्पष्ट उल्लेख है। मजदूर को धर्म या व्यवहार कार्य मे उसकी मजदूरी मे भी ज्यादा देना चाहिये। सगे सबधियो का उचित वृद्धि मे स्वागत करना। गाँव की मार्गानुसारी सस्थाओ का पालन करते रहना।

६० "सम्यक्त्व के पाँच लक्षण"

इन पाँच लक्षणो के अतरगत अनुकपा का भी अतरगत स्थान है। आत्मा की सचमुच शुद्ध धर्म श्रद्धा के पाँच लक्षण हैं। पहचानने के चिह्न भी हैं।

शाम, सवेग, निर्वेद, अनुकपा, आस्तिक्य, जिसे धर्म स्पर्श करे और ससार असार न भासे, महा भयकर न लगे, वहाँ तक मोक्ष की इच्छा कहाँ ? बंदी तो मैं बंदी हूँ उसकी सभावना होनी चाहिये और छुटकारा पाने के लिए उत्सुकता

प्रकट करे। अनुकम्पा ऐसे आत्मा में पडी होती है। अन्य को दुःखी देखकर उसको भी कहीं पर चैन नहीं। शक्य प्रयत्न द्वारा उसका दुःख दूर करे। आस्तिकता मूल कहो—उसका फल कहो आस्तिकता। है सर्वज्ञ मार्ग में संपूर्ण श्रद्धा। जिससे विकास होगा। वही ही सच्चा निःशंक जो जिनेश्वर देवने प्रकाशित किया ऐसी अडिग श्रद्धा **तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेहिं पवेइयं'** राग-द्वेष-मोह विना के वीतराग भगवंत के सर्वज्ञ वचन में शंका कहाँ से? शंका की निवृत्ति पर चालाक-निपुण बनेगा। निपुण मनुष्य की बढती-उन्नति होगी न? आस्तिक्य अनुकम्पा को प्रकट करे, पोषे और आगे बढावे।

६२. "बाईस अभक्ष्य और बत्तीस अनंतकाय"

जीवदया का पालन करने के लिए ज्ञान बहुत आवश्यक है। क्या खाना, क्या न खाना? कौन सी चीज बहुत हिंसात्मक और बुद्धिघातक है? मधु-मक्खन-मदिरा-माँस-उंबराफल वट के फल-कोठीवड़ा-पीपली की टेटी वर्फ़ सब प्रकार के ज़हर अफीम, ओले कच्ची मिट्टी-रात्रि भोजन-बहुबीज-अचार-द्विदल जिसकी दो फाड समान होती हो और जिसमें से तैल न निकले ऐसी चीजो के साथ अर्थात् कठोल के साथ विना गरम किये दूध-दही छाछ का उपयोग करना द्विदल-रिगन-अनजान फल तुच्छ फल और (जिसमे खानेका काम छोड देने का ज्यादा चलित रस (जिसका स्वाद स्वाद पूरा विगड गया हो) अनत-काय (जिसमें बहुत से अनत जीव होते है। वे सब देखे जाते हैं सिर्फ ज्ञानियो के द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान से। जिनमें से कई जीवो-पत्त्ति के कारण, कई शरीर बुद्धि और आत्मघातक होने से कई बहु बीजवाले होनेसे। रात्रि भोजन पर स्वतंत्र लेख

लिखने की आवश्यकता रहेगी। और बाईसवाँ अनतकाय निम्न लिखित — सुरण-हरगण-हरीहलदी-आलू-हली कचुहरी-सतावरी-हीरणी कद-कुवार पाठ-थोर गलो-सकरकद-गजर बाँस करेला-लुणी गरमर-पल्लव-पत्ते-सरसैया-हरमोथी-लुणी-छालगी लोडा-अमृत वेली-मूल के कद विलाडटोप नये अकुर-वथ्युल भाजी-मकरवेल-पाल्क कुणी-इमली-रताल्रू – पीडाल्रू इत्यादि। बहुत महीन रीति से धर्म का पालन करने- वाले ही श्रद्धान्वित समूह को 'सघ' कहा जाता है।

इतनी सूक्ष्मतासे धर्मका-पालन करनेवाला श्रद्धा युक्त समाज को हि 'सघ' कहा जाय न? यद्यपि सयोगवशात् पालन कम भी हो, परतु श्रध्धा लोहे को भी पीघला देती है। और इसके पाये मे सीसा का धातु ही समझो।

६२ "जीव विचार"

जीवदया पालन करने के लिए जीवो का परिचय आवश्यक है। यह ज्ञान स्पष्ट और गहरा होना चाहिये। ऐसा ज्ञान सिर्फ जैन धम मे ही मिलेगा। सख्या—इन्द्रियाँ—गति—आयुष्य शरीर की ऊँचाई लबाई—उनके स्थान उत्पत्ति स्थान आदो से प्रतीत होनेवाले और न होनेवाले। प्रत्येक प्रकार की रीत गहरी और बहुत स्पष्ट ममझ जैन परमर्थियो ने बतलाई है। बडा विज्ञान-जैन विज्ञान की अजायबी आत्मा और कर्म सयोग की विचारणा मे हूबहू मिलती है। प्रकरण—टीका—मूल ग्रन्थ और आगम शास्त्र ये सब बडे अद्भुत ग्रन्थ भडार ज्ञान का खजाना है। परतु ध्येय रहा ससार मे विरक्ति का और मुक्ति मे स्थापन करने का। इसलिये तो प्रेक्टिकल रासायणिक प्रक्रियाएँ गुप्तगम मे ही। ज्ञानी पूर्ण योग्य, पूर्ण योग्य को ही बतलावे। इधर-उधर उसका भाषण नही सुने जायेंगे। ऐसे वैसे को नही सुनावे। अरे! सुनाना भी नहीं चाहिये।

वैद्य भी मात्रा देते पहले पहले पथ्य की बड़ी सावधानी रखता है, नुकसान करे, तो जिम्मेदारी किसकी ?

और तो 'जीव विचार का' ज्ञान सभी लोगको सुनाया जाता है। जैन कुल में उत्पन्न हुए बालक-बालिकाएँ यह ज्ञान रखते हैं। गुरु या पाठशाला में अगर जाते हों तो अपण सामान्यत: दृष्टिपात कर लेवे और तो वह है नियमित अभ्यास का विषय। जीवों के मुख्य दो भेद—

(१) संसारी—

जन्म मरण के फँदे में फँसा हुआ। मुक्त अजन्मा मुक्ति निवासी अनंत अव्याबाध सुख में अनंत काल के लिए विलसते अदेहिरूप। संसारी के मुख्य दो विभाग हैं। त्रस हलन-चलन करनेवाले। एक जगह से दूसरी जगह जानेवाले। दो तीन चार-पाँच इन्द्रियवाले।

(२) स्थावर—

स्थिर स्वयम् न चल सके। एकेन्द्रिय पृथ्वी जल अग्नि वायु-वनस्पति वगैरह। बिना प्रयोगशाला और हजारों मण वनस्पतियों के विनाश के सिवा जीव एक शरीर में कितने ? किस ने ? उनका आयुष्य कम से कम और ज्यादा से ज्यादा। ये सब स्पष्ट हकीकत सर्वज्ञ भगवंतो के जैन शासन में प्राप्त होती है न ?

एकेन्द्रिय—

स्पर्शेन्द्रिय (शरीर) पृथ्वी जल आदि पाँच।

दो इन्द्रिय—

शरीर जीभ (रसनेन्द्रिय) शंख कोडा कुर्मी इत्यादि

तीन इन्द्रिय—

शरीर जीभ नाक (घ्राणेन्द्रिय) कानखजूरा, चीटी, मकोडा जूँ उधई इयळ इत्यादि ।

चार इन्द्रिय शरीर जीभ नाक आँख (चक्षुरिन्द्रिय) बिच्छु भ्रमर तीड तीतली मच्छर कसारी इत्यादि

पाँच इन्द्रिय—

शरीर जीभ नाक आँख कान (श्रवणेन्द्रिय) देव मनुष्य तीर्यंच नारक

देवगति—

उच्च कोटी के पुण्य का फल । भेद विभेद से पूर्ण।

मनुष्य—

दानगुण सरलता सच्चाई का फल ।

तिर्यंच—

पशु, पक्षी, वनस्पति, निगोद (अति सुक्ष्म, अनंत जीव का शरीर) माया, कपट इत्यादि करने से । उच्च कक्षा प्राप्त करनेवाले महर्षि भी रस शाता और ऋद्धिके मोह मे फंस जाय तो इस गतिमे जाते हैं ।

नरक—

सात दुःखो का दावानल । थोडी भी शांति नहीं । सात नरको का वर्णन । चतुर को भी कपारी करा दे । भयकर यातनाओ का केन्द्रस्थान । भयकर क्रोधादि भयकर हिंसा, चोरी, इत्यादि समस्त के साथ निकृष्ट हिंसा का यह निश्चित फल है । भारी पश्चाताप हृदय का कदाचित बचा सके तो ना नहीं । बचेगा वह भाग्यशाली ।

६३ "जीवों के मुख्यतः पाँचसौ तीरसठ भेद जानने योग्य हैं।

मनुष्य-भेद	३०३	इस तरह की जीवों के भेद की स्पष्टता, एक
तिर्यंच ,,	४८	ही श्री जिनेश्वदेवो के सर्वज्ञ शासन को
देवता ,,	१९८	छोडकर किसी भी मझहव मे प्राप्त होनेवाली
नारक ,,	१४	नहीं। इस समझ के साथ शक्य जयणा का
	——	पालन करके मन-वचन कायासे वे जीवो का
	५६३	रक्षण करना चाहिए।

६४ '८४ लाख जीवयोनि या चोरासी का चक्र"

दुनिया में 'चोरासी का चक्र' शब्द प्रचलित है। चतुरों को अच्छा नही लगता है, जन्म-मरण के अनादिकाल के चक्र का नाम है। परन्तु चोरासी के साथ संबंध किस तरह है ? ईस का स्पष्ट उत्तर समग्र जैनधर्म का विज्ञाण देता है, 'सात लाख' एक गाथा सूत्र है। शाम, सुबह जैन, प्रतिक्रमण के समय बोलते है। ऐ सब भी उसका मर्म समझते होंगे ? वैसे समझनेवाले भाग्यशाली होते है। बात थोडी सी वैज्ञानिक तरीके की है; लेकिन विज्ञान समझा न सकेगा। कोई भी जन्म स्थान को रूप-रस-गध-स्पर्श और संस्थान होते है। एक ही प्रकार के जो रूपआदि होते है, वे एक कक्षा में आते है। इसे एक योनिजन्म स्थान कहा जाता हैं। ऐसे एक ही स्वरूप के जन्म स्थान-योनि मनुष्यों के लिए चौदह लाख है। यह सर्वज्ञ कथित श्रद्धेय हकीकत है।

वाचक वृंद के लिए "चोरासी चक्र लिख डालें यद्यपि, जैन मात्र उसी के जानकार होते है। परन्तु इस अज्ञान

काल का ताडव अनोखा ही है। सात लाख पृथ्वीकाय-७ लाख अपकाप। सात लाख तेउकाय। सात लाख वायु काय। दस लाख प्रत्येक वनपति काय। चौदह लाख साधारण वनस्पति काय। दो लाख दो इन्दिया दो लाख तीन इनिद्रयवाले दो लाख चार इन्दिय। चार लाख देव योनी चारे लाख नारक योनी। चार लाख तीय च पचेन्द्रिय। चौदह लाख मनुष्य योनी। कुल चैराशी लाख योनि। जैनो की शाम सुबह की प्रक्रिया-प्रतिक्रमण मे चौराशी लाख जीव योनीम अपने अगर किसी भी जीवकी हत्या, की हो हत्या कराई हो तो, या हत्या की अनुमोदना की हो तो। मैं मन-वचन-काया से मिच्छामि दुक्कडम् इस तरह विश्व भरके जीवों के प्रति, किये हुए दोषो की क्षमापना मागता हूँ। वैसे ही अठारह पाप स्थानो की उन अठारह पाप-स्थानो मे जो कुछ पाप का सेवन किया हो तो या पाप कराया हो या अनुमोदन दिया हो तो, मैं मन-वचन कायासे रिच्छामि दुक्कडम् द्वारा अठारह पापो का पछतावा किया जाता है, प्राणातिपात-मृपावाद-अदत्तादान-मैथुन-परिग्रह-क्रोध-मान-माया-लोभ— राग-द्वप-कलह-अभ्यास्यान-पैशुन्य-रतिअरति-परपरिवाद मायामृपावाद-मिथ्यात्व शल्य-ये अठारह पापस्थान है।

अभ्याखान-दूसरे पर कलक लगा देना। पैशुन्य-चाडी-चुगली करना पर-परिवाद-दूसरो की निंदा-मायामृपावाद-युक्तिपूर्वक चतुराई से गलत बोलना।

यह प्रक्रिया की नव तत्त्वो के जानकार को अवश्य आचरण करने का मन हो जाय। नव तत्त्व सारे विश्व का गहरा और हृदय स्पर्शी ज्ञान-विज्ञान है बडी-गहरी तत्त्वज्ञान की फिलसोफी है। यह सरलतासे समझा जाता है। यह महा ज्ञान मानवो को स्थितप्रज्ञ

बना देता है। महामानव बनाकर परमर्षि बनाता है। परमर्षि विश्वकल्याण करते परमात्मा बनते हैं। १ जीव २ अजीव ३-४ पुण्य-पाप ५ आश्रव ६ संवर ७ निर्जरा ८ बंध ९ मोक्ष ये एक ही लाइन से अनरगत होने वाले नव तत्त्व है। आत्मा को आत्मा की मुक्ति की लाइन बता देता है। भेद प्रभेद और उनकी स्वपर की प्रक्रिया समझने योग्य है। उनका अभ्यास आनंद जनक और प्रतिबोधक है। जैनों को कमसे कम स्थूलमात्र से उन नौ तत्त्वोका अभ्यास कर लेना चाहिये।

जीव अनादिकाल से पुदगल परमाणुओं से घेरा हुआ है वह राग द्वेष के कारण पाप पुण्यका जमाव किया करता है। आश्रव तत्त्व द्वारा पाप पुण्य को कर्म का ढेर इकठा किया करता है। संवर तत्त्व जिस कर्म को रुकावट करनेवाला है, उनका प्राय. आत्मा को ख्याल नही है और पुराने कर्म की निर्जरा (नाश) नहीवत् करता हैं। नये चिकने कर्म इकट्ठे किया करता है। ऐसे अनंत कर्म के ढेरके ढेर जमे हुए हैं। अतिसूक्ष्म, केमिकल प्रक्रिया कैसी समझनी चाहिये। अपितु एक हजार मात्राएँ मिलाकर अगर पीसी जाय और बहुत महीम बनाकर, राईसे भी अगर छोटी गोली बनाई जाय तो भी कितनी दवाअे अिनमें ? हजार। या लाख मात्राएँ मिलाअी हो- इकठी की हो, उतनी मात्राएँ उसमें होगी। सूअीके अग्रभाग पर चालीशलाख स्पर्टमकी बात सायन्स भी करती हे न ? महा समर्थ अतिशय ज्ञानी पुरुष "अनंत" कहते है, उसमें बिलकुल गलती नहीं है। आत्मा के असख्य प्रदेश में प्रत्येक प्रदेशमे ढेर के ढेर लगे हुअे है। ये सब बातें श्रध्धासे समझी जाती है। अिस तरह आज का सायन्स भी स्वीकृति देता है।

उनमे से नव मे तत्त्व मे मुक्ति मे स्थान लगा देना है। इसलिए सवर-निर्जरा दो तत्त्वोमे धर्मतत्त्व अतरगत आ जाता है। सवर नये कर्मो की रुकावट करता है। निर्जरा पुराने कर्मो का नाश करती है। दोनो मिलकर कर्मरहित आत्मा बनता है। अिसलिऐ ही महामहोपाध्यायजी आदेश करते है—जिस जिस भावसे निरुपाधिकता, वे कहना ही धर्म। सायग दृष्टि-गुणस्थानसे, यावत् पाए शिवशर्म ॥

जिनापदिष्ट-मार्गानुसारी धम क्रियाओसे निर्जरासह पुण्यानुबधी पुण्य बना जाता है। विधि आदरपूर्वक करनी चाहिये। ऐसे पुण्य मे ससार की समाधिकारक सामग्री प्राय बिना मेहनत प्राप्त हा जाती है। उससे दानादि धर्मो म और आत्म प्रगति मे प्रेरणा मिलती है। और सिलसिलावार मुक्ति मे वास हाता है। पापकम ही दु खो का मूल है। पाप सुखकी अभिलाश करवाता है। जिसलिए ससार मे दु ख का मूल सुख—यह समझ सच्ची है।

६५ "छः द्रव्य"।

अिसके साथ छ द्रव्यो का ज्ञान और उसकी प्रक्रिया विश्व सचालन की प्रक्रिया का ज्ञान करवाता है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, काल और जीवात्मा। चलन-हलन करनेवालो को इच्छा मे मददरूप है धर्मास्तिकाय। जसे मछली को तरने मे पानी। खडे रहने की-स्थगित होने की क्रिया मे मदद करना है, अधर्मास्तिकाय। चीज को अवकाश देता है—आकाश।

पुद्‌गल परमाणु जड है । अपितु चेतन को दवा देता है । चौदह राज लोक में दौडधूम करता है । जड कर्मो की सत्ता कितनी जोसीली । काल एक मर्यादा बाँधनेवाला द्रव्य माना जाता है । वर्तमान-भुत-भविष्य के भेदसे समझा जाता है । रात-दिन-घडी-पल-ये सब भेद अवांतर भेद है ।

आत्मा कर्मो से पीडित दुःखित होता हुआ अनादिकालसे भ्रमण करता है । जैनेन्द्रशासन की प्राप्ति के बाद भव्यात्मा हो, तो, कर्मो को पटककर मोह को मारकर मन-वचन-काया के योगों को दूर कर के, मोक्ष अवस्था में हमेश के लिए स्थिर बन जाता है । अिसलिए ही जैन शासन "जयवंत" बना रहे है ।

एये सब पदार्थो का-द्रव्य-तत्वोंका ज्ञान किसलिए १-

आत्मा की समझ पानेके लिए । स्वभाव को भूलकर परभाव में मस्त बनकर आत्मा आनंदित बना है । पुद्‌गल भाव-जड का आकर्षण-सुखदुःख की लहुर सब एक है । देह को अपना और स्वयम् भी देह है ऐसा मान लिया है । शानदार मनुष्यों को भी वडे हिर-से में देह के सुखःदुःखों को अपना मान लिया है । उसी में ही पागल-मस्त बन गया है । पीछो तो देह की निगरानी रखने वालो प्यारे माने जाते हैं । देह को अच्छा न लगनेवाले पराये । बाद में पराये प्यारे बन जाते है । प्यारे पर बन जाते हैं । स्वार्थ की मात्रा बढती जाती है । सत्कार्य अकार्य लगता है । सच्ची अच्छी सलाह भी

चे । स्वार्थकी आत्मघातक वातो मे उडडयन करना अच्छा
ा है । वाद मे तो धन ही मेरा परमात्मा है । स्वार्थ की
मे आनेवाले को दूर करने मे बिलकुल हिचकिचाहट
ो । अपने को भी मौत एक दिन हडप कर जायगा । यह
भूल जाता है । बिमारी के बिछोने पर पडे उधर उधर
ो बदले । आर्तरौद्रध्यान मे भी चड जाय । तिर्यच और
की के आयुष्य का बन्ध हो जाय । वाद मे तो पशु पछी या
क के असख्य वर्षो का दुख । दुख ही दुख-अकल्पनीय ।
न न होने पर भी क्या करे ? कोओ भी मददरूप नही ।
हत का भी कुछ नाम नही । वैद्य या डोकटर तो वहाँ
ता ही नही । पानी न मिले । पानी पिलानेवाला भी
मिले ।

उतनी समझ पानेसे ज्ञान का उदय हो जाय । समझ
ाने पर पापोंमे कपारी अनुभवे । पुण्यकार्यो मे चित्त स्थिर
ोता है । सत्य समझने के लिये जी लालायित होता है ।
जैनकुल मे अगर हो तो सद्गुरुका योग हो जाय । वीतराग
ानी समझ मे आ जाय । अच्छी लग जाय । श्रवण लाभ से
ग्रह सब कुछ होगा । श्रद्धा प्रकट हो जाय । शक्य अमलीकरण
करे । श्रावक के धर्म का, साधु धर्म का पालन करे । न करने
पर दिल तडपता रहे । कर्मों के ढेर बिखरने लगे । निर्जरा
का पार नही । नये नही वत् बन्ध । व्यवहार शुद्ध, दिल
दरियाव । सरलता उसीकी सिद्धि वने । समता उसकी भगीनी
बने । तप उसका बन्धु बने । मन-वचन-काया की शुद्धि रिध्घि
बने । सिद्धि उसकी गोद मे । मुक्ति उसको धन्यवाद दे ।
अिसलिए ज्ञान स्वाध्याय-मनन-चिंतन निदिध्यासन-ये सब
जरुरी । उच्च ध्यान की यह भूमिका है ।

ज्ञान दिपक है । पदार्थ जानने के लिए-देख ने
लिए । ससार-सागर में द्वीप है, आश्रयके लिए । द्वार
मुक्ति प्रवेश के लिए । आत्मा की ज्योति है; प्रकाश
मिथ्या तिमिर दूर करने के लिए । गुरुज्ञानवन्त होना चाहिये
सस्कारी मातापिता पुण्य से मिले ।

साधार्मिक सम्यक्दर्शनी कहा जाता है । सर्व में ज्ञान
महत्ता है । विना ज्ञान का मनुष्य पशु समान है । ज्ञ
महाधन है ।

ज्ञानी श्वासोश्वास मे कर्मका नाश करता है । व्याप
और व्यवहार मे भी ज्ञानी मालुम हो जाता है । खाते-पीते
चलते फिरते ज्ञानी शुभ विचारणा मे रहता है । ज्ञानी
ज्ञानी मिले करे ज्ञान कि वात । मिथ्या विचारो को ल
मार कर दूर कर दे । जिससे प्राप्त हो अखंड शांति । धर्म
वास होता है । मुक्ति उसकी हो चुकी ।

ज्ञान है तैरने के लिए और तिरवाने के लिए
भवसमुद्रमे से पार होने के लिए । धर्म शिवंकर लगता है
जिनेश्वर का किकर बने । जिनेश्वर उसको शंकर वनावे
कल्याण उसी का हो जाय । कल्याण सही है परमात्मा के
ध्यान मे । परमात्मपद की प्राप्ति में ।

卐

धन आवश्यक माना गया। इसके लिए सभी प्रकार समझ ली जाती है। समय प्राप्ति भी हो सके। अनुभवियो का सपर्क भी सधा जा सकता है। कठोर मेहनत भी हो। सकती है। घाटा पडने पर भी बाजार मे जाना पडता है। भाई ! आशा अमर है। धर्म आवश्यक मानना बद हुआ साथ ही ऐसी विश्व व्यवस्था का ख्याल नष्ट हुआ। पीछे जानने की बात ही कहाँ रही ? रस लुप्त हो गया। तत्व ज्ञानमे मे-अखूट खजाना ज्ञान का। विश्व मे खोजने पर प्राप्त न हो सके वैसा। हूबहू पडा है जैन शासन मे। विज्ञान को भी मोड ला दे वैसा। परन्तु घर मे दब गये रत्न भडार की उक्त दरिद्र को खबर थी न ? इसलिए गरीबी की बहुत सी यातनाएँ भुगतकर, जीवन समाप्त किया। वैसे ही हमने भी मौज-शौक और विलास मे जिंदगी समाप्त कर देनी। पर आज के मोजशोक मे कौन सा बल-कस है। बहुत कष्ट उठाते थोडा सा सुख प्राप्त होता है। उक्त थोडे मे भी शाति का तो कोई पता भी नही। फलत बहुत से रोगो मे और चिन्ता मे जलता जीवन अपितु कुर्बान होने पर भी।

जिज्ञासु के लिए सारी विश्वव्यवस्था यहाँ पेश कर रहे हैं, विश्व बडा विशाल है। उस मे अनत आत्माएँ चारो गति में भ्रमण किया करती हैं। बहुत सी सिद्ध आत्माएँ मुक्ति निलय म हैं। अजन्मा आत्माओ के लिए अब चार गति नही है। उनका कार्य सिद्ध हुआ। आत्मा के परमानद मे-सच्चिदानद दशा मे विलसते हैं।

६८ "निगोद"

संसारी जीवो में तिर्यंच् पशु-पक्षी की भी एक गति। वनस्पति उनका ही विभाग है। एक सूक्ष्म अनंतकाय वनस्पति-काय का विभाग है। "निगोद" उसका नाम। उनका एक विभाग अत्यंत सूक्ष्म है। न आँखों से देखा जाय न अग्नि जला सके। जन्म मरण भी अत्यन्त तीव्रता से। इन सभी बातों में बिलकुल अतिशयोकित नहीं है। सौ वर्ष पहले, मेग्नेट बम की वात व्यर्थ लगती। परन्तु है ठोस सत्य और अनुभवगत। रावण के पुष्पक विमान में न माने, परन्तु आज के जम्बोजेट एक हकीकत। ऐसे राक्षसो विमान में पूरी श्रद्धा। जो शास्त्र कहता है उस मे श्रद्धा नहीं। विज्ञान वही वात करता है। तुरन्त हृदय में वैठ जाती है। ऐसे प गलपन को कौन पहचान सके।

इस निगोद मे अनादिकाल से बसनेवाली अनंत आत्माएँ है, उस में तीन जातियाँ। जातिभव्य-भव्य-अभव्य। जातिभव्य निगोद से वाहर नही आती है। धर्म सामग्री पाती नहीं। मुक्ति को न पहुँचे। भीतर लियाक़त होने पर भी। कितना लोह पृथ्वी के भीतरी भाग में पडा है। जो वाहर नहीं आता है। शस्त्र भी वनाकर उस का उपयोग भी नहीं होता है। यद्यपि हथियार-शस्त्रो वनने की क्षमता होने पर भी। अभव्य :—बाहर व्यवहार में चार गतियों के चक्र शुरू करे। परन्तु मुक्ति कभी नहीं। क्यों कि मुक्ति जैसी वात को मानता ही नहीं। धर्म क्रिया भी करे। रे! साधु भी जैनशासन में हो। चौदह में से नौ तक का महापूर्वो का गहरा ज्ञान भी

प्राप्त हो सके । अपितु मुक्ति का ध्येय भी उत्पन्न नही होता है । इसलिए ही बडे ज्ञानी को अज्ञानी कहा-ऐसा कहा सर्वज्ञ भगवत के महागामनने । शासन शब्द मे आगम-शास्त्र-पचागी युक्त-सब अतरगत आ जाते है ।

६६ "भव्यात्मा"

भव्य का व्यहारिकराशि मे भ्रमण शुरु हो जाता है । बहुतग उत्थान क्रमिक शुरु होता है । सूक्ष्म वनस्पति मे से बादर मे आवे । पृथ्वी-आप तेज-वायु भी बने । २-३-४-५ इन्द्रियोवाले तिर्यच् बने । बैल-गाय-हाथी-घोडा सब पचेन्द्रि तिर्यच् हैं । सिंह-बाघ-भेडिया बने । वहाँ हिंसक बनकर । नीचे नारको की भी मुलाकात ले आवे । असख्यात काल के लिए-भयकर दुख सहे जाते हैं, क्षणभर आराम नही । रे वह तदुलिया जो बडे मत्स्य की आँख में उत्पन्न होने वाला । सहस्र जीव जलचर बडे मत्स्य के मुख मे पानी मे प्रवाह के साथ प्रवेश करता है । फिर बाहर निकल जाते है । उक्त मत्स्य आँख की पल को मे बैठा सोचता है अगर मेरा चले तो एक को भी न छोडूं । सब को खा जाऊँ । क्या वह भी जीव को मार सका है । परन्तु बेचारा दो क्षण का आयुष्य भोगकर सातवी नारकी मे पहुँच जाता है । मन और मानसिक विचारो की भयकरता समझने योग्य है ।

मन एव मनुष्याणां कारण बध मोक्षयो :

मन वश मे नही वह डूबे । मन को वश मे करनेवाला तैर जाता है । इसके लिए प्रसन्नचद्र राजर्षि का उदाहरण पेश किया जाता है । क्षण मे सातवें नरक दलिक प्राप्त

करे । वाद में कैवल्य ज्ञान की नौवत वज गई । हुआ राजा श्रेणिक–अति प्रसन्न । आज के माँधाता भयंकर योजनाएँ लक्ष लोगों के नाश करने के लिए तैयार करते है । कहाँ जाएंगे वे पामर आत्मा । उनके सलाहकारों की वहाँ दुर्दशा न ? क्या उनको सद्बुद्धि होगी ? असल मे वात तो भव्य की चलती है । भवभ्रमण करते करते मनुष्य का जन्म पाया । वलिक–चांडाल कसाइ आखेटक के रूप में । फिर से नरकादि में । फिरसे मनुष्य भव में परन्तु यज्ञादि करनेवाले कुल में । फिरसे वही दशा । फिरसे असंख्यात–अनंतकाल के वाद मनुष्य । वह भी जैन कुल में देव—धर्म—गुरु का योग मिल जाय । धर्म श्रवणेच्छा हो जाय । सुने–विचारे—सद्दहे और शक्य अमल भी करे । तव उसकी भव्यात्मा की गाडी कुछ लाईन मे आवे । उसी मे आगे वढने पर मुक्ति में या देवगति में । देवगतिमें से मनुष्य । साधुत्व पालन और मुक्ति । यह तो है सिर्फ अति स्थूल दिशा सूचन । यह सारी प्रक्रिया एक अलग ग्रंथ माँगे ।

ऐसी भव्यात्माएँ मुक्ति में पहुँच ही जायँ ऐसा ही नही । मुक्ति तक जायगा "भव्यात्मा" यह निश्चित । जो मुक्ति तक पहुँचनेवाला ही है, उनका विचार करेंगे । जव से एक 'पुद्गल परावर्त' काल मुक्तिगमन का शेष रहै वहां से सोचना । यह विचारश्रेणी स्थूल रूप में भी समझना चाहिए । इस समय में —प्रथम "शुद्ध यथाप्रवृत्तिकरण" वहुत से भव्यात्माओ के लिए शुरू होती है । देव—गुरु—धर्म का उपासक वनता है । सरलता, न्यायप्रियता, प्रामाणिकता पसन्द करता है । दया - दान को गुण बनाते है । क्रमिक विकास होगा । देव गुरु—धर्म के शुद्ध स्वरूप का अभी तक ज्ञान नहीं हुआ है । अगर वह

समझ सके, हृदय मे बैठ जाय तो, नव तत्वो की ओर ध्यान आकर्पित होता है। अभ्यास के वाद, आत्मा मे रत वनकर खेले। और सम्यक्त्व सुलभ हो जाय। सम्यक्त्व एक बार स्पर्श करे, तो आनन्द मगल हो जाय। ज्यादा मे ज्यादा अर्ध—पुद्गल परावर्त से भी कुछ कम समय मुक्ति गमन का रहे। इतना काल भी कव ? श्री तीर्थंकर देवकी, या श्री सघ की महा आशातना की हो। या साध्वी की ओर गेरनिस्त (शील का भग) प्रकट किया हो, फिर भी अनता पुद्गल परावर्त के पास। एक या आधे की क्या विसात ? करोडो के ऋण मे मुक्त हुआ। पाँच सौ या सहस्र की क्या गगना ? यह है भव्य आत्मा की भव्यता।

७० "काल गणना"

पूर्व शब्द पारिभाषिक है। चौरासी लक्ष को चौरासी लक्ष से गुणन किया करने एक पूर्व हुआ। ऐसे लक्षो से भी अधिक पूर्व के आयुप्य ये आज भी एक सौ पचास वर्ष के आयुप्य के उदाहरण हैं। करीव तीन सौ पचास वप का आयुप इस काल मे भी शक्य है। पुद्गल—परावर्त—एक वडी लम्बी गणना है।

अरवको अरवोसे अरवोसे गुणो गुणनफल आये वह 'परावत के पास छोटी समझो। वस उतनी समझ आवश्यक होगी। जैन शासन हर वात की वारीकी देता है। उतनी ही स्पष्टता। क्योकि सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदाथ भापामे समझाना है। तत्वज्ञान वहुत गहरा है। वैसे ही वडी विशद उदारतासे भरा हुआ

है। सर्व जीवोंके प्रति करुणाभाव अत्यन्त है। अिसलिये हीं
'जैनं जयति शासनम्।'

७१ "कुदरतका प्रकृतिका गणित।'

जैनशासन छोटा सा वाड़ा नहीं। क्षुद्रदृष्टिवाला नहीं—अल्पदृष्टिका विधान नही है। मदमें या आवेशमे प्रकट किया हुआ यह कोअी संप्रदाय नही है। तीर्थंकर भी भवभ्रमण कर चुके हैं। साधनाकी उच्च भूमिकामें रह चुके हैं। घोर-ज्ञान-तप का आचरण कर चुके है। बादमे ही विश्ववंद्य तीर्थंकर देव बने है। यह व्यक्ति देव ऐसा नही। ऐसे गुणवाले देव-ऐसा ही। यह है स्पष्ट निष्पक्षपात और महान उदारता शासनकी। भगवन्त महावीर देवने स्वयम् जाहिर किया है। मैं भी दो बार नरक वास करके आया हूँ सम्यक्त्व प्राप्त कर चुकने पर ही। जाहिरात भी जाहिर समवसरणमें-अति दिव्य व्याख्यान महामंडपमें-कैसी निर्लेपता-कैसी निरभिमानता ?

७२ "कालका गतिमान चक्र"
(सायकल ऑफ टाइम)

उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी की एक दौडती हुअी साअिकल के दो पहिये हैं। यह बात पहले हो चुकी है। अब कितने सलाके है ? और उनके नाम क्या है ? अब देखेंगे। ये दोनों मिलाकर एक काल चक्र बनेगा। उत्सर्पिणी-उत्क्रान्ति काल

(१) दुखम् दुखम् (२) दुखम् (३) दुखम् सुखम् ४) सुखम्-दुखम् (५) सुखम् (६) सुखम् सुखम् ।

अवसर्पिणी अवक्रान्ति काल है उसका भी छ विभाग (१) सुखम् सुखम् (२) सुखम् (३) सुखम् दुखम् (४) दुखम्-सुखम् (५) दुखम् (६) दुखम् दुखम् । अब हम पाँचवे आरेमे है। दुखम हैं । प्राय दुखका ही प्राधान्य । सुख आटेमे नमक जैसा ।

इस अवसर्पिणी कालमे दूसरे आरेमे भाँति भाँति की मेघ वृष्टि इत्यादि बहुत हकीकते ह । तीसरे आरेमे तीर्थंकरो की उत्पत्ति हुवी । भगवन्त ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर हुए । चौथे में भगवन्त महावीर हुए । आखिरी दशके मे महावीरका अवसान हुआ । पाँचवा आरा इक्किस हजार वर्षका । पचीस सौ पूरे होते है । साढे अठारह हजार वर्ष बाकी है । वहाँ तक धर्मका अस्तित्व रहेगा । अंतम युग पुरुष दुप्पसहसूरिजी होंगे । बादमे भारतवर्षमे धर्मका विलय होगा ।

छठा आरा इक्कीस हजार वर्ष तक चलता रहेगा । बाद मे उत्सर्पिणी क्रम शुरू होगा । उस मे प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभ भगवत महावीर जैसे होंगे । उसके तीसरे आरे मे ।

इस तरह सुख ही सुख । सुख । सुख और दुख । दुख से सुख कम । प्राय दुख । और दुख ही दुख । इस तरीके से नीचे आता और फिर छ से एक क्रमिक चढना क्रम । विश्व-साइकल वा कायम के लिए । पाँच भरत और पाँच ऐरावत मे चालू रहेगा । पाँच महाविदेह मे कायम के लिए

चौथे आरे का भाव वर्ते। वहाँ हमेशा के लिए मुक्ति का मार्ग खुला रहता है। महाभाग उच्च कोटि के आराधक। इस भूमि से सीधा विदेह में मनुष्य होकर मुक्ति में पहुँचे। या बीच में देवलोक का विश्राम करके-विदेह में जाकर साध्य साधना है। इसलिए आज मुक्ति मार्ग बंद है ऐसा नहीं है। इसलिए आज भी शक्य उत्कृष्ट धर्म ही एक शरण है।-सहारा है। आलंबन और मुक्तिदाता भी है।

दिन-रात्रीकी गणना देवलोक में नही है। सूर्य चंद्र के प्रकाश की वहाँ जरूर नहीं है। वहाँ का निवास-विमान ही दिव्य प्रकाश देने वाले है। ये सब बातें रेडीयम-युग में तद्न युक्ति गम्य हैं। इसलिये ही दुगुना श्रद्धेय है

ऐसे अनंत चक्रों की बीचमें आत्मा पीसाता-कष्ट भोगता चला आता है अपितु चौराशी के चक्र में से उद्धार नहीं हुआ है। यह सान-भान इस कालचक्र के ज्ञानमें से मालूम होना चाहिये न ? कोई भी पदार्थ के ज्ञान की पीछे ध्येय होना है। हेतु और आदर्श होता है, ज्ञान ही उसी का नाम। ज्ञान ही उसी का नाम है, जिससे राग और द्वेष और मोह का अंधकार आत्मा परसे दूर हो जाय। अपने ही आत्मा में अनंत ज्ञान और अनंत सुख शक्ति का भान हो जाय। उन प्रकट करने के मार्ग पर प्रस्थान शुरु हो जाय। वही है ज्ञान की महत्ता। नहीं तो।

जहा खरो चंदण भार वाही, भारस्स भागी नहु चंदणस्स।
एवं खु नाणी चरणेण हीनो, भारस्स भागी नहु सुग्गइए॥

"गर्दभ चन्दन के काष्ट ढोता हो, अपि तु वह सुगंध या चन्दन का अधिकारी ही नही। सिर्फ बोझ ढोनेका। ज्ञान है लेकिन चारित्र हीन है, वह लोगो मे ज्ञानी माना जायगा लेकिन उस की सदगति नही है।

इसलिए ही जीवविचार, नवतत्त्व, छ पदार्थ, कालचक्र, काल की गति इत्यादि ज्ञान का हेतु। उन पदार्थो को जानकर, ससार की असारता और भयकरता समजने का है। मुक्ति के शुद्ध हेतु से धर्म का आराधन करना है। ज्ञान इस तरह समार से पार करता है। अगर तो वही ज्ञान डूबो देता—है।

७३ 'विश्व भौगोलिक व्यवस्था"
(चौदह राजलोक)

आख के सामने खडा छ खण्डो से — एशिया युरोप, अमेरिका, आफ्रिका और आस्ट्रेलिया इत्यादि खडोसे बनी ह। सचमुच, ऐसे बहुत से महाकाय प्रदेश विश्व मे है। जैन शास्त्र उसका हूबहू स्पष्ट वर्णन करता है। क्योंकि सर्वज्ञ वाणी से प्रकट है। निस्वार्थ बुद्धि से परोपकार के लिए स्वरुप प्रकट हुआ है। क्रमबद्ध समजाने के लिए सरल होगा। सारा विश्व चौदह राज प्रमाण है। काल मे जैसे "पूर्व" गणत्री का नियम निश्चित है। वैसे विश्वमोजणी मे 'राज' एक विशाल नियत-स्टाडर्ड माप है। एक पुरुष अपने दोनो पैर विस्तृत खुला करके खडा है। दोनो हाथ के पजे कुक्षी पर रखे है। इस तरह की आकृति को लोक पुरुष कहा जाता है।

७४ "सात नरकादि के स्थान"

आखरी भूमिमे छ राजलोकमे सातमे लेकर दो तक नरक

भूमिकाएँ हैं। सातवें राजलोकमें पहली नरक है। भुवनपति-व्यंतर-वाण व्यंतर-तीन पातालवासी देव-देवता अिसी विभाग में है। मनुष्य और तीर्यंच भी उनमें। ज्योतिष देव, सूर्य चन्द्रादि सातवें राजमें। प्रथम भूमिका पृथ्वीका नाम है-रत्नप्रभा। वहांकी समभूमिसे उपरके नौ सौ योजनमें मनुष्य और तीर्यंच भी रहते है। आठ से बारहवें पांच राजो में बारह विमानिक देव लोक। तेरह और चोदह राजमें नौ ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमानके देवोंके स्थान हैं। वहाँ से थोडी दूरी पर सिद्धशिला है ? वहाँ से बहुत थोडी दूर पर सिद्ध भगवंत रहते है। जिनके मस्तक प्रदेश समश्रेणी पर अलोकको स्पर्श कर रहे है। यह सारी व्यवस्था क्रमिक रीति से विचारणा करने से मालूम होगी।

७५ "सात नरकका वर्णन"

(सातनरक) पृथ्वीके नाम-इसके गुण-सात नरकोंका नाम-

(१) रत्नप्रभा-रत्नो अधिक-घम्मा.

(२) शर्कराप्रभा-ककड अधिक, प्रकाश कम होता जाता है- वंशा.

(३) वालुका प्रभा-रेती अधिक-शैला.

(४ पक प्रभा—कीचड अधिक-अजना.

(५) धूमप्रभा धूम अधिक-रिष्टा.

(६) तमःप्रभा—अंधकार अधिक-मधा।

(७) तमःतमःप्रभा-गाढ अंधकार प्रकाश कम होता जाय-माघवती!

इन नरकोमे एक से तीन मे परमाधामीकृत्-क्षेत्रकृत्-परस्परकृत् वेदनाओका पार नही । चारमे सातमे परमाधामी-कृत वेदना नही है। कमसे कम आयु दश हजार वर्षकी। ज्यादामे ज्यादा तेतीस सागरोपम । इस वेदना के उदाहरण-रूप । वहाँ के जलने अग्निमे लाकर (वह कल्पना सिर्फ है, जो कि वह असम्भव है।) यहा की लोहे की भट्ठी मे रखा जाय उस जीवको ठड लगेगी । वैसे ही शीत वेदना को भी समजा जाय। अर्थात् इन वेदनाओ का शाब्दिक वर्णन अशक्य है ।

७६ "भुवनपति देव"

पहली रत्नप्रभा पृथ्वीका माप एक लाख अस्सी हजार योजन है । उपर निम्न के हजार हजार छोड दो । शेषमें तेरह प्रतर। उसके बारह आंतरे । उसमे नगर जैसे आवासमे मडप जैसे आवासोमे भुवनपति रहते है। सुन्दर, तेजशोभित, दीप्तिमान होने से "कुमार" कहा जाता है । उसके प्रकार दश हैं । असुर-नाग-सुवर्ण-विद्युत-अग्नि-द्वीप-उदधि-दिशि-पवन और मेघकुमार।

७७. व्यंतर-वानव्यतर

उपर के छोड गये हजार योजना मे उपर के और नीचे के सौ-सौ योजन छोडने पर आठ वदने आठसो म व्यतर रहते है। वैसे ही उपर छोडे हुए सो योजनमे उपर और नीचे के दश दश बाद करते शेषमे वानव्यंतर रहते है ।

व्यंतरो के नाम	वान व्यंतरोके नाम
१ पिशाच	१ अण पन्नी
२ भूत	२ पण पन्नी
३ यक्ष	३ इसिवादी
४ राक्षस	४ भूतवादी
५ किन्नर	५ कंदित
६ किंपुरुष	६ महा कंदित
७ महोरग	७ कोहंड
८ गंधर्व	८ पतंग

ये विचारे कतीपय अपनी कुआदत के कारण भ्रमण करते है। मंत्रादिसे या प्रबल पुन्य से वशीभूत होकर मनुष्यों की नौकरों के समान सेवा करते है। कर्म की गति न्यारी है। इसमें भी कमसे कम आयु दश हजार वर्ष की होती है। सबसे उपर के सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरवासी का ३३ सागरोपम होती है। इस तरह अधोलोक सम्पूर्ण होता है !

७८. 'तिर्च्छालोक का वर्णन"

तिर्च्छालोक के मध्य में मेरू पर्वत (जवुद्वीपका) उसके मूल की भूमि को समतल पृष्ठ भूमिको "समभूतला" ! कहतें हैं। प्रत्येक शास्त्रीय माप वहाँ से शुरु होता है। इस समभूमिसे नव सौ (९००) योजन उपर-नव सौ (९००) योजन नीचे इस तरह अढारह सौ (१८००) योजन का तिर्च्छालोक है !

७९. "ज्योतिष्क देव"

नीचे और उपर मनुष्य और तिर्यंच रहते हैं ! उपर के सात सो नव्वे (७९०) योजनके बाद ऐक सौ दश (११०) योजन में ज्योतिष्क देवो के विमान हैं।

प्रारभ मे "तारा" के विमान। दस योजन के बाद *"सूय" के विमान । बाद मे अस्सी (८०) योजन पर "चद्र"* के विमान । बादमे चार (४) योजन छोडकर नक्षत्रो के विमान। इसके बाद सोलह (१६) योजन छोडकर ग्रहो के विमान है । ये सब "चर ज्योतिष्क" है। ढाई द्विप पर आये हुए हैं। मेरू पर्वत के आसपास घूमते फिरते रहते हैं। ढाई द्विपके बाहरके स्थिर रहते हैं । पाँच चर और पाँच स्थिर इस तरह ज्योतिष्क दस माने गये हैं।

८०. "वैमानिक देव"

यहाँ से थोडो उँचाई पर उर्ध्व लोक शुरु होता है। दक्षिण दिशा मे सौधम देवलोक, उत्तरमे इशान, उपर सनत्कुमार, माहेन्द्र दक्षिण और उत्तर मे ३-४ के उपर बीचमे पाँचवाँ ब्रह्मलोक। उसके उपर छट्ठा लातक। उपर सातवाँ महाशुक्र । उलके उपर आठ वाँ सहस्रार । फिर नव वा आनत दक्षिणमे। दश वाँ प्राणन उत्तर मे। उपर ग्यारहवा आरण दक्षिण मे। बारहवाँ अच्युत उत्तर मे।

बादमे ९ ग्रैवेयक लोक पुरुषकी ग्रीवा-गरदन के स्थान पर। तीन उपर तीन इस तरह है। नौके नाम (१) सुदर्शन, (२) सुप्रतिबद्ध, (३) मनोरम, (४) सर्वतोभद्र, (५) सुविशाल (६) सुमनस (७) सौमनस (८) प्रियकर और (९) नदिकर।

उसके बाद एक समतल भूमि पर पाँच अनुत्तर विमान है। (१) विजय, (२) विजयन्त, (३) जयत, (४) अपराजित (५) सर्वार्थसिद्ध। सर्वोथसिद्ध विमानके देव नियमा

एकावतारी होते है। मनुष्य जन्म प्राप्तकर उसी भवमें अवश्य ही मुकित को प्राप्त करेंगे।

ग्रैवेयक और अनुत्तरदेव कल्पातीत है। तीर्थंकर देवों के कल्याणक आदि में जानेका उनका आचार नहीं है। सब अहमिन्द्र होते हैं। राजादेव, नोकर देव ऐसी व्यवस्था ये दो कल्पातीतोंमें में हैं नहीं। जब कि दूसरे देवलोकमें यह सब व्यवस्था है। इस लिए ये सब कल्पोपपन्न कहे जाते हैं।

८१. ६४ "इंद्रों की गणना"

भवनपतिके १०x२=२०, व्यतर—वानव्यंतर १६x`=३२ ज्योतिष्कके सूर्य और चंद्र (२) वैमानिक ८ तक के ८। नवदश—१। ग्यारह बारह—१=६४ इन्द्र। भगवंतो के पाँचों कल्याणकों में प्रायः हाजिर रहे। महामहोत्सव करे। आत्मा आनंदित बने।

८२. "लोकांतिक देव"

पाँच वे देवलोक के ये देव प्रभु श्री अरिहंतकी दीक्षा अवसर की जानकारी देनेवाले प्रायः एकावतारी होते हैं। सारस्वत आदित्य-वह्नि-वरुण-गर्दतोय-तुषित-अव्यावाध मरुत-अरिष्ट इस तरह नौ। पुन्य का यह भी एक उत्तम प्रकार है न?

८३. १० "तिर्यग्जृंभक देव

तीर्थंकर भगवान के गृहवास में इन्द्र के आज्ञाकांक्षी कुबेर की अगुवानी के नीचे अन्न-जल-वस्त्र-धन इत्यादि से भकित करने वाले हैं। वे व्यंतर निकाय के हैं।

८४ "तिच्छीलोक"

इस लोकमे अढाई द्विपमे विशेषत मनुष्यो की विचारणा जायेगी। उसके पार मनुष्यो के जन्म-मरण नही है। आजकी दीखती दुनिया भरतक्षेत्र का एक छोटा सा टुकडा है। भरतक्षेत्र जम्बुद्वीप मे आया है। जम्बुद्वीप के मध्यभाग मे मेरु पर्वत है। उस मेरु की दक्षिण में भरत-क्षेत्र है। उसके बीचमे वैताढय पवत है। जिससे भरतक्षेत्र का उत्तर-दक्षिण विभाग पड जाता है। उसके पूर्व पश्चिम महा गगा महासिधु बहती है। इस तरह कुल छ विभाग-खड भरतक्षेत्र के हैं। सामान्यत ऐसा कहा जाता है कि उस मध्यखड के कई विभागमे आजकी दीखती दुनिया अन्तर्गत आ जाती है।

मेरू के उत्तर में भरतक्षेत्र जैसा ऐरवत क्षेत्र है। मेरू के पूर्व और पश्चिम मे महाविदेह क्षेत्र है। १६ विजय पूर्व में १६ पश्चिम मे एक-एक विजय भरतक्षेत्र से बडी कही जा सकती है। जबुद्वीप के आसपास लवण समुद्र और उसके बाद धातकीखड है। जिसमें २ भरत, २ ऐरवत, २ महाविदेह हैं। धातकी खड द्वीपके चारो ओर कालोदधि समुद्र है। बाद मे पुष्करावर्त द्वीप है। आधे मे २ भरत, २ ऐरवत, २ महा-विदेह हैं॥

८५ १५ "कर्मभूमि" । मानुषोत्तर पर्वत"

यह पुष्करवरद्वीप आधे को घेर कर मानुषोतर पर्वत आया हुआ है। इस तरह ढाई द्वीप मे ५ भरत, ५ ऐरवत,

५ महाविदेह इस तरह १५ कर्मभूमिकाएँ हैं । क्यों कि असि मषि और कृषि के व्यापार वहाँ होते हैं । असि शब्द से शस्त्र युद्ध इत्यादि समझना है । मषि शब्द से हिसाब चोपडे, वाणिज्य, व्यापार समझ लेना । कृषि से पृथ्वी, खेत, खेतीकाम आदि व्यवहार की व्यापकता समझ लेना ।

८६. "३० अकर्मभूमि"

३० अकर्मभूमि मे असि मषि-कृषि के व्यवहार नही है । जीव कम कषायवाले और अल्पविषयी होने से वहाँ से मरकर देवलोकमे ही जाते हैं । उनके रूपका, स्वभाव का और मुख्य गुण सरलतादि के विस्तृत वर्णन शास्त्रो में दिये गये हैं । जिसे पढने से ऐसा मालुम होता है कि देव जैसे प्रायः सुखी है । आयुष्य भी लम्बा होता है । प्रायः रोगादि की पीड़ा नही है । वहाँ के पशु पंछी का भय मानव को नही । मानव का भय पशु पंछियों को भी नही । कैसी अच्छी मानवता ।

जंबुद्वीप में हिमवत-हरिवर्ष-हिरण्यवंत-रम्यक-देवकुरु उतरकुरू । इस तरह ६ (छ) अकर्मभूमिकाएँ है । + १२ घातकी में + १२ अर्धपुष्कर में = ३०अकर्मभूमिकाएँ समझना चाहिए ।

१५ कर्मभूमिकाएँ, ३० अकर्मभूमिकाएँ, ५६ अंतरद्वीप लवणसमुद्र में = १०१ इस तरह स्थल की ओर-१०१ भेद मनुष्योके होते है । (१०१ x २-संमूच्छिम और गर्भज अपर्याप्त, उसमें गर्भज पर्याप्त १०१ मिलानेसे ३०३ भेद हो जाय)

८७ "संमूच्छिंम मनुष्य"

यह एक चर्मचक्षुसे अदृश्य बात है। अतिशय ज्ञानी आनद से देख सकते जान सकते हैं। गर्भज मनुष्यों का विष्टा मूत्र-कफकी लीटे-नासिका के मेल-वमन-दुर्गंधयुकत प्रवाही-(परू) लहू-मैथुन=वीर्य-पित्तश्लेष्म-वीयके सुखे पुद्‍गल (भीग जाय तो) शहरकी गटर, मृतदेह शव इत्यादि स्थान जो-जो अशुचि के हो उनमे समूच्छिंम मनुष्य पैदा होते हैं। चार इन्द्रियो तक सब तिर्यंच समूच्छिम होते हैं। पचेन्द्रिय तिर्यचोमे कई समूच्छिंम और गर्भज होते है। वर्षाऋतु से वारिशकी बौछारोके बाद यकायक पखवाले उधइ जैसे जीव उडने लगते है। थोडी देरके बाद पख तूट जाने से मर जाते है। ये सब समूच्छिम कोटिके समजना चाहिए।

८८. "पर्याप्त अपर्याप्त"

उत्पन्न होते देह-इन्द्रिय-मन इत्यादिओकी शक्तिया जिनकी पूर्ण हो वे पर्याप्त और पूण न बन पावे वे अपर्याप्त जितनी साधारण समज काफी होगी ?

८९ " नन्दीश्वर द्वीप"

मानुपोत्तर पर्वत के बाद शेप भाग अर्धपुष्करावर्त पीछे एक समुद्र, एक द्वीप। इस तरह आठवाँ द्वीप वह नदीश्वर द्वीप। जहाँ देव, पांच, कल्याणक और ६ अट्ठाअियोका महोत्सव मनाते है। इसके प्रतिकके रूप मे जिनालयो मे और तीर्थस्थानो मे नन्दीश्वर द्वीप की रचना सुन्दर जिनबिम्बोको

स्थापना की गई है। पालीतानेमें श्री गिरिराज पर श्री उजमफूइकी की जगहमें (टुंकमें) यह रचना की गई है। अमदावादमें दोशीवाडाकी पोलमें प्रवेश करते ही अष्टापदजी देरासरमें भी है।

९०. "स्वयंभूरमण महासागर"

नन्दीश्वर द्वीपके बाद असंख्य द्वीप समुद्र हैं। उसमें आखरी स्वयंभूरमण समुद्र है। गंभीरतामें और मर्यादामें "स्वयंभूरमण" को याद किया जाता है। "सागरवरगंभीरा" सिद्ध भगवन्तोंकी वरसागर स्वयंभूके साथ तुलना की गई। तिर्च्छालोक का वह अन्त है।

९१. "महाविदेह क्षेत्र"

पाँचों महाविदेहमें चौथे आरे के भाव प्रतिदिन वर्तते है! प्रत्येक महाविदेहमें चार तीर्थंकर देव विचरते है। अभी बीस (२०) विहरमान जिनेश्वरदेव विश्व को पावन कर रहे है। २ कोटी कैवल्यज्ञानी और (२०००) दो हजार कोटी साधुओं को नमस्कार हों!

९२. "१७० श्री तीर्थंकर भगवन्त"

ऐसी भी एक उत्कृष्ट परिस्थिति का सर्जन होता है। जब जिनेश्वर भगवंत एक ही साथ विश्व को पावन करते हैं। ५ महाविदेह की ५x३२=१६० विजय, ५ भरत, ५ ऐरवत= १७० स्थलों में कृपासिन्धु भगवंतो के दर्शन हो सके। नवकोटी कैवल्यज्ञानी जीवनमुक्त महात्मा। नौ सहस्त्र कोटी संयमधर समता सागर महात्माओ, उन सबको वन्दना।

-उन उन भूमिकाओ की विशालकाय लबाइ-चौडाइ और उनके प्रमाणका जन सख्या का प्रमाण। ये सब सोचते कोई भी सख्या आश्चर्यमुग्ध न कर सकेगी। ये सब रागद्वेष मोहसे बीलकुल पर सर्वज्ञकथित है। उन उन कालो के जीवोकी सरलता और विवेक सयम सन्मुख बना दे वह स्वाभाविक है। आज के महाभयकर,-विपर्यास और विलास के युग मे भी सुखी रूप-गुण सपन्न, कहे जाने वाले शिक्षण प्राप्त किये हुए युवक-युवतियाँ सयम के कठीन पथको सख्यावद्ध कहाँ स्वीकारते नही ?

६३ "सिद्धशिला"

४५ लक्षयोजन प्रमाण ढाई‌द्वीप की समभूमितल के उपर सिध्धशिला उज्ज्वल स्फटिकरत्न जैसी देदीप्यमान है। बीचमे स्थूल और चौडी और अतमे मक्खी की पख जैसी है। वहाँ से उससे एक योजन उपर समश्रेणी पर अलोकको स्पर्श करती अनतासिध्धो की श्रेणी बसी है।

ये अनादि कालीन वस्तुएँ है। विश्वका कर्ता कोई नही हैं। सम्पूर्ण विश्व आँख के सामने देखा नही जा सकता है। हाँ नकशे की मददसे अनावृत चर्म चक्षु को प्रज्ञा द्वारा देखा जा सके। शेप तो किसी भी व्यक्तिने घुमेघुमाकर सम्पूर्ण दुनिया देखी नही है। बाउन्ड्री घुमनेसे सम्पूर्ण देख ली ऐसी बात अगर कहते हो तो एक अनोखी बात है। वेभी छोटी दुनिया मुख्य स्थलो की मुलाकात लेनेकी बातसे कहते हो तो वह भी एक अलग बात है।

जब कि सर्वज्ञ-सर्वदर्शी-कथित सिद्धपदार्थो मे आज शब्दपडितो को शका होती है। जो शुक्र चन्द्र के प्रदेश खोज

में उन प्रदेशों के विशिष्ट वैज्ञानिक और संस्थाएं शंकाशील होते हैं। उसे मानने के लिए शब्द पंडित तैयार। बल्कि सिर्फ सर्वज्ञकथितमें ही "ना" ! और अश्रध्धा।

अरे मोहनीय के महामिथ्यात्वसे पिड़ित वे आत्माएँ सर्वज्ञ की सर्वज्ञता ही मानने के लिए तैयार नहीं है। हूबहु विश्वव्यवस्थाका युक्तिगम्य चित्र पेश करने वाला सर्वज्ञ नही। यह भी एक महाअज्ञान की पराकाष्टा है न ? सद्‌बुद्धि हो जाए तो अच्छा परंतु संभव नहीं है।

१४. "युगलीआ"

यह विश्वव्यवस्था की बिलकुल साधारण रूपरेखाएँ हैं, और तो विभाग-पेटाविभाग-अन्तरप्रदेश पर्वतोंकी हकीकत विस्तृत है। इन सबों की मान-लबाइ चौडाइ-गहराइ-उंचाइ वगैरहोंकी स्पष्ट वर्णन श्रद्धा को बढा देते है। ऐसे है।

५६ अन्तरद्वीप के मनुष्य लवण समुद्र में कहे गये वे युगलीआ ही होते है। उनको प्रत्येक तीसरे दिन आहारकी इच्छा होती है। (७९) दिन संतानों का पालन करते हैं। शरीर की उंचाइ (८००) आठ सौ धनुष्य (एक निश्चित माप) प्रमाण होती है। आयुष्य पल्योपमका असख्यातवाँ हिस्सा होती है। उनके रुप लावण्य और सुकोमलताका वर्णन है। उसी तरह सरलता बीलकुल कम कषाय, परिग्रह सज्ञा भी कम ! इत्यादि आंतरगुण वर्णन भी है। मातापिता के मृत्यु के बाद पतिपत्नी का व्यवहार रहता है ! मृत्यु के बाद देवलोक निश्चित होता है।

९५ "ग्रह नक्षत्रादि"

जहाँ एक चन्द्र एक सूर्य होते हैं वहाँ ८८ "ग्रह २८ नक्षत्र ६६९७५ कोटी के कोटी नक्षत्र होते हैं। ग्रहो के विमानो मे प्रथम बुध का बाद मे क्रमश शुक्र बृहस्पति (गुरू) मगल और शनैश्चर के विमान उपरोपरी होते हैं।

९६ "किल्निपिक देव"

उन उन देवलोक म वे चाडालतुल्य माने जाते है। अपनी स्थित मर्यादा से बाहर के उन उन प्रदेशो मे उनका प्रवेश नही होता है। कर्मानुसारी परिस्थिति में ही उनको रहना पडता है। मर्यादा भग की कृति प्राय नही उत्पन्न होती है। अगर उत्पन्न हो तो इन्द्रादि की आना के पास प्राय वह रह सकती नही है। कर्मसत्ता के वशानुगामी आत्माएँ पाप पुन्य भुलने मे तो शिक्षा ही पाते है न? पाप पुन्य के तत्त्व को दृष्टि के सामने रखे! प्राप्त परिस्थिति को अपने कर्मानुसार समजे! सतोषपूर्वक समवृति से रहे उनका भविष्य का उद्धार शक्य है न? नौकरदेव, रक्षकदेव वहा होते ही हैं।

९७. "लोकवृत्ति"

असल मे तो वदर की जाति हो, मदिरा अगर पिलाई जाय! बाद मे अगर बिच्छु डग दे। स्वहस्त से परेशानी खडी की न! प्रकृति के मार्ग से च्युत कराकर गलत राह पर ले जाने से क्या समाज पर बडा अपकार ही होता है न? उस मे मे अशान्ति धावली-मारामारी-पक्षतांडव-लूट-चोरी-

डकैती-नशाखोरी-व्यभिचार-खुन करके मारण क्रिया के सिवा ओर कया हो सकता है? किस प्रकार की आशा रखी जा सके? असंतोप की अग्नि की ज्वालाओं में से और क्या उत्पन्न हो हो सकता है ? कौन समजायेगे ये सब सुखप्रद बाते भारत की भव्य प्रजा को ? सिवा के गिने गिने निःस्पृही महात्माजन ?

१८. धन के पीछे की जंगलीयात-पागलपन"

संसार व्यवहार के कार्यों में धन की आवश्यकता तो होती है। परतु वह तो प्राप्त होती है भाग्यानुसार ही न ! किसी को कम मजदूरी से, किसी को विशेष मजदूरी से, किसी को बिना मेहनत और थोडी भी चिन्ता के बिना अनायास भी। रजत के चमच से दूध पीता, रजत के घूघरू से खेलता बडा होता है। पुन्य के कारण अत्यंत बडे धनराशी का स्वामि बन जाय। शानदार सही रास्ते पद चले। दु:शील हो तो दु:ख के पर्वत अपने ही लिये खडा करता है। वह लक्ष्मी द्वारा ही बहुत से अत्याचार और पापप्रवृत्ति के पीछे पागल बनता है।

धनके लिये अपने को भी भूल जानेवाले भी है। कुल की कोई कीमत नही। कीर्तिनाश में ही अपना चातुर्य समजे। भयकर पाप कर्म करने मे बीलकुल अशांति या अफसोस व्यकत न करे। प्राचीन काल मे भी अैसे थे परन्तु परन्तु आज तो वर्ग बढ गया है। और वे वर्ग के पीछे कम ताकत और कम पुन्य वाला वर्ग भी पागल बनने लग गया। पुन्य भी कुछ सहायक नही बन जाता है। गलत कार्य छोडता नहीं है। कार्यसिद्धि नही होती है। पाप सिर पर पडे ही

पड़े । रातदिन चिन्ता कुतरती जाती है । शरीर क्षीण बने, मन कमजोर हो जाय । विचारों का युद्ध हो जाय । क्रोधादि सवार हो जाय । आरोग्य निष्फल बन जाय । टी. बी अस्थमा दम) लकवा हर्टफेइल का दर्द हाजिर हो जाय । धर्मरूप औषध है नहीं जिससे शांति पा सके । वैद्यकीय उपचार करने के लिये पैसे नहीं है । होने पर भी उपाय करने में सफलता प्राप्त नहीं होती है । अपमृत्यु, आत्महत्या उसका परिणाम । यह है सिर्फ धन के पीछे की पागलता । आज की सुसस्कृत दुनिया की । उसका चेप स्पर्श लगा है भारतवर्ष की आर्य प्रजाको भी । धनके पीछे जा रही है अनार्यता की ओर । सस्कार भूमि सफाचट हो गई है । बुरी आदतों का अन्त नहीं ॥ पाप का डर नहीं । पुन्य गाठ में है नहीं । बोधशिक्षा अच्छी लगती है नहीं । वे सुनने को भी तैयार नहीं । सन्त भी क्या करे ? हृदय पीगल जाता है । करुणा तो छोर तक भरी है । परन्तु सुने, समझे और हृदय मे ग्रहण करे उनके लिये न ?

६६ "कृत्रिम दिखावा"

यह पागलपन जन्मा कैसे ? सभी को अच्छा और बड़ा होने का दिखावा अच्छा लगता है इसलिए ही ? सब को कार चाहिये, सब को बगला चाहिये । अपने पास तो पाँच सौ भी नहीं । पचास हजार का फलेट लेने की इच्छा है । पाँच सहस्र की नहीं बल्कि पांच लक्ष की पेढ़ी करनी है । पचास हजार की लेनदेन करनी है । भोजन भी लेता नहीं है । अपनी गाठ में होगा-बचेगा तो धन देंगे । नहीं तो जायगा उसके बाप का । हम तो बादशाही ठाठ से रहेंगे ।

दूध-भात में सक्कर डालकर भोजन ले। अगर न पहुँचे तो हमारी कमजोरी है ! धन वापस देने में अैसा कह देंगे। फर्नीचर अच्छा खासा रखेंगे। शणगार आकर्षक। पार्टी भी देता रहे। हमारी वाहवाह वोली जाय न ? अपकीत्ति तो होगी तब होगी ! वीना कुछ किये धनवान बन जाने की ख्वाहीश क्या बन सकेगी ? क्या प्रकाश में आये विना हमारी प्रतिष्ठा बढ़े ? बस दौडधूप किये जाओ। इस प्रकार के उन्माद में जरुरीयात का कोई ठिकाना भी नही ? एक सौ पचास की आमदानी पर दो सौ पचीस का खर्च। तीन सौ की आमदानी पर बढाकर साढे चार सौ का ? लांच रिश्वत धोखा तो होता ही है। कोर्ट में पेशगी चले न ? कोर्ट में मुकदमो के ढेर लगे रहे। सरकारी जोहूकिम चले हो न ? चलने दे क्या ले जा सकेंगे विचारे ? साइनबोर्ड बदल डालेंगे।

यह बनावटी दिखावा—कृत्रिम दिखावा लोहे के टोप के समान सिर पर है। जो क्रोध और पाप का प्रतिक है। कीर्ति नष्ट हो जायगी। जप्ति की ज्वाला। रात की नींद हराम। गोलियाँ खाते रहो। हार्टवीक बने। सीक बन गये। जीवन प्रवाह का नी:तेज। न मिले शान्ति की लहर। यह है कृत्रिम दिखाने की' अपसगुन की छींक।

१०० "आत्मा और देह"

देह की सौंदर्यतामें भयकरता का जन्म होता है। देह को ही सर्वस्व मान लिया। उसकी सेवा लालनपालन और उसका पुर्णतः पोषण। आत्माका हुआ सोषण उस रीतिमे आत्माही भूलाये गये। आत्मा भूले जाने से तो ! खाद, पिब, मोद.

ड्रीन्क, डीलाइट, बोमेरी "ऋण कृत्वा घृत पिब"। ऋण करो अपितु उजले आनद में रहो। यह भव बहूत अच्छा है। परभव किसने देखा है ?

आजाय आखरी स्थान पर। परमेश्वर है कहाँ ? और धर्मतो एक धतीग ही चल रहा है। साधु बनने वालोने खडा किया है। मरने के बाद डर किस का ? हाजिर आजकी बाते करो। बायदा—भविष्य की होनेवाली बातो को छोड दो। प्रत्यक्ष का पक्ष करो। आगामी भव की बात अरुचीकर लगे, पुन्य पापो की बातें बनावटी किसीने उत्पन्न की होगी। पचभूतोमे से देह बनी। नष्टे देहे भव नष्ट। गरीब और धनवान कैसे ? बिमार स्वस्थ कैसे ? मूर्ख और पडित कैसे ? राजा और रक कयो ? एक प्रधान बने, अन्य चपरासी एक साहब, अन्य नौकर, एक न्यायाधीश, अन्य प्युन। उत्तर नही है, समाधान नही है अपितु कहना है समाज व्यवस्था की अपूर्णता—भूल ! भाई ये सब तो सब देशो मे है। सुधर गये गिनातेवालो मे भी गिनती पानेवाले धनकुबेर अमरिका मे भी कया बोले ? वह तो होना है ऐसी बाते मत करो। सिरदर्द न होने दो। आनद मे जीने दो।

आनद है नही। मस्तक बिगडा हुआ है, भविष्य मे मस्तक मिलेगा नहि। कयो ? आँख का उलटा उपयोग आँख नहीं। जिसका दुरूपयोग वह चीज भवान्तर मे प्राय नही। परन्तु आत्मा और परलोक मानता नही है। देह यहाँ माताके उदर मे पैदा हुआ है। अग्निमे जल जायगा या मिट्टीमे मिल जायगा। आत्मा को नर्क मिलेगा। नीग्रच के भयकर दुख सहने पडेगे। पछतावा भी नही मुक्त करेगा। सज्जन पुन्यवान

की चिन्ता है ही नहीं। किल्विपिक देव और देवलोक की समाज व्यवस्थामे से लोकवृत्ति आदि की घटना सोची अब ही देवलोक मे जिनालय और जिनबिम्बों की संख्या व्यवस्था जान ले।

१०१. "शाश्वत जिनालय और जिनबिम्ब'

शाश्वतका अर्थ है सदाकालिन। निम्न पृथ्वीतलके भवनपति देवलोक में हर आवास मे जिनचैत्य होते है। उनकी संख्या सात कोटी बहत्तर लक्ष की है। प्रत्येक चैत्यमें एक सो अस्सी प्रतिमाएँ होती है। व्यतर और ज्योतिपिमें शाश्वत बिम्ब होते हैं। उसके शाश्वत नाम भी है। ऋपभ, चन्द्रानन, वारिपेण और वर्धमान ये चार।

पहले देवलोकमें ३२ लक्ष विमानों मे ३२ लक्ष चैत्य हैं। दूसरेमें २८ लक्ष, तीसरेमें १२ लक्ष, चौथे मे ८ लक्ष, पाँचवेमे ४ लक्ष, छट्ठे मे ५० हजार। सातवें में ४० हजार, आठवें में ६ हजार नवम-दशममे ४००, ग्यारह बारहवे मे ३१८ और ५ अनुत्तर के मिलकर ८४ लक्ष-९७ सहस्त्र २३ जिन चैत्य है। उन प्रत्येकमे १८० जिनबिम्बों का प्रमाण है।

तीनो लोकमें शाश्वत चैत्य जिनालय ८ कोटी, ५७ लक्ष २८२ है। शाश्वता बिम्बों की कुल संख्या १५ अरब, ४२ कोटी, ५८ लक्ष ३६ हजार ८० है।

ये सब जिनचैत्य और परमात्मा की प्रतिमाओं को प्रणाम करे, वह है पुन्यवान। श्रद्धा उत्पन्न होती है। बोधिबीज बोया जाय। सम्यक्त्व को प्राप्त करे। संयम स्वीकार करके

मुकित मे मगलप्रवेश करे । अमगल हमेशाके लिए नष्टप्राय ॥
जिसका अनंतसिद्धोमे हुआ वास ।

१०२ "देवलोक की सामान्य परिस्थिति"

देवो के शरीर वैक्रिय पुद्गल पमाणुओके बने होते हैं। उसमे किसी भी प्रकार की मल मुत्रादिक अशुचि होती नहीं है । वृद्धावस्था नही प्राप्त होती है । हमेशा यौवन जीवन्त रहता है । उनकी भी आयुष्यमर्यादा समाप्त होती है । छ मास पहले फूलकी माला मुरझा जाती है । देवीयो, नौकर परिवार आज्ञा न माने । वगेरह चिन्ह दिखते हैं । दुःखी परेशान होते है । महस्र लक्ष वर्ष भोगे गये सुख दृष्टि के सामने आते जाते हैं । विलाप भी करते हैं । परतु कर्मसत्ताके पास क्या चले ? उसमे भी खबर हो जाय कि पशु आदिमे जन्म लेना है । तो हताश बन जाते हैं । जो कि मानव स्त्री के गर्भमे जाना वही उसको कम्प पैदा कर देता है ।

ऐसी परिस्थितिमे भी जो सम्यक धर्मतत्वको समज सका है, वे आनदमे रहते है । उल्टा विशेपत आनदी बना रहता है । मनुष्यभव मे सयम की प्राप्ति अवश्य हुई मुक्ति साधना हो सकेगी इस लिए । क्यो कि देवभवमे भी प्राय विरागी होते हैं ।

वहा मनुष्यो की तरह अन्नादिका कवल आहार नही है । क्षुधा जब लगे तब वे पुद्गल परमाणु शरीरमे सक्रमण होते है । क्षुधा शात बन जाती है । हाजत, पेशाब, लेट्रीन की होती नही है । प्रस्वेद होता नही है । कमाने की चिन्ता नहीं । स्फटिकमय आलयोमे रहने का है । परतु जो परिस्थिति

उत्पन्न होने समय थी वही रहेगी । वडे या विशिष्ट देवों का ठाठबाठ इच्छा करने पर भी न प्राप्त हो । दूसरा प्रयत्न वहाँ चलता नहीं । इर्षा, असंतोप की ज्वाला हंमेशा जलती रहे उसको । जो प्राय: यहाँ की दुनियामें उसी प्रकार आदत पडी होती है । शंका और वासना क्या न करावे ?

आयुष्य पूर्ण होते पर चाहे जहाँ हो उनका च्यवन हो जाता है । शरीर के पुद्‌गल विखर जाते है जो मनुष्य या तिर्यचगतिमे जानेका कर्म बन्धा होता है, वहाँ पहुँच जाता है।

वडे हिस्से के देव आनंद प्रमोद, संगीत और देवीयों के सहवास में मस्त रहते हैं । सम्यक्‌दृष्टि देवों को भोगोपभोग में रति नही होती है । चाहे भले ही भोगोपभोग करते हों । जिनेश्वर देवोंके कल्याणको में आनंद आता है । तीर्थंकर देव या केवलीदेशना सुनने के लिये तत्पर रहते है । सती स्त्रीयां या धर्मिष्ठ तपस्वी आत्माओंको सहाय करने में उत्साही बनते है । मित्र वर्ग के साथ भी संसार की विचित्रिता और असारता की बांते वहाँ चलती हैं ।

वहाँ स्त्रीयों के अपहरणकी विक्रिया कई बार होती रहती है । परन्तु उसकी सजा भी बहुत होती है । अवधिज्ञानादि होने से अपनी अपनी मर्यादाके अनुसार अमुक प्रदेश तक देख सकता है, समज भी सकता है । अति प्रेमके कारण कोइ संवन्धी को मिलने के लिये इस दुनियामें आता भी है । अति द्वेप के कारण दु:ख भी देता है । संक्षेप में एक विशिष्ट शक्ति धारण किया हुआ एक वर्ग है । आयुष्य लम्बा और काया अशुचिरहित होती है । अपितु मृत्यु निश्चित है । आगामी

भवोमे भी कर्म के फल भोगने पडेगे ही। कई नौकरोको, देवो को मालिक की इच्छा होने से वाहन के लिए शेर-घोडा आदि बनना पडता है। कम की कठिनाई सर्वत्र बाधारूप होती है।

कल्पोपपन्न देवोमे सामानिक सामान्य व्यवस्था निम्नरीति से होती है। इन्द्र सामानिक (इन्द्र के समान होनेवाला) त्रायस्त्रिशक (गुरुस्थानिय), पार्षद (पर्षदामे बैठने वाले) आत्मरक्षक (बोडीगार्ड्झ) लोकपाल (दिशापरत्वे) अनीक (पायदल) प्रकीण (प्रजाजन जैसे) आभियोगिक (नौकर स्थानिय) किल्बिषिक (चाडाल कोटिके ढोल आदि बजाने वाले ढोली) इन्द्र के हुक्म से बड हिस्से के देव, तीर्थकर देव आदिके प्रसगोमे हाजिर रहते हैं। कोइ आत्माकी (अपनी) भक्तिसे, कोइ हुक्मसे, कोइ स्त्री के आग्रहसे कोइ मित्रोको सहकार देने के लिये तो कोई कुतूहलसे।

देवो को प्राय बाह्य दृष्टिसे सुखमे ही विलासी रहनेका होता है। जान बूझकर ईर्षा, असतोष मे, चिन्ता, उपाधि खडे करे तो कौन रोक सके ? और तो कोई सासारिक चिन्ता नही होती है।

यह सब सासारिक सुख नाशवन्त है। जीवन निश्चित नही। सुख दुख पुन्या पापाधिन है। किये हुए कर्म देवो को भी भोगने पडते हैं। ये बिचारे भी विषय-कषायके पास पामर हैं। इस लिये हे आत्मन्! तू चेत। तेरे स्व-स्वरूपको पहचान। इसे पहचानने के लिए धर्मका शरण स्वीकार कर लो। धर्म जिनेश्वर देव की आज्ञामे ही है। इत्यादि समज कर आत्म सन्मुख होने के लिए ज्ञानकी प्राप्ति कर लेनी है।

१०३ "१२ चक्रवर्ती"

२४ तीर्थंकरों के समय मे १२ चक्रवर्ती होते हैं। भरतक्षेत्र में छः खंडों में उनका आधिपत्य होता है। विजय कूच में सब भेट सौगाद लेकर शरण में आते है। अगर कोई सामना करता है तो सेनापति आगे जाकर हराकर पीछे हटाता है। नमा देते है। किसी का भी राज्य नहीं लिया जाता है। अपितु हंमेशा के लिये उसका रक्षण होता है ! वह राजा निश्चित बन जाता है।

चक्रवर्ती को देवों का सांनिध्य होता है। देव पुन्य-आकर्षण से सेवा में उपस्थित रहते है। और वे आनंद से रहते हैं। चेतन और जड रत्न सेवा में होते हे। स्त्रीरत्न, सेनापतिरत्न चर्मरत्न इत्यादि ये सब पुन्य के प्रकार क्रमशः जानने योग्य हैं। और समजने भी योग्य है !

बारह में से दो नर्क में गये है। विश्वव्यवस्था और कर्मसत्ता का वह अडग नियम है, जो चक्रवर्ती छः खंडों की खुशियाँ, सुखचैन भोगकर अन्त में साधु बने है। वे स्वर्ग मे या मुक्ति में गये है।

७२ हजार नगर, ९६ कोटी गाँव, ३२ हजार मुकुटधारी राजा, ६४ हजार अंतेउरी, ९, महानिधि, चौदह रत्न, हाथी, घोडे, रथ, प्रत्येक ८४ लक्ष के अधिपति हैं। आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता है। ऐसे सत्ताधारी को भी समज न ले तो नरक उसके लिये भी तैयार। कर्म की नचाने की गति बड़ी विचित्र है।

१०४ "९ वासुदेव-प्रतिवासुदेव"

तीन खड के स्वामी प्रतिवासुदेव को हराकर चक्ररत्न धारी वासुदेव बनते है। देवसानिध्य हाता हे। उनके समय मे तीर्थ कर से दूसरे नबरमे शारीरिक शक्ति होती है। परतु मर कर नियमा नरकावास मे ही जाना पडेगा। क्यो कि पीछले भव मे धर्म की आराधना अच्छी करने पर भी साधुत्व-स्वीकारके भी, अन्त मे धर्म को वेच देता है। विक्री कर देता है। मेरे इस धर्म तपका फल यह मिलो। इस तरह नरक को जानेवाला चक्रवर्ती भी नियाणु करके आये हुए हैं। सवा कोटी का रत्न एक रूपये के लिये दे दे, एसा ये खेल है।

१०५. "९ बलदेव"

उच्च कोटी के पुन्य को लेकर आनेवाले। वासुदेव के बडे भाई। बल अपार और छोटे भाई वासुदेव पर का सासारिक प्रेम भी बहुत (मोह का एक प्रकार) दुनियामे ऐसे प्रेम का नमूना नही मिलेगा। उसके दुख से दुखी उसके सुख से सुखी। राज्यगद्दी पर वासुदेव ही होता है। वासुदेव को प्रत्येक कार्य मे बलदेव की सलाह सहचार बिना चैन नही आता है। लक्ष्मण वासुदेव के बडे भाई राम, लक्ष्मण का मृत्यु को मानने के लिए भी तैयार नही। छ मास देव के बहुत कष्ट प्रयत्न के बाद जागृति आइ।

परन्तु बलदेव साधक पक्के। साधुतत्व का ही स्वीकार कर ले। और स्वर्ग में या मोक्ष मे ही जाय। इस तरह २४+१८+१२+९ कुल ६३ शलाका पुरुष माने जाते हैं। जो

नियमा मुक्ति मे ही जाते है। कोई पहले वही भव में और कोई आगामी भव मे। क्यों कि सम्यक्त्व का स्पर्श हो चुका था। ये सब महानुभाव आत्माएँ है।

विभाग ३ तीसरा

१०६ "श्री प्रतिक्रमण सूत्र"

ये पवित्र मंगलमय सूत्रो गांभोर्य से पूर्ण है अर्थ सभर भरे हैं। तारतम्य वहुत उच्चकोटिका है। रहस्य आत्मसात् होते ही मुक्तिका मार्ग खुल जाता है।

१. नमोअरिहंताणं

नमस्कार महामंत्र चौदह पूर्व का सार। अरिहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय और साधु पचपरमेष्ठी। उनको नमस्कार सर्व पापो का नाश करता है। विश्व का सर्वोत्कृष्ट मगल।

२. पंचिंदिय

श्री आचार्य तीर्थंकर देवके प्रतिनिधि। शासन के सुकानी। उनके मुख्यत ३६ गुणों का वर्णन। ५ इन्द्रियों पर कावु। ९ ब्रह्मचर्य की सीमा से परिरक्षित। ४ कषायों से मुकत। ५ महावृतों का पालन। ५ आचारों में समर्थ। ५ समितियाँ-३ गुप्तियो से रक्षित ऐसे ३६ गुणयुक्त आचार्य गुरुदेव है।

३. इच्छामि खमासमणो

साधु महात्माओं की आज्ञा लेकर, पाप व्यापार का त्याग करके, यथाशक्ति वदना होती है। इसे पंचांग खमासमण कहा जाता हैं। दो पैरों के जानु, (ढीचंण) दो हाथ, मस्तक, पाँचो भूमि से स्पर्श करे। अष्टांग का निषेध है।

४ इच्छकार :—

गुरुदेव को रात्रि, दिन सम्बधी सुखशाता पूछने है। सयमयाना की देखभाल करते हैं। आहार पानी गोचरी के लिए आमन्त्रग देने हैं।

५ इरियावहियम् :—

इरियापथिकी। रास्ते चलते जीवो की बनी हुई विराधना का मिथ्यादुष्कृत क्षमायाचना) दी या जाता है। १ से ५ इन्द्रियो वाले को तरह तरह की रितिसे जो किलामन-दु ख या मरणात कष्ट हुआ हो उसी की।

६ तस्स उत्तरी :—

विशेष शुद्धि के लिए सूत्र है। प्रायश्चित की खोज लगाकर, उस दोप को निकालने के लिए सल्यरहित करना। माया-निदान-मिथ्यात्व तीन शल्य है। शरीर का शल्य प्राण ले। ये शल्य भवोभव आत्मा को दुखी बनाते है।

७. अन्नत्थ :—

कायोत्सर्ग मे प्रकृति रीति से हो जाने वाली या समाधि की क्रिया को धारण किये जानेवाली प्रवृति को वाद करके कायोत्सर्ग करने मे आता है। जिससे प्रतिज्ञाभग का दोप न लगे। आत्मा घिट्ठा न बन पावे। छीक, खासी, बगासा इत्यादी आते समय या सर्पादि के भयमे प्रवृत्ति करनी पडे।

८ लोगस्स —

चतुर्विंशतिस्तव। वतमान २४ तीर्थकरो के नाम लेकर

स्तुति की है । वाद मे विघूतरजमल कर्मरज और पाप मल को जिसने नाश किया है । इत्यादि गभीरार्थ विशेषणों द्वारा स्तवना है । नौवाँ सुविधिनाथ भगवंत का पुष्पदंत एक विशिष्ट नाम दिया गया है ।

९. करेमिभंते :-

साधु-श्रावक दोनों के लिए थोडे परिवर्तन के साथ हंमेशा का उपयोगी सूत्र । संसार त्याग की ४८ मिनिट के लिए, १२ या २४ घंटो के लिए और साधुत्वमे सारे जीवन भरकी यह प्रतिज्ञा अद्भुत है । अन्य स्थल पर मालूम भी नहीं होती है । वडी आश्चर्य युक्त है । मन-वचन-कायासे पाप न करूंगा, न करवाउंगा और साधु तो अनुमोदन भी न दे ।

१०. सामाइयवयजुत्तो :-

सामाईक पालते वख्त श्रावक श्राविकाओं को बोलने का सूत्र । सामाईक से अशुभ कर्म का विभेदन हो जाय । सामाईकमें साधु जैसा श्रावक माना जाता है । इसलिए बारबार सामाईक करना चाहिए । कैसा सुन्दर उपदेश ? और कैसा सायिन्टिफिक युक्ति-गम्य सत्य ? उपरांत गुरूगम्य विधि तो अद्भुत ही है । श्रावक पूछता है, "गुरूजी ! सामाईक पारूं ? गुरूजी उत्तर देते है पुनः करने योग्य है । कर ऐसा नही कहते हैं । सामने से "यथाशक्ति" आवाज मिलता है । श्रावक फिरसे जाहिर करता है । सामाईकपाला । उत्तर मिलता है । आचार (सामाईक करनेका) मत छोडो । सामने से "ऐसा ही होगा" । जैनशासन बहत सी खूबीओंसे भरा है ।

११ जगचिंतामणि :-

भगवतके वचन पर की अतट श्रद्धा से महालब्धि निधन गणधर भगवत गौतमस्वामी अष्टापद पर पधारते हैं। वहा यह चैत्यवदन मे २४ भगवतादि की स्तुति शुरु करते हैं। चिनामणि-नाथ-गुरु-सार्थवाह सर्व भाव जानने वाले-कर्माष्टिक-नाशक- अप्रतिहत शासनादि गभीरार्थ विशेषणो से स्तवन करते है।

वादमे १५ कर्मभूमिओ मे किये सब १७०, उत्कृष्ट काल के जिनेश्वरो को उनके ६ कोटी केवली भगवतो को और ६००० कोटी साधु महात्माओ का स्तवन करते है। साप्रत कालमे महाविदेहोमे विचरते २० जिनेश्वर देवो की २ कोटी केवली २००० कोटी साधु महात्माओकी स्तवना करते है। (थुणिज्जइ निच्च विहाणि) स्तवन होता है प्रत्येक सुवहमे।

शेत्रुंजे पर के श्री ऋषभदेव भगवान का गीरनार के, प्रभु श्री नेमिनाथ का, सत्यपुरी के श्री महावीर देव का, भरुच के श्री मुनिसुव्रतस्वामि का और मुहरी पार्श्वनाथ का जयजयकार बुलाते हैं।

चारो दिशाओ और ६ विदिशाओ के, अतीत, वर्तमान अनागत सर्व जिनेश्वरो को वदना करते हैं। ८ कोटी ५७ लक्ष २८२ शाश्वत चैत्य-जिनालय तीनो लोक के उन्हे वदना करते हैं। १५४२ कोटी, ५८ लक्ष, ३६०८० शाश्वत जिनविम्बो को प्रणाम करते हैं।

१२ जंकिंचि :-

स्वर्ग, पाताल और मनुष्य लोक के तीर्थमात्रको और सभी बिम्बो को वदना की जाती है।

१३. नमुत्थुणं :–

शक्रस्तव इन्द्र के द्वारा भगवंतकी की हुई स्तवना। अरहृत, भगवंत आदिकर, तीर्थंकर स्वयंसम्बुद्ध, पुरुपोत्तम, पुरुपों में शेर, पुंडरिक कमल, गंध हस्ति, लोकोत्तम, लोकनाथ, लोकहित, लोकप्रदीप, लोकप्रद्योतकर, अभय, चक्षु, मार्ग, शरण बोधिको देनेवाले धर्मदाता, धर्मसार्थी इत्यादि बहुत से सार्यक विशेपणों से स्तवना की है। ललित विस्तरामे विशद विवेचन है। आखरी गाथामें भूत भविप्य के सिद्धों को और वर्तमानमे होते हुए सिद्धो को त्रिविध नमस्कार है।

१४. जावंति चेईयाइं :–

उर्ध्व-अधो-तिर्च्छा लोक के सर्व चैत्यो को यहाँ से वंदना है।

१५. जावंत के वि साहू :–

भरत-ऐरवत-महाविदेह के मन–वचन–काया के दंडोंसे विरत, साधु–महात्माओं को वंदना की है।

१६. नमोऽर्हत् :—

पंच परमेष्ठि को एक ही साथ नमस्कार किये है।

१७. उवसग्गहरम् :—

उपसर्गहर स्तोत्र आत्मा पर के अनादि कालसे उपसर्ग–दु:खो को नाश करनेवाला है। कर्म के समूह से मुक्त श्री पार्श्वनाथ भगवान की इस स्तवना से सम्यक्त्व संप्राप्ति, संप्राप्त का दृढीकरण, उसके द्वारा अजरामरत्व निश्चित बनता है। हृदय आज्ञा से विभोर और श्रद्धा युक्त बनना चाहिए। इसलिये ही भवोभव बोधि दिजीये। इस तरह श्री पार्श्वनाथ प्रभुजी को प्रार्थना की है।

- ऐहिक दुन्यवी किसी भी पदार्थ की आशा के बिना प्रतिदिन एक नोकारवाली विधिपूर्वक शुद्ध भाव से गिनो। सुन्दर और आल्हादक क्षयोपशम प्रगटेगा। आत्मा मे सम्यक्-ज्ञान की एक ज्योत प्रकट होगी। क्या प्रकट करना चाहते हो न ? सचमुच यह सम्यक्त्व प्रकट करनेवाला स्तवन है।

१८ जयवीयराय —

प्रार्थना सूत्र। जय बोलनी वीतराग की। जय होगी आत्मा की। वीतराग की जय वोलने से वीतरागता प्रगट होगी ही। इसलिए भवनिर्वेद मार्गानुसारिता और इष्ट फल की सिद्धि की माग की गई है। इसके लिए गुरुपूजन, परोपकार सद्गुरु योग अत्यत जरुरी है।

'नियाणु' धर्मफल की माग का विरोध किया गया है जैनशासन मे। परन्तु प्रत्येक भव मे नाथ का शरण। शरण मांगने मे नियाणु नही है। उसी ही शरण मे दुख क्षय, कर्मक्षय, समाधिमरण और बोधि प्राप्त होगे। और इसलिये ही जैनशासन सर्व मगलो मे रहा हुआ मागल्य है। सर्व कल्याणो का कारण और सर्व धर्मों मे मुख्य है।

१९ अरिहंत चेईयाण :—

अरिहत चैत्यो की आराधना कार्योत्सर्ग द्वारा की गई है। वदना, पूजन, सत्कार, सन्मान बोधिलाभ, निरुपसर्ग वगैरह के लिए और श्रद्धा, मेधा धृति-धारणा, अनुप्रेक्षा (भावना) इन सभी तत्वो मे वृध्धि पाता हुआ यह कायोत्सर्ग है। "गागर मे सागर मिला दिया है।"

नाथ के नाथ का स्तवन करने की यह भी एक उत्तम रीति है।

२०. कल्लाणकंदं :—

विशिष्ट प्राकृत भाषा में स्तुति है। प्रथम गाथा में श्री ऋषभदेव-शान्तिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीर प्रभुजी की स्तवना है। दूसरी में सूरवृंदवंदित सब जिनेश्वरो के पास मुक्ति मांगी गई है। तीसरे में जिनमत (आगम) को नमस्कार है। निर्वाणमार्ग का वरयान (रथ) कुवादी दर्पहर, बुधों का शरण तीनो जगत में मुख्य जिनमत है। चौथी स्तुति में वाग्-ईश्वरी श्री सरस्वतीदेवी की दीलहर स्तुति है। श्रुत देवताकी तरह देवी की प्रसन्नता माँगी गई है। जुइ-मुगरेका पुष्प, चाद, गायका दूध वर्फ जैसे श्वेतवर्णवाली है। कमलस्था, हस्त में सरोज कमल है। दूसरे हाथ में पुस्तकों की ग्रन्थमाला का समूह है। वह हमारे आत्मसुख के लिए प्रसन्न हो। स्तुति अच्छी है।

२१. संसारदावानल :—

याकिनी सूनु-सुविहित शिरोमणि, श्रीमद् हरिभद्रसूरीश्वर ने १४४४ ग्रथो की रचना की है। ४ ग्रंथ शेष रह गये थे। अतिम समय आ गया था। १४४४ ग्रन्थ पूर्ण किये थे। ऐसी किंवदन्ति है। भवविरहवर 'विरह' शब्द से उनकी यह कृति है। ऐसा अवश्य कहा जा सकता है। अति गंभीर अपितु सरल सस्कृत मे है। संस्कृत और प्राकृत दोनो भाषाओ में समजाया है।

प्रथम शासनपति भगवान श्री महावीरदेव की स्तुति । ससार महादावानल उसीका दाह प्राणियो को दु ख देता है । प्रभु नीर-जल है । सभोह, अज्ञान कर्मरज के ढेर लगे है । प्रभु उसके लिए पवन है । मायारूपी पृथ्वी विदारने के लिए तीक्ष्ण हल प्रभु श्री है । मेरुसम धीर वीर को वदन । दूसरो मे देव-देवेन्द्र वदित जिनवरो के चरणो मे शीर नँवाया है ।

वीर के आगम समुद्र का आदरपूर्वक सेवन की बात विशिष्ट विशेपणो से सूचित है । अगाध वोध, सुपदनीर, अविरत लहरी अहिंसा, चूलावेल, बडे पाठ रूप मणिआ से पार उतरना मुश्किल । घटमान करके समजना पडे ऐसे विशेपण है ।

'ससारदावानल' शब्द से शुरुआत करके सारे ससार का स्वरूप एक शब्द मे खडा कर दिया है । और चौथी मे उसका 'विरह व्यक्त किया है । क्या अद्भुत है न ? वानी सदोह देह हे श्रुतदेवता 'भवविरह'का सारभूत वरदान दे । ऐसा कहकर श्रुतज्ञान क्यो पढना उसका गूढार्थ भाव तद्न स्पष्ट कर दिया है ! आधी गाथा के एक ही विशेपण से कुदरत का सारा मौन दे दिया है । दृश्य चित्र खडा कर दिया है ।

२२ पुक्खरवरदीवड्ढे —

ढाई द्वीप के १५ क्षेत्रो के धर्म आदिकर तीर्थकरो की स्तवना करते है । धर्म के सार को प्राप्त कर कौन प्रमाद करेगा ? प्रश्न करके भव्यात्माओं के लिए वडा जय घोप किया है । धर्म भी कैसा ? अज्ञान अन्धकारनाशक । सुरेश्वर, नरेश्वरपूजित-मर्यादाधारक-मोहजाल को तोडनेवाला । जन्म-

वृद्धावस्था-मरण-शोक विनाशक, वहुत कल्याणकारक और सुखका वाहक । ऐसा सारभूत है धर्म ।

और आखरी गाथा में तो सारा शासन वहुत सा भरा पडा है । शासन सिध्ध है । किसी भी प्रमाण की आवश्यकता की जरुरत नही है । संयमवृद्धि उसी का बडा लक्षण है और ध्येय भी है । देवो में वडे मस्त–नाग–सुवर्ण–किन्नरादि कुमार । ऐसे भी सद्भाव से पूजते है । सारा लोक जिस में प्रतिष्ठित है । लोकस्थिति का आधार जिनमत है । यह जगत भी वही प्रभाव से–शासन से टीका हुआ है । त्रैलोक्यमय जगत में मृत्युलोक असुरलोक भी है ही । ऐसा धर्म वृद्धि करता रहो । शाश्वत्-विजयवंत वने रहो । क्रमशः वृद्धिवंत वनो ।

विश्वकल्याण की यह विशाल भावना है । भावकरुणा का प्रवाह है । उच्चकोटि की दयाका स्वादिष्ट झरणा है । छोटे अगर प्राप्त करे उसी का भी कल्याण हो जाय ।

२३. सिध्धाणं बुद्धाणं

लोकाग्रस्थित सर्व सिद्धो को नमस्कार हो सदैव । देवेंद्रों से पूजित महावीर देव को मस्तक नमाकर वंदन करता हूँ । संसारसागर से तैरने के लिए एक भाव नमस्कार वर्धमान जिन को किया हुआ समर्थ है । गिरनारगिरि पर दीक्षा–कैवल्य निर्वाण पानेवाला धर्मचक्रवर्ती अरिष्ट नैमिको में नमस्कार करता हूँ । अष्टापद पर ४–८–१०–२=२४ तीर्थंकरों को नमस्कार ।

त्याग किया है । १८ दोप रूप दुश्मनो का जिन्हो ने । परमार्थ को प्राप्त किये हुए मिध्य मुझे सिद्धि दो ।

२४ वेयावच्चगराण :–

सम्यग्दृष्टि आत्माओ का शाति ममाधि कारक वैयावृत्य कर देवताओ को याद करके उनके निमित्त कायोत्सर्ग करने मे आता है ।

२५ भगवानह –

इस मित्र और अरिहन भगवान शब्द मे अन्तर्गत पांचो परमेष्ठि की उपासना है ।

२६ सव्वस्सवि देवसिअ –

ठवणा-स्थापना सूत्र है । ओघा या चरवले पर मुष्टि को रखकर वोला जाता है । दिन या रात सम्बन्धक दुष्ट चिन्तवन भाषण-चेष्टा का मिथ्यादुष्कृत दिया जाता है ।

२७ इच्छामिठामि :–

दिन रात्री सम्बन्धक किये हुए दोषो के अतिचारो का प्रमार्जन होता है । कायिक वाचिक मानसिक भिन्न भिन्न बातो मे ! उत्सूत्र भगवान की आज्ञा से विरुद्ध वोलने मे उनमार्ग सेवन से, दुर्ध्यान अनाचार इत्यादि । श्रावक को योग्य नही वैसी । कर्तव्य मे ज्ञान-दर्शन चारित्राचारित्र (देशविरति) सूत्र-सामायिक,-तीन गुप्ति,-चार कषाय, पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत आदि के बारे मे, लगे हुए दोषो का मिथ्यादुष्कृत ।

२८. अतिचार गाथा :-

इस मे ८ गाथा पंचाचार की है। पंचाचार का वर्णन है। काउस्सग में इस आचार का चिन्तवन करना है। आचार विरुद्ध बना हो तो सावधान बनना है। इसलिये अतिचार गाथा कही जाती है। ये ८ गाथाएँ जीवन का आधार है। इसलिए ठीक से विस्तार से समजना चाहिए।

१ ज्ञानाचार :-

काल जो नियत काल हो तब सूत्रादि पठन करना।

विनय—

गुरु का ज्ञानी का विनय-वंदनादि से। विनय के विना विद्या नही।

बहुमान—

हृदय का प्रेम ज्ञानी और गुरु पर तथा ज्ञानादि के साधनो पर।

उपधान—

विशिष्ट तप द्वारा विधान किये हुए सूत्रों का अभ्यास।

अनिन्हवणे —

जिस गुरुसे शिक्षा प्राप्त की हो उसका नाम जाति न छीपाना।

व्यंजन —

शब्दका जैसा हो वैसा उच्चार!

अर्थ —

सच्चा स्पष्ट अर्थ करना। और उसका उपयोग रखना।

तदुभय —

शब्द-अर्थ दोनोकी मर्यादा की संभाल रखना!

२ दर्शनाचार :-

निस्संकिअ —

देव-गुरु-धर्म और वीतराग की वानी पर पूरा पक्का विश्वास ।

निक्कंखिअ —

किसी भी अन्य मिथ्या धर्मकी इच्छा न करना ।

निव्वितिगिच्छा—

पूज्य साधु साध्वीजी के मलिन-वस्त्र गात्र देखकर दुर्गंच्छा न करनी चाहिए । त्यागीओका वैसा आचार ही होता है ।

अमूढदिट्ठि—

मिथ्याधर्म का कोई चमत्कार देखकर मोहित न हो जाना

उववूह—

उपवृंहण-सम्यग्दृष्टि-साधर्मिकत्ताके गुणोकी प्रशंसा करना ।

थिरीकरण—

तथा प्रकार के संयोगों में धर्म से चलित होते हुए चलितको बाहर की मदद और धर्म की गहरी समज देकर धर्म में स्थिर करना चाहिए । यह बड़ा गुण है ।

वात्सल्य—

साधर्मिक प्रत्येका आंतरबाह्य धर्म प्रेम ।

प्रभावना—

बहुत से आत्मा धर्माभिमुख हो जाय वैसी प्रवृति, जिससे शुद्ध सनातन जैन धर्मकी सब प्रशंसा करे ।

३. चारित्राचार –

पणिहाणजोगजुत्तो-प्रणिधान–पारिभापिक-टेकनीकल शब्द है। जहाँ तक ध्येय निश्चित न हुआ है, यहाँ तक उस वस्तुमे मन–वचन कायासे एकाग्रता नहीं पैदा होती है। आचारोंका–संयमोंका पालन–आत्माको अनंत सुख देने वाली मुक्ति के लिए है। यह ध्येय है। बादमें पाँच समिति और तीन गुप्तियोंका पालन सुकर बन जाता है। अष्ट प्रवचन माताके परमानंददायी परम आशीर्वाद आत्मा पर उतरते हैं।

तपाचार—

कर्म निकाचित अति दुःख देते है। उस तप का बहुमान करना चाहिए। बाह्याभ्यंतर बारहों प्रकारके अग्लानत्व से मनके उत्साह से करना चाहिए। अणाजीवी किसी भी सांसारिक पदार्थ की इच्छा बिना किया हुआ 'तप' वोही तप कहलाता है। मान कीर्ति, लालच ये ससार में भ्रमण कराते है। संसार को बढाने वाले क्रूर पदार्थ है। जो गणवेषधारी साधुओं को भी चक्कर में डाल देते हैं।

वीर्याचार—

बल और वीर्य को गोपाव्ये बिना धर्म करना है। वह भी जो तीर्थंकर देवोने बताया है। शास्त्रोक्त विधि विधानके अनुसार। बल शारीरिक है। वीर्य आत्मा का उत्साह है। दोनों का यथाशक्ति धर्म आराधना में उपयोग करना वहीं वीर्याचार है।

२९. सुगुरुवन्दन :—

यह द्वादशावर्त वन्दन के लिए सूत्र है। गुरु की महत्ता जैन शासन में विशिष्ट स्थान सूचित करता है। विनय गुण

की विविधता बतलाना है। हे क्षमाश्रमण। मैं आपश्री को वन्दन करना चाहता हूँ। ऐसे जाहिर करके गुरु आज्ञा प्राप्त करता है। जैन शासन मे आज्ञा प्रधान है। वही उसकी बडी महत्ता है। वही उसीकी परमाथ से भग विशिष्ट लक्षण है। यथाशक्ति वन्दन करेगे परन्तु पाप व्यापार का त्याग करके। मन की शुद्धिके विना धर्म कैसा ?

गुरुजी को वन्दन साढे तीन हाथ की दूरी पर मे करनेका विधि है। स्वय नजदीक जाना चाहता है। गुरु पाद स्पर्श करना है। इसलिए 'अणुजाणह' कहकर अनुज्ञा प्राप्त करता है। पैरो को मस्तक से स्पर्श करता है। ऐसा करते समय गुरुजी को यदि थोडी भी भी ग्लानि हो गई हो। तो उसकी क्षमायाचना चाहता है।

बाद मे पूछता हैं। क्या आपका दिन समाधिपूर्वक व्यतीत हुआ ? गुरुने कहा वैसा ही है। आपकी सयमयात्रा ? गुरु सामने से पूछते है। 'तुब्भं पि वट्टए' आपको भी वैसा हो है न ? फिरसे शिष्य पूछता है। इन्द्रियोने—नोइन्द्रियो मे (मन) से क्या आप अबाधित है न ? वैसे ही है।

अब प्रक्रिया शुरू होती है। आवश्यक क्रियामें चरण-सित्तरी-करण सित्तरी मे जो अतिचार लगे हो इससे शिष्य पीछे हट जाता है। दिन मे गुरु सम्बन्धी ३३ आशातनाओ मे जो कुछ हुआ हो उस प्रतिक्रमता है। निन्दता है। गरहता है। निन्दा आत्मसाक्षि की—गर्हा गुरु साक्षि मे।

३० आलोचना सूत्र –

रात या दिन सम्बन्धि-कायिक वाचिक-मानसिक दोषों का मिथ्याकार।

३१. सात लक्ष :–

८४ लक्ष जीवयोनि मे जिस किसी को स्वयं मारा हो, या दूसरों के द्वारा हत्या करायी हो, या हत्या करने वाले को अच्छा माना हो उसका मिथ्याकार ।

३२ अठारह पापस्थानक :–

अठारह पापस्थानकोमें मे जो पाप का सेवन किया हो अन्य द्वारा सेवन करवाया हो, सेवन करने वाले को अच्छा माना हो, उसका मिथ्याकार । वही पापसे पीछे हठ जाता है । 'आत्मा' ।

३३. सव्वस्सवि :–

प्रथम के प्रतिक्रमण स्थापन सूत्र के अर्थानुसार गुरुका आदेश मांगने में आता है ।

३४. वंदित्तु :–

सारे श्रावक आचार का वर्णन है । भूल का पश्चाताप है । बारह व्रतों का व्रतों मे लगता अतिचार महों का स्पष्टीकरण है । वंदित्तु सव्वसिद्धेसे प्रारंभ किया, अजायबी का काम किया है । सारे धर्मकर्तव्य का लक्ष्य–ध्येय सिद्धावस्था है । वह स्पष्ट बता दिया है ।

ज्ञान–दर्शन–चारित्र्य ये तीनों का बना हुआ मोक्षमार्ग है । यह बात दूसरी गाथा में स्पष्ट की गई है । गृहस्थावास पापयुक्त बहुत आरभोसे हिंसात्मक कार्यों से भरा है । तीसरी गाथा का यह ध्वनि है । चौथी गाथा में अप्रशस्त कषाय और रागद्वेष पाप बंध के कादण है । उसी का वर्णन है । छठवीं गाथामें सम्यक्त्व के अतिचारों की आलोचना है । कुलिंगीका

परिचय मात्र निषेध है। सातवीं में स्व के लिए परके लिए या उभय के लिए भोजन बनाना पडता है। उसी की निंदा की गई है।

ससार की कोई भी क्रिया चाहे इतनी जीवनम आवश्यक हो अपितु वह पाप क्रिया ही है। यह एक समझने के योग्य महत्त्वकी जरूरी बात है। आवश्यक है इसलिए पाप नहीं ऐसा नहीं समझना। इसके बिना किये नहीं चलना है। ऐसा करना पडता है।

यह एक अलग बात है। पाप क्रिया पाप ही है। नहीं तो गुडागीरी-लूट-खसोट करनेवाली व्यक्तियों को ये अच्छी लगती है। तो उन्हे क्या गुन्हा नहीं समझना चाहिए? जैन शासन कहता है, ८ वर्ष की उम्र के बाद ससार मे रहना पडना है यह धर्म की कठिनाई है। इस बात मे श्रद्धा रखनेवाला प्रत्येक क्षण डरता रहे उस मे क्या आश्चर्य? साधुत्व का तलसाट जीवत रहे न? उस मे क्या आश्चर्य है?

बाद मे बाह्य ग्रन्थों मे अतिचारों की आलोचना है। उस मे प्रशस्त-अप्रशस्त के भेद किये है। 'अप्पसत्थेहिं' शब्द है। ससार के स्वार्थ के लिए जो किसी दोष का सेवन किया है उसी की आलोचना है। धर्मकार्य मे इसरके आत्मकल्याण की आलोचना मे विवेकबुद्धि से शास्त्रीय मर्यादा मे रहकर-गृहस्थ प्रायोग्य कीये हुए कर्म की आलोचना नहीं है। किसी साधी स्त्री के शील की रक्षा के लिए गृहस्थों को क्रोध या हिंसा भी करनी पडे न? इस मे भी माया-रीति-प्रशसा की भावना न होनी चाहिए। रहस्यपूर्ण बात है। धर्म सूक्ष्म बुद्धि की विचारधारा की अपेक्षा रखता ही है।

सुहिएसु-दुहिएसु गाथा में अनुकंपादान भी रागद्वेष की वृत्ति को छोडकर करने के लिए सूचन आकर्षक रीति से दिया गया है। वैसी ही चरणकरण युक्त साधु-महात्माओं को, साधन होने पर भी नहि प्रतिलाभ में भी दोप बताया गया है। यह सचमुच कर्तव्य की सीधी सूझ करवाता है। यह लोक या परलोकका फल धर्म करके, पाने की इच्छा नही करना। तो फिर मॉगने की तो वात ही कहॉ ? सुख में लम्वे समय तक जीन्दा रहने की इच्छा। दुःख में मृत्यु की इच्छा कामोपभोगो की इच्छा नही करनी चाहिए।

सम्मदिट्ठिजीवो—गाथा मे सुन्दर स्पष्टता की गई है। ससार मे गृहस्थआश्रम मे रहे हुए आत्मा को विना इच्छा पाप करना पडता है। परंतु उसी का पाप-वंधन-शिथिल और कमजोर मालूम होता है। क्यो कि दिल में क्रूर परिणाम नहीं है। परंतु कोमलता मृदु है। जिस की दृष्टि सच्ची बन गइ है, वे ऐसे ही होते है। देह और आत्मा के भेद समजनेवाले पाप से दूर ही रहने के लिये प्रयत्न करे।

पाप ही शाप है। पाप ही दुःख और पीड़ा है। परको पीडा उत्पन्न करना ही पाप है। ससार से मुक्ति पावे और मुकित मिले, वही ध्येय है। इस के लिए ही प्रयत्न। प्रयत्न भी जिन आज्ञाके अनुसार। रागद्वेष सर्जित आठें कर्मों को आलोचना और निदासे नष्ट करता है। जिस तरह पेटके विषको वैद्य मंत्रो से नष्ट कर देता है।

चिरसचित पापो का नाश करने वाली, लक्ष भवों को रूकावट डालनेवाली २४ जिनेश्वर देवोमे से प्रटक हूओ कथाओंमें मेरे दिन व्यतीत हों। कैसी सुन्दर भावना !

प्रतिक्रमण किस लिए ?

१ जिसकी न करने की फरमाइस की गई हो वैसे कृत्य किये गये हो इसलिए।

२ करने योग्य कर्तव्योका पालन न किया हो इसलिए

३ जिनेश्वरोके वचनो म अश्रद्धा की हो इसलिए।

४ जिनेश्वर सवज्ञ देवो के वचनोसे विपरीत उपदेश किया हो इसके लिए। ये चारो से बचे वे चारो मे न भ्रमित हो। सदाचार इनके विचारमे आवे। भाग्य का चार भी ऊँचे बने।

अन्तमे सर्व जीवो की क्षमापना करते है। सर्व जीवो की क्षमा याचना मागते है। सर्व जीवो के प्रति मैत्रीभाव धारण करते हैं। वैर कलह को भूल जाते हैं। मन-वचन कायामे प्रतिक्रमण करते हुए—पापो से पीछे हठ करते हुए पवित्र हुए आत्माएँ २४ जिनेश्वरो को वन्दना करते है।

३५. अब्भुट्ठिओमि :–

गुरुखामणा सूत्र ! विनय विवेककी बडी उच्च भूमिका। खान-पान-वैयावच्च-भक्ति-आलाप-सलाप-उच्चासन-समानन, बीच मे बोलने से जो कुछ अविनय किया हो, गुरु को ज्ञान है, शिष्य को ज्ञान नहीं है। उस का मिथ्या दुष्कृत दिया जाता है।

३६ आयरिअउवज्झाए –

आचार्य-उपाध्याय-शिष्य-सार्धमिक-कुल गुणो के साथ किये हुए कषायोकी क्षमा याचन होती है। गरल श्री श्रमण

संघको मस्तक पर अंजलि करके क्षमायाचना करते हैं। भावपूर्वक धर्म में अपने चित्तको निरोध करके सर्व जीवराशि की क्षमा याचना माँगते हैं।

३७ विशाल लोचन—

भगवत महावीर देवका मुखकमल आपको पवित्र करो ! देव मेरुगिरि पर परमात्माका अभिषेक करते हैं। आनन्द में मस्त बन जाते हैं। स्वर्ग के सुख को भी तृणवत्त समजते हैं। वे जिनेश्वर सुबह में आप के कल्याण के लिए हों। अपूर्व चन्द्र की कल्पनामें तो सूत्रकारने बडी भव्यता ला दी है। चन्द्र में (चन्द्र के विमान में) हिरन का कलंक, आगम कलंक रहित है। आगम सदैव पूर्ण है। चन्द्र को राहु निगल जाता है। प्रभुश्रीका आगम तो कुतर्करुप राहु का ही ग्रहण करता है। इसलिए ही अपूर्व चन्द्र और सदैव उदयित आगम वह जिनचन्द्रभाषित। पंडित जनोने प्रणाम किया है जिसे ऐसे आगम को सुवहमें प्रणमता हूँ !

३८. नमोऽस्तु वर्धमानाय—

कर्मों के विजयों से मुक्ति पाने वाले। कुतीर्थिको को परोक्ष, वर्धमान स्वामी को नमस्कार किया है। देव रचित, मक्खन जैसे मुलायम, कमलों पर प्रभुश्री के पदसरोज महती शोभाको धारण करते है। वे जिनेश्वर देव हमारे कल्याण के लिए हों।

वाणी के विस्तार द्वारा तुष्टि की इच्छा की है। तुष्टि तो वीतरागकी वानी ही दे सकती है न ? जिनेश्वर के मुख से

कइयोंकी नामावली है। जिन के नाम स्मरण से पापके समूहोंका नाश होता है।

वेसे ही महासतीओंकी नामावली दी गई है। अकलंक शील की स्वामिनीओंकी यशोगाथाअें तीनो जगत में फैल जाए यह स्वाभाविक है।

एक आश्चर्य आँखों के सामने खडा होता है। क्या पुरुष या स्त्री, प्रत्येक के प्रति समभावसे निरीक्षण करता यह शासन है। व्यवहार से शारीरिक-मानसिक-सामाजिक हितों को लक्ष मे रखकर जो कल्याणकारक विवान किये हों उसका आचरण करने में दोनों का कल्याण है। पू० साधु महात्मा भी इस सज्झाय का स्मरण प्रति प्रभात में करते हैं। पंचमहाव्रतधारी महात्मा गृहस्थ सती स्त्रीओंका नाम स्मरण करके उनके 'सतीत्व' गुण को वहुमान करने हैं। किसी का भी आत्मकल्याण कैसे हो सके? वही जैन शासन का विहित मार्ग है।

४३. सकलतीर्थ—

गुजराती भाषा में भावोत्पादक यह एक वडी स्तवना है। बारहो देवलोक के, ग्रैवेयक और अनुत्तर के, भवनपतिके-चैत्यों की और शाश्वता जिन विवो की संख्या की गिन्ती करके भावपूर्वक वंदना होती है। ज्योतिषि और व्यतरोंमें वसे हुए जिनबिंबोको भी वंदना की गई है। शाश्वत चार नाम ऋषभ-चन्द्रानन-वारिषेण और वर्धमानका उल्लेख किया गया है। संमेतशिखरके वीस जिनेश्वर अष्टापदके चौबीस, विमलाचल-गिरनार-आबु-शखेश्वर केशरीयाजी-तारगा के अजितनाथ,

गहारापन है। पूर्व पुरुषोंकी कृतियों में अजव कृतियाँ अवश्य होती है।

दूसरे श्लोक में नाम-आकृति-द्रव्य-भाव चारों निक्षेपोंकी कोई भी क्षेत्र और कालमें उपस्थिति वतलाकर कलात्मक रीति से अर्हत् प्रभु की सुन्दर स्तुति की है। वाद के वाईस (२२) श्लोकों में श्री आदीश्वर भगवंत से लेकर पार्श्वनाथ भगवान तक वाईस (२२) तीर्थकरोंकी स्तुति है। भगवंत महावीर देव के पहले चार और वाद एक ऐसे पाँच (५) श्लोकों से स्तुति की गइ है। बीचमे एक श्लोकसे पृथ्वी परके शाश्वत और अशाश्वत भवनपतिओंके वैमानिकों के मनुष्य कृतों के चैत्यों की स्तवना की गई है। आखरी दोनोंमेंसे एकमे देवका स्वरूप वतलाया गया है। भवोंभव के पापों को नष्ट करनेवाले सिद्ध वधूवक्षस्थल अलंकार। अठारह (१८) दोषरुपी हस्ति विदारक शेर। वीतराग भगवन्त हैं। आखरीमें अष्टापद गजपद संमेतशिखर-गिरनार-शत्रुंजय-वैभारगिरि मेरु आवु चित्रकुट पर आये हुए ऋषभादि जिनेश्वर आपका मंगल करो। वैसे आशीर्वाद दिये है।

२. अजितशान्ति—

अजितनाथ और शान्ति नाथकी स्तवना है। हे पुरुषो! यदि दुःख दूर करना हो (हमेशा के) और सुख के मार्ग की खोज करते हों, तो अभय देनेवाले अजितनाथ-शान्तिनाथका भावपूर्वक शरण स्वीकृति कर लो। 'भाव' शब्दमें बहुत कह दिया है। प्रत्येक गाथाके अंतमें रागका नाम दिया गया है। देवसुंदरियाँ देवाधिदेवको वन्दन करते आती है न? वहाँ उनके शृंगारका निर्दोष वर्णन किया गया है, लेकिन सुन्दर वर्णन

किया गया है। बीलकुल स्वाभाविक लगे वैसा निनिदार। ग्यारहवी (११) गाथामें शान्तिनाथ भगवन्त की चक्रवर्तित्वकी ऋद्धिका वर्णन है। 'छत्त चामर'-गाथामें तीर्थ करो के लक्षणका वर्णन है। आखरी गाथा बोधरूप है। क्या आप की इच्छा परमपद प्राप्त करने की है ? सुविस्तृत स्वाभाविक गौरवपूर्ण आत्मोन्नतिकारक कीर्ति की कामना है ? तीनों लोकके उद्धारमें समथ जिन वचनों का आदर करो। आदर करो।

३. बृहद् शान्ति—

बडी शान्ति देनेवाली है। मान अभिमानका नाश करनेवाली है। विश्वशान्तिका ढंढेरा है। 'ब्रह्मलोकस्य शान्तिर्भवतु' में तो चौदह मुन्यलोक के जीवों के प्रति मैत्रीभाव उठा कर दिया है। पाप मुक्त बनानेकी भावना गर्भित रूप में आयी हुई है। भव्यात्माओंके उद्बोधन से शुरु होती है। लायक आत्माको भी निमंत्रण दिया जाता है न ? भक्त जनोंकी शान्ति के लिए आशिष दिये हैं। आरोग्य श्री धृति-मति-कीर्ति ये सब अपने आप ही आकृष्ट होकर आ जाती है न ? इन्द्र के मेरु पर्वत पे अरिहंतोंके अभिषेकका अनुकरण करते है। चौबीस (२४) जिन देवों के नाम देकर शांति याचना की है। वर्धमानान्ता जिना शान्ता शान्तिकरा भवतु' स्वाहा-सचमुच जो स्वयं राग-द्वेष मोहसे शांत नहीं बने है व दूसरोंको क्या शान्ति दे सक ? सोलह (१६) विद्यादेवीयों को भी पवित्र कार्यों मे रक्षण के लिये निमंत्रण दिया गया है। नवग्रहों-चार लोकपालोकी प्रीति की इच्छा अपेक्षित की है। सर्व-सम्बन्धी रोहीओ मे भी चतुर्विध सपर्व-व्याधि दुःख-दौर्भाग्य के उपशमनकी इच्छा की है। नृपतिओं-

का अक्षय भंडार–अन्नादि की इच्छा करने में प्रजा के हित की चिन्ता व्यक्त की है। शान्ति समाधि पूर्वक धर्म कर सके वोही कल्याण प्रद है न ? बादमें शान्तिनाथ भगवंत की स्तुति की गई है।

"श्री श्रमणसंघस्य शान्तिर्भवतु" पदमें विश्व कल्याण मार्ग में हृदय का गहरा भाव स्पष्ट दीखाई पडता है। और तो राजा अधिकारी शान्तिमें हो तो प्रजा भी सुखी हो सकती है, यह एक स्पष्ट बात है। शांतिकलश की सुन्दर विधि भी पेश की गई है।

शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवंतु, भूतगणाः।
दोषा प्रयांतु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोक. ॥

बडे आश्चर्य और अजायबी से भरी हुई यह गाथा है। अल्प क्षयोपशम की यह छोटी कलमसे भी खास कर के दुधी पोइन्टसे २५० पन्नो की एक पुस्तिका बन जाय ? अपितु उसी में बहता हुआ निर्मल भाव नदी के वेग समान वह रहा है। हम उस का अवलोकन करे। चार पद बडी चालाकी से संकलित हुए हैं। पूर्वानुपूर्वी–पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वीसे समर्थ क्षयोपशम विशद भाव खडा कर सके।

सर्वजगत का कल्याण हो। शिव या कल्याण मुक्ति में है न ? अजन्मा बने बिना सर्वतोमुखी अनंत कल्याण की प्राप्ति न हो सके। अजन्मा बनने के लिए हर प्राणी को पर के हितमें लग जाना चाहिए। इस लिए 'हित' किसे कहते हैं, उसी की पक्की समज होनी चाहिए। परंतु हित करने के लिए

प्रथम अपने मे स्थित अनादि काल के दोषो को दुर करना पडेगा ? छोटे-बडे सूक्ष्म-बादर सब को तिलाजलि दे ही देना है। बादमे अन्यमे रहे हुओ को (स्थितो को) दुर करने का प्रयत्न करना पडेगा। प्रयत्न करने पर भी माननेवाला अगर सुधार न करे तो ? मध्यस्थ भावना मे रमण करना पडेगा। सव्वे जीवा कम्मवस 'सर्वजीव कर्मवश है' सूत्र याद करके मन को वश मे करना पडेगा। इन सभी प्रक्रियाओमे से बाहर निकलनेवाले अवश्य ही बोलेंगे। 'सर्वत्र सुखी भवतु लोक' उस आत्मा की भावना सही। सक्षिप्त-नाभिमे से निकली हुई और तो वचन म दरिद्रता क्यों ? मुंह मीठ्ठु बनने का मौका लीजिए जी।

आखरी दो गाथाओ मे परमात्मपूजा से प्रकट होता मनकी प्रसन्नता (आत्मभाव) दीखलाई गई है। 'मागल्य' शब्द की विशिष्टता शासन अतर्गत है। अरिहतकी आज्ञा इसी की गहरापन रहस्य-पचाचार का पालन-साधक और साधनो को आर अभिरुचि इन सबो की रक्षा ये सब बहुत कुछ 'शासन' के भीतर भरा पडा है। इसलिए ही जैन शासन सर्व कल्याण का साधन है। सर्व धर्मो मे मुख्य है। इसलिए ही उस की जय मे-अस्तित्व मे विश्व का शान्तिपूर्ण अस्तित्व टीक रहना है।

४. श्रावक के बडे अतिचार :—

सचमुच शासन सानुकूल द्रव्य क्षेत्रकाल भाव की विचार पद्धति यहाँ देखने मे आती है। विषम काल मे धर्मविमुख हुए जीवसमूह भी पापो से बचे और सरलतासे पाप की कम दशा हो। ऐसी ही यह गुर्जरभाषा मे रचना है। सम्यक्त्व के

साथ बारह व्रतों मे लगते दोपों का सरल स्पष्टीकरण हैं। तदुपरांत संलेखना बारह प्रकार का तप-वीर्याचार-करणीय-अकरणीय-भक्ष्य-अभक्ष्य-अठारह पापस्थानक-करने योग्य न करने से-नही करने योग्य करने से-अश्रद्धा से-विपरीत प्ररुपत्वसे लगे हुए सब दोपों को क्रमशः याद करके उनका प्रमार्जन करने का यह एक इस काल के लिए विशेपत: अनुमोदनीय साधन है।

५. साधुसंघ के लिए पगाम सज्झाय :—

श्रावको के वदिता के स्थान पर साधुओ के लिए यह दिनभर के दोपो का दिव्य प्रमार्जन है। ५ महाव्रत, ५ समितियाँ. ३ गुप्तियाँ-षट्काय रक्षा, ६ लेश्याँए, ८ मद, ६ ब्रह्मचर्य की गुप्ति, १० साधु धर्म की पक्की याद दीलाता है। तदुपरांत रागद्वेप, मन-वचन काथा का योगदंड, ३ शल्य, ३ ग।रव, ४ संज्ञा के आत्मा पर के वल का भी ख्याल दिया गया है। ५ आत्मघातक त्रियाएँ शब्द-रस-रुप-गंध स्पर्श का तांडव। आर्तरौद्रध्यान की दुष्टता, धर्म-शुकल ध्यान की तारकता।

वगैरहों के द्वारा बहुतों से बहुत दोपों का नष्ट करने का सूचन है। चौबीस जिनेश्वरो को नमस्कार किये है। प्रवचन-शासन की महा विशेषणो से स्तुति की गई है। सच्चं अणुत्तरं सव्वदुक्ख पहीणमग्गं। बादमे प्रतिज्ञा आती है। आराधना के लिए खडा हूँ। विराधनासे रुक जाता हूँ। असंजम को पहचानकर सयम का स्वीकार करता हूँ। वैसे मिथ्यात्व अब्रह्म-अज्ञान वगैरहों को पहचानकर सम्यकत्व-ब्रह्मचर्य-ज्ञानादि की उपासना में रत बन जाता है। आंतर जागृति का प्रतीक सुन्दर शब्दों में, लिखा है।

समणोहं संजयविरय पडिहय पच्चक्खाय पाव कम्मे अनिआणो, दिट्ठिसंपन्नो मायामोस विवज्जिओ।

मैं श्रमण हूँ। क्या रागद्वेष को जीतनेवाला श्रमण बन सके न? उसके लिए सर्व विरति वही अमोघ उपाय न? पुराने कर्मो का नाश करे। नये को रुकावट, पच्चक्खाण करे। 'नियाणु' तो करेगा नही। सवा रुपये मे सवा लाख का हीरा कौन बेचेगा? जिनेश्वरो की प्रसन्नता प्राप्त करके सम्यग्दष्टि बन पायेगा। मायामृषाका तो अस्तित्व ही न हो। ऐसे महानुभाव महात्मा ढाई द्वीपमे हो उनको वदन करने की उर्मि प्रकट होती ही है। क्षमापन और मैत्री जगत के जीवो के साथ होते ही है। यह है जिनेश्वरो का सही भक्त।

६ श्रमणसूत्र :—

श्रावक भी भावसे कया न सुने? साधुत्व के अभिलाषी तो है न? सूत्र तो सूत्र ही है। पांचो महाव्रतो की और छवां रात्रिभोजन की-विरमण की भव्य सकलना, उसके रक्षण के लिए नववाड की रक्षा की सावधानी, अगर किसान खेतके वाड की रक्षा न करे तो खेत सफाचट ही हो जाय न? पशुपक्षी और मनुष्य भी उसका दुरुपयोग करे। यहाँ भी रागद्वष-मोह और चार कषाय। और ही और शासन के प्रत्यनीको आत्मा के धर्मक्षेत्र को कुतर खाय वह है स्वाभाविक न? छह आवश्यको की तरणतारणता भगवत शब्द से स्पष्ट की गई है। अगबाह्य और अगप्रविष्ट आगम शास्त्रो की भी सकलना भक्ति बहुमान पूर्वक की गई है। बारह अगो-द्वादशांगीओ की भी आखरी आलावेमे भावपूर्वक भक्ति है।

प्रारंभमें तीर्थंकर-तीर्थ-अतीर्थ सिद्ध-तीर्थसिद्ध ऋषि-महर्षि और ज्ञानको वंदना करते है। यह महामंगल है। जैनशासन के बडे दिलकी साक्षी है। निष्पक्षपात विधानों की आकर्षक भूमिका है। सारे सूत्रमें पापभीरुता, लिए हुए व्रतों की तीव्र सावधानी, दोषोंसे बचने की दिलचस्पी। वह भी बहुत चेतना के साथ। **सचमुच शूरवीर का यह संयम का पथ है।**

५ महाव्रत, ६ रात्रिभोजन विरमण। छहों का द्रव्यक्षेत्र काल भावसे स्पष्टता की गई है। मन-वचन-कायासे-करना या करवाने का या अनुमोदन देने का प्रसंगमे पीछेहठ, प्रतिक्रमण निंदा-गर्हा की है। केवली आगम धर्म के लक्षण बताये गये हैं। अहिंसा-सत्य, विनय क्षमा-निष्कंचनता-उपशम-ब्रह्मचर्य-भिक्षावृत्ति वही भी शरीर के पोषण देने के लिए ही, कृत-कारित नही।

पूर्वमें अज्ञानदशा मे-बोध न होने से-प्रमाद से-मोहसे-भारवसे-चार कषायोंसे-पांचों इन्द्रियों के असंयमसे-सुख की लालसासे किये हुए-हिंसा-जूठ-चोरी-अब्रह्म-परिग्रह-रात्रि भोजन सबो का त्रिविधियोंसे मिथ्यादुष्कृतम् देते हैं।

वर्तमानकाल के लिए सावधान बन जाता है। भविष्यमें ऐसा कोइ न बने। इसके लिए पच्चक्खाण प्रतिज्ञा है। वह भी रजीस्टर करता है। क्यों कि अरिहंत-सिद्ध-साधु-इन्द्र चन्द्र-सूर्यादि और अपने आत्मा की साक्षीसे लेता है।

इस तरह

संजयविरय पडिहय पच्चकखाय पावकम्मे'

वन दिन रात-सोते या जागते-अकेला हो या सभास्थित हो पाच अव्रतो और रात्रिभोजन से रुकावट में ही अपना हित-सुख-क्षेम मानता है। क्यो की अन्य जीवो को भी हित सुख क्षेम के लिए बनते है। प्राण भूत-जीव-सत्व-चारो कक्षा के जीवो की क्षमा याचना ही गई है। इन जीवो को अदु ख-अशोक-अपीडा के लिए यह प्रवृति निर्धारित है।

यह मार्ग महापुरुषो के द्वारा आचरित है। परमर्षिओने प्रकाजित किया ह। इस के लिए प्रशस्त है। दु ख-कर्मका क्षय करता है। मोक्ष वोधिलाभ और मसार के पारको देने वाला है। इमके वाद

५ + १ = ६ उसका अतिक्रम कैसा होता है। और किस तरर रक्षण होता है। यह स्पष्ट बताया गया हे। अप्रशस्त योगोसे प्राणातिपात विरयण महाव्रत का, तीव्रराम द्वेपसे मृपावाद विरमण महाव्रत का, अवग्रह की विन याचनासे (मालिकसे पूछकर मकानादि का उपयोग होता है) अदत्त विरमण महाव्रत का शब्द-रूप-रस-गध-स्पर्शसे मैथुन विरनण महाव्रत का इच्छा-मूर्च्छा-काक्षा-लोभसे परिग्रह महाव्रतोका, अतिमात्रा आहार से या सूर्यास्त के समय आहार आदिसे छठठे व्रतका अतिक्रम हो गया हो ता यह सवो का परिमार्जन कर डालता है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना से। आलय-विहार आदि की समितियाँ से युक्त रक्षित बनकर।

बाद के ग्यारह ढाचे महत्त्व के हैं।

(१) सावद्य-मिथ्यात्व और अज्ञान का त्याग। अनवद्य सम्यक्त्व और ज्ञान का ग्रहण।

(२) रागद्वेष-आर्तरौद्र ध्यान का त्याग। ईन दो प्रकार के चारित्र धर्म और धर्मशुक्लध्यान दत्तचित्तता।

(३) कृष्ण—नील—कापोतलेश्या त्याग। तेजो—पद्म—शुक्ल का स्वीकार।

(४) दु:खशैय्या—४ संज्ञा—४ कषाय ४ रोंका परिहार। सुखशैय्या—४ संवर समाधि ४ रोका स्वीकार। शरीर को आरामकर वस्तुओं का त्याग था दु:खशय्या समजना।

(५) कामदोष—५ परिग्रह—५ से दुर रहना—५ (पांचों) वो इन्द्रियों पर कावू—५ प्रकारके सद्ध्यानका अमल

(६) ६ जीवनिकाय वध - ६ अप्रशस्त भाषासे भागते रहना-अभ्यंतर - ६ वाह्य ६ प्रकार के तपमें लीन बनना।

(७) सात भयस्थान, ७ विभंगज्ञानके प्रकारका परिवर्जन। पिंडेषणा—पाणेषणा इत्यादि। सात अध्ययनोंको अधीन रहना।

(८) आठ मदस्थान आठ कर्म के बंधसे वन्धा नहीं जाना। आठ प्रवचन माताके ही शरण रहना।

(९) नवपापनिदान, संसारस्थ नव प्रकारके जीवोंसे दुर नव ब्रह्मचर्य वाडका पालन रक्षण करनेमें शूर।

(१०) उपघातदश—असंवर और संक्लेश का नाश करने का सत्य समाधिस्थान दशों का रक्षण करना।

(११) ग्यारह तरी तेतीस की अंकनवाली आशातना का वर्जन ही सच्ची उपसपद है।

इस तरह तीन दडरहित-त्रिकरण शुध्ध-तीन शल्य रहित, तीनो प्रकारो से प्रतिक्रमता आत्मा पाचो महाव्रतो के रक्षा की प्रतिज्ञा करता है ।

ईन महाव्रतो के उच्चरण से कैसे महानगुण निष्पन्न होते है ? स्थिरता-तीनो शल्यो को उद्धार-धृतिबल भावशुध्धि-प्रशस्तध्यान मे उपयोग इत्यादि प्राप्त होते है । गुणकीर्तन-दुखक्षय-कर्मक्षय-मोक्ष-बोधिलाभ और ससार से उत्तराण के लिए ही होता है ।

अगबाह्य-उत्कालिक सूत्रो के थोडे नाम-दशवैकालिक-छोटे कल्पसूत्र महाकल्पसूत्र-ओपपातिक-रायपसेणीय-जीवाभिगम-तदुलवैतालिय-गणिविज्जा-झाणविभत्ति, मरणविभत्ति, मलेहणा-सूत्र, वीतरागसूत्र, आउर पच्चकखाण-महा पच्चक्खाण इत्यादि ।

अगबाह्य-कालिक सूत्रो के नाम-उत्तराध्ययन-निशीथ-महानिशीथ-जबूद्वीप-सूर्य-चद्र-द्वीपसागर ये चारे पन्नति, अरुण-वरुण-गरुल तीनो का उत्पात-आशीविष-दृष्टि विष-चारण-महासुमिण इन चारो की भावनाएँ इत्यादि ।

द्वादशागी आचाराग-सूयडाग-स्थानाग-समवायाग-विवाह्-पन्नती (भगवती) ज्ञाताधर्मकथा-उपासक-अतगड-अणुत्तरो-ववाइ ये दसाएं प्रश्नव्याकरण-विपाकसूत्र-दृष्टिवाद ।

ईस तरह सूत्रो का अधिकार अति सक्षेप मे पेश । हुए सादर मस्तक नमता है ।

१०७ १३ 'बोल स्थापनाचार्य के'

पूज्य-मुनिवर आदि स्थापनाचार्य का पडिलेहण करते बोल बोलते है । गुरुगुण गण का भावोत्पादक वर्णन २"

मुख्य स्वरुप के धारण गुरु, ज्ञानमय-दर्शनमय-चारित्रमय-शुद्ध श्रद्धामय-शुद्ध प्ररुपणामय-शुद्ध स्पर्शनामय-पचाचारों का पालन करे-पालन करावे-अनुमोदे, मनगुप्ति-वचन गुप्ति-काय-गुप्तिए गुप्ता ।

१०८ ५० 'बोल मुहपतिके'

ये पचास बोल मुहपति पडिलेहण का महत्त्व समजाइ देता है। जैन शासन की किसी भी क्रिया ज्ञानात्मक और आत्म सन्मुखकारी है। पचास बोल गुजराती भाषा में है। परन्तु उन मे श्रद्धा-त्याग-सवर अहिंसा के तत्व ठस कर भरे हुए है।

हेय-उपादेय का सरलज्ञान देने की यह भी एक सरल रीति है।

सूत्र अर्थ तत्व करके सद्दहूं। मिथ्यात्व मोहनीय-मिश्र मोहनीय-सम्यक्त्व मोहनीय-परिहरु। कामराग-स्नेहराग-दृष्टिराग परिहरु। सुदेव-सुगुरु-सुधर्म का आदर करुं। कुदेव-कुगुरु कुधर्म का परित्याग करुँ। ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करुँ। ज्ञानविराधना-दर्शन विराधना चारित्र विराधना का परित्याग करुँ। मनगुप्ति-वचनगुप्ति-कायगुप्ति का आदर करुँ। मनदड वचनदड-कायदड का परित्याग करुँ। हास्य-रति-अरतिका-परित्याग करुँ। भय-शोक-जुगुप्सा का परित्याग करुँ। कृष्णलेश्या-नीललेश्या-कापोतलेश्या का परित्याग-करुँ। ऋद्धिगौरव-रसगौरव-शातागौरव का परित्याग करुँ। मायाशल्य-नियाणशल्य-मिथ्यात्वशल्य का परित्याग करुँ। क्रोधमान का त्याग करुँ। मायालोभ का त्याग करुँ। पृथ्वीकाय-अपकाय-तेउकाय की रक्षा करुँ। वायुकाय-वनस्पति-त्रसकाय की रक्षा करुँ।

ससारमे अत्यत क्रूर–भव भ्रमण करते हुए जीवो परकी परमर्षिओकी करुणा तो देखो। दिनमे, शामके समयमे, रात्रिमे, और पडिलेहणमे दोनो वक्त ही, वहुतो वक्त जिन पचास वोलोकी नुस्मृति ही करनी आवश्यक। और स्मृति करते पहले ही पदमे सद्दहणाकी वात। और वह भी सूत्र और अर्थ दोनोकी। सूत्र माने त्रिपदीका अर्क। सूत्र माने गणधर गुम्फित द्वादशांगी। पचांगी याने सूत्रका विस्तार। उसकी पक्की विश्लेषणपूर्वक स्पष्ट समझ अर्थात् सद्दहणा–श्रद्धा। परन्तु समझ पूर्वककी और ज्ञान युक्त। जैन शासनकी अनोखी अजायबी।

ये पचास वोल बडे हिस्से के श्री चतुर्विध सघमे भूलाते हुए अनुभवाते हैं। यह एक सचमुच दु खका विषय है। ऐसा अनमोल औषध भव रोगके लिए और उसीकी उपेक्षा? या सचमुच जन्म–मृत्यु के चक्कर–रोग के समान लगे हैं नही? ऐसा तो कैसे कहे। परन्तु उनके प्रति और ऐसे वहुतसे रहस्य के प्रति वेध्यान वढता जाता है। ऐसा तो कहना ही पडेगा न ?

और आखरी छ काय की रक्षाकी पुकार। कैसी सादगीपूर्ण परन्तु मधुर रीति से एकरार की भाषा मे रख दिया है। पाठ रखाने की रीत तो मानो आज के किए जाने याने कीडर गार्डन–बाल शिक्षणालयोंकी भांति आसान और सरल। परन्तु वोध गहरा, मीठा और तारक साथ ही स्वास्थ्य और मनको मजबूत वनानेवाला। इसमे मुक्तिपथमे पहुँचानेवाला।

विभाग चौथा

प्रकीर्ण संग्रह

१०९. "महाशासन" माने क्या?

सुख शांति और समाधि का केन्द्र स्थान है। प्रकृति तन्त्रकी सरल सुव्यवस्था है। स्वभाव दशाकी ओर की कुदरती कुच। विभावदशासे दूर रहनेकी वृत्ति और सावधानी। ये दोनों महाशासनके मुख्य अंग बने रहते हैं।

प्रवाहके कारण अनादि है। किसी भी तीर्थंकर भगवन्त तीर्थकी स्थापना करते है। परम सत्यका प्रकाश करते हैं। बडे सुयोग्य और उच्चकक्षाके क्षयोपशमको धारण करनेवाले गणधर महाराज उक्त सत्यको झीलते हैं। उक्त सत्यका महाविस्तार करते है। द्वादशांगीकी विशद रचना करते हैं। चौदह पूर्व बारह अंगोमे प्रविष्ट होते है। नमस्कार महामंत्र, चौदह पूर्वोका सर्वोत्तम कोटीका सार है।

बारह अंगोपर महाप्रभुकी मुहर-छाप है। गणधरोंके मस्तकों पर वास+क्षेप-सुगंधी-चूर्णकी मुष्टि द्वारा करते है। महा शासन का आधिपत्य-प्रवर्तन सौंपा जाता है। 'विश्वकल्याण' का सनातनमार्ग वहता जाता है। प्रकृतितंत्र के सही सौन्दर्य का विस्तार होता है।

शरीर जड है। आत्मा चेतन है। अनंत सुख का अनंत ज्ञान का मालिक है। चेतन-आत्मा जड कर्मो से दबा हुआ है। कर्मो के आत्मा पर का डेरा अनादि काल से है। भयकर जोर शीला और स्वरुपभान को भुलानेवाला है। इसलिए ही

आत्मा स्व को भूलकर पर में पडा है। आनदित भी हुआ है। आत्मा के लिए स्व के बिना अन्य सभी वस्तुएँ पर है। पर पुद्गल के जड आकर्षण मे खींचा हुआ है। वह आकर्षण भी कम होता जा रहे स्वका भान होता रहे मूल प्रकृति जागृति हो जाय, विकृत प्रकृति का विलय होता रहे। वैसे ही सुन्दर प्रकृति का सौन्दय वढता जाता है। आत्मा का आनद अनुभव मे आता है।

ससार असार लगता है। सारभूत स्वभाव लगता है। स्वभाव प्रकट करने मे सहायक साधन अच्छे लगे। सपूर्ण स्वभाव प्रकटाने के लिये कर्मों की सफाई करनी ही पडती है। सफाइ का सरल मार्ग पतनस्थानो का भान। उत्थान का सही मार्ग। उपयोगी पदार्थ और साधन, ये सब बताते है महाशासन।

सौ दो सौ नही। पांच पचास हजार नही। लक्ष या दस लक्ष नही। कोटी नही। अरब नही। अपितु अनत से अनत काल बीत चुके। आत्मा पर लगे हुए कर्मों के ढेरो को दूर करने के लिए बहुत से उपाय किये जाने पडे। वे बताते हैं, महाशासन।

प्रकृति के अनुसार प्रकृतितत्र को वहता रखना। विमार्ग पर गए हुए जीवो को उक्त राह पर ला देना। आगे वढावा देना। निश्चित मुक्तिस्थान तक पहुँचा देना। ये सब करता हैं महाशासन।

उनके मुख्य स्थूल साधन-दान-शील-तप-भावना। द्रव्य से और भावसे समझदारी से उसका अमलीकरण। उसी मे से ज्ञान होता है मोक्षमार्ग का। ज्ञान प्रकट होता है रत्नत्रयीका

सम्यग्-दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः वह है अडिग सिद्धांत वैज्ञानिक रीति से मन में आनंदपूर्वक दृढिभूत हो जाय ।

इस तरह स्थूल से अर्थघटन करे । प्रवचन-आगमशास्त्र ये भी है 'महाशासन' । त्रिभुवनाधिपति तीर्थंकर देवो की सुविशद महाज्ञा ये भी 'महाशासन' । आज्ञाधारी-आज्ञा को समर्पित श्रमणप्रधान श्री संघ भी महाशासन ।

११०. "महाशासन से ही मुक्ति मिले ।"

शत प्रतिशत सही वात है । मुक्ति अगर प्राप्त हो, तो महाशासन से ही । उनके तत्त्व जिन के दिल मे वस गये, खेलते रहे, अच्छे लगते रहे, भावते रहें, उसकी मुक्ति निश्चित-निश्चित-निश्चित । किसी भी वेष में हो, किसी भी देश में हो । अगर अच्छी लग जाय, जंची जायँ, महाशासन की स्वादिष्टता । तव अनादि की कटुता-कटुआई नष्ट हो जाय । कषाय अनजानी से ही नष्ट हो जाय । प्रशम का प्रकाश हो जाय । ज्ञान प्रकाश प्रकट हो जाय । सत्य प्रणेता की खोज हो जाय । सही खोज मे अरिहत दृष्टिगोचर हो जाय । आगे कदम वढते रहे । एक, दो, या पाँच, पन्द्रह भवों के बाद अजन्मा वनकर ही रहेगा ।

ऐसे आत्माओं की प्रकृति सरल वन जाती है । स्वभाव पर-उपकार मे रत बन जाता है । शक्ति हो तो सामनेवाले का दुःख दूर कर के ही शांत बने रहे । आँतर दुःख की भी समझ दे । पुण्य पाप के खेल समझाते रहे । कर्मसत्ता का परिबल दूर करने के लिए प्रेरणा करे । संयम मार्ग का स्वाद बतलावे । महामुनिओ का सपर्क करवा कर, इस तरह स्वके

रही । क्यों कि वहां शरीर तो नहीं है । इन्द्रियाँ भी नहीं है । सिर्फ ही स्वभाव में खेलता-स्व-आत्मा ।

११२. "पुण्य भी एक प्रकार का बन्धन है?"

अवश्य बंधन है । जड् पुद्गलों का एक समूह है । सभी क्रियाओं के प्रभाव से आकृष्ट हुआ है । परन्तु वह एकांत से त्याज्य नही बनता है । मुक्तिपथ में उसकी जरुरत होती है । मजबूत संघयण-मजबूत मन-धर्म सामग्रियाँ साधन मात्र है । यदि उनका सदुपयोग हो जाय तो । और निःस्वार्थ दृष्टि से की हुओ सक्रिया वैसा पुण्यबंध करवाती है । वह पुण्य प्राप्त हुई सामग्रियो में मन को बहक ने नहीं देता है । अधिक सत् कार्य में प्रेरणात्मक बनता है । इसलिए वह पुण्य पुण्यानुबंधी कहा जाता है ।

दूसरा एक पुण्य पापानुबंधी है । ऐहिक या पारलौकिक इच्छाओसे किया हुआ । वह पुण्य सामग्री तो देता है । परन्तु उस सामग्रीके दुरुपयोगसे धकेलकर बहुतसी यातनाएँ खडी कर देता है ।

पाप भी पुण्यानुबंधी होता है । पापके कारण दुःखी दरिद्री होता है । परन्तु पूर्व भव के सुसंस्कारों के प्रभावसे विचार धर्म और आत्मोन्नतिकारक होते हैं ।

पापानुबंधी पाप-पाप करके आया हुआ महादुःखी यहाँ भी भयंकर कर्म करते है । तिर्यंच या नरकगतिमें गमन करते है ।

मार्गमें पथदर्शक साथमें रखना पडता है । वह भीलादि लुटेरे की जातिका होता है । अपितु उसको साथमें रखकर

मार्ग-अटवी पार करना पडता है । पुण्यानुबंधी पुण्य पथप्रदर्शक जैसा होता है । इसके लिए उसका उपयोग सावधानी से करना पडता है । और ऊपर के उत्थानक्रममे किसी भी कक्षा पर उसका विलीनीकरण अपने आप हो जाता है ।

११३ "दर्शन-पूजनसे आत्मा को क्या लाभ"?

दर्शन देवाधिदेवका करते है । इसके समान बने इसी लिए ही रागद्वेष-मोहसे पर बने है । सर्वश्रेष्ठ आत्मा बन चुके हैं। इसलिए परमात्मा बन चूके हैं । वीतराग परमात्माके दर्शनसे वीतरागता का ज्ञान प्राप्त होता है । परमात्मा बनने का मन होता है । आत्मामे जागृति आती है ।

उनके तप-त्याग-सयम याद आते ही हमारा आत्मा आनद विभोर बन जाता है । ससार मोह का विस्मरण होता है । जजाल छोड देने की इच्छा होती है । सच्चा राह प्राप्त होता है। प्रतिदिन दर्शन करने से जागृति ताजगीभरी रहती है ।

पूजन तो परमात्मा के पास आनेका राजमार्ग है । सद-गृहस्थो के लिए । अगस्पर्श या पूजन पावकअग्नि है । विद्युत करन्ट है । मूर्छित आत्मा जागृत बन जाता है । प्रत्येक अगका स्पर्श करते ही अनग-अशरीरी-अजन्मा बनने मन होता है । प्रत्येक अगका विचार उँगलीसे स्पर्श करते हुए याद करते है ।

११४. "नव अगोके पूजनकी महत्ता"

(१) प्रभुश्रीका अगुष्ठ सुन्दर, मनमोहक-मोहको मारने-वाला, मोहके मारने को प्रेरणा करनेवाला । गोदोहिके आसन पर प्रभुश्री ध्यानमे अगुष्ठ के बल पर ही रहते थे ।

(२) जानु वलपर काउस्सगमें रहे । देशविदेश में विचरण किया । वहुतों को उपदेश देकर भवपार किये । नायने प्रत्येक अंगका उपयोग विश्वोद्धार के लिये किया ।

(३) प्रभुजी के सुकोमल हाथ । मानो कि वृक्ष की लम्बी वेला फलों से लदी हुई । वहुतों के दारिद्र दूर हुए, वर्षीदान के समय पर । वहुतों को भवसागर पार किये । इन करकमल हाथोने चूर्णमुष्टि वासक्षेप करके शासन स्थापित किया । गणधरो के मस्तको पर हाथ रखकर शासनको वढावा दिया ।

(४) दोनों कंधे तो मान नाशक प्रतीक है । अनंन शक्तिके मालिक अपितु दृष्टि निम्न । संसार समुद्र पार करनेके लिए मानो वलवान दो तुंवीपात्र ही समझ लो ।

(५) शिखास्थान माने सिद्धशिला पर आत्म स्थापना । कास्मीरज युक्त उँगली का वहाँ स्पर्श हो सके । आत्मा के हमेशाका घर याद आता है । नाथ तो वहीं ही है न। संलग्न हो जाना है न? लोकाँते वसना माने वासना मात्र का विनाश । स्वरुप रमणताका संपूर्ण आस्वादा ।

(६) भाल तिलक जयवंत-अष्टमी शशी समभाल लाल रे । सवोके भाल श्री नाथके शरणमें । जगत्पति के शरणमें । ललाटके लेख मुक्तिके । वहुतोंको भेजे और स्वयम् भी जाय । इन तेज की किरणे भव्य ललाटके, ललाट पर लिखी हुई केवल लच्छी । इस लक्ष्मीके दान भव्य आत्माओंको ।

(७) प्रभुकी की यह गौरवपूर्ण ग्रीवा । सोलह सोलह प्रहर प्रभुश्री देशना प्रसर करे । आत्माकी सुरभी प्रसरती है । सर्वविरति देशविरति-सम्यक्त्वकी प्रसादी दी जाय ।

मार्गानुसारीत्वका भी सन्मान हो जाय । न्याय-नीति-और सत्यकी सुरावली हो उठे। प्रामाणिकताके पाठोका पाठन होवे । इसलिये यह कंठ सुन्दर-मनमोहक-और स्पर्शनीय।

(८) हृदय, और वह नाथका, करुणा रसमे परिपूर्ण । प्रत्येक विचारमे करुणाका झरना बहता है । उपशमरसका सागर । राग और क्रोध भस्म हो चुके हैं । ठंडे हिम जैसे बनकर जला दिये, काले मसी जैसे बना दिये । कर्म बिचारे हार गये। गायब, भाग छूटे, भाग छूटे।

(९) नाभी कमलकी पूजा करते स्थिरता प्राप्ति । सहस्रदल कमल की भाँति सुगन्ध मर्दन प्रसारित होती है । श्री नाथजी के अनंत गुणोका सौगन्ध-वायु मोहको मारे । कर्मोको डरावे । ध्यान दशा प्राप्त करावे । मान दशा को काबूमे ले। ज्ञान दशाके साथ अध्यात्मार्ग रावे, गर्जन करे ।

नवो अंगोकी पूजना । पाप कपने लगते है। पुण्य के परमाणु आने हैं-किल्लोल करे भागते रहे। नवों तत्वों को समझमें लेने । ब्रह्मचर्यको उपासते । परब्रह्ममें लीन होने ।

११५ "अष्ट प्रकारी पूजामय उपासना।"

उपासक की उपासना के विना चैन न आयेगा। मन मुक्तिमें, तन ध्यानमें, आत्मा एक ही तानमें। तु ही-तु ही-तु ही वह है खुसीकी लयलीनता। मेरे नाथ! मेरे प्रभुजी! मेरे तारक! तरने का मार्ग प्रभुजीने-नाथने बतलाया। सुख-शान्ति-समाधी समारम भी श्री नाथजीने अर्पित की। क्या करुँ मेरे नाथके लिए? आज्ञा पालन ही सबमें बड़ी भक्ति। छोडना संसार वही है आज्ञा। नतमस्तक स्वीकार करो। सर्वविरतिका

स्वीकार करो। परन्तु अफसोस है। कि वैसा परिणाम नहीं है। ताक़त भी नहीं है। अशक्ति और आसक्ति दोनों खडी हैं। परन्तु भावतो है ही। भावका प्रतीक द्रव्य पूजा-अष्ट प्रकारी -सत्तर प्रकारी-शत प्रकारी। धन्य है भक्तजनोंको।

(१) सुन्दर जल स्वच्छ और पवित्र दूध गायादिका। दहीं दूध का मिश्रण-सामान्य घी और खडी साकर। पाँचोंका बनता है "पंचामृत" व्यवहारमे जिन पाँचोको मनुष्य लोक का अमृत माना जाता है। उसमे मिल जाय केसर-बरास-कस्तूरी-इत्यादि बहुतसे सुगंधी द्रव्य १०८ जैसी औषधियाँ। दो हाथोसे उछलते हृदय, हृदयोके पास कलश ग्रहण किया है। भक्त भावना भावता है। नाथ! देवाधिदेवा !तू निर्मल बन चुका! कर्ममल दूर किये। मै हूँ मलीन। तेरा अभिषेक मेरे मल को दूर करेगा। यह पचामृत धारा पंच ज्ञानोको प्रकट करेगा। भक्तका हर्ष अपरिमित है। हर्षाश्रुसे आखे भीगी बनती है। मंद-मीठी धाराओमेसे भाव धारा प्रक़ट होती है। पुण्य प्रकर्ष प्राप्त करता है। निर्जरा अद्‌भुत साध्य होती है। साधकदशाका अनुभव होता है।

अंगोछा सुकोमल-सफेद-बगकी पंख जैसा। प्रथम-फरका या सुकोमल पतली पोपलीनका। दूसरा और तीसरा मुलायम मलमल जैसा। सुरस लग जाय। यदि भक्ति अगमें आ जाय। मति विमल बन जाय। श्री नाथजीके गुणोकी प्रशसा करे। यह तो है हृदयकी उसी वक्त की बात।

(२) चदन पूजा- चतुर चकोर बनावे। घनसार (बरास) के साथ रस सभर बनावे। काश्मीर जेसा सुन्दर रंग लगावे। कस्तूरी की सुगंध मनको आकृष्ट करें। भाग्यदशा तस तुरन्त ही फरे। पुण्यसे पूर्ण बने। मुक्ति गमन निश्चित करे

बराससे सभी अगोको विलेपन करे। केसर कस्तूरी मिश्रित द्रव्यसे नवो अगोको अर्चे। सर्व पाप कापने लगे।

(३) जाय-जुई-केतकी-पगर भरे। लाल गुलाब मनहर अग धरे। चपा मोगरा मनको हरे। दमनक दुग्ग दूर करे। कमल विकसित चक्षु करे। हृप भरे उल्लास भरे। भव दुख हरे।

"विकसित बाग भयो, भव थाक दूर हुओ;"
चरण शरण स्वीकार कियो, भवनो मानो अन्त हुओ।"

(४) धूप दशांग जले। रत्नजडित धूपदानी मिले। सुगध सर्वांग भरे। आतम सुरभी स्वयम् आकर मिले। सब पातक दाह शान्त हो पावे। आत्म लाली प्रकाशित हो उठे। भक्तिसे मुक्ति मिले। मुक्तिवधूको ही मिले।

(५) घृत घन भरपूर दीपक दिव्यतासे प्रकट हुआ। मगल दीपक अपण किया। ज्ञान प्रकाश हुआ।

"दो शिखाओका दीपक रे, प्रकटाते है आतम ज्योत।"
नाथकी सिर्फ केवल लक्ष्मी ही, बनाती है अपने आपकी!
आकर्षण है। उवन दीपककी ज्योतिमे भरा हुआ है भावाग्नि। प्रकाशका ही पूंज याने टेर। वहा गुजाहट सही भावनाकी।

(६) लक्षय-अक्षत अखडित अति सुन्दर। स्वस्तिक अति सुन्दरी आर्तो को जंच जाय वैसा ही। चार गति दूर करे वैसा लेना है शिव सुख प्रसाद। रत्नत्रयीकी भेंट। लेना है टेरियाँ तीन परके। और रहना है श्री नाथजी के साथ। सिद्धशिलाके ऊपर जाता। केसर भीगी व्याह पत्रिका। वरमुक्ति वधू-लक्ष्मी सलग्न होने की। यह है स्वस्तिकी सार्थकता।

फल पूजा उत्तम कीजिए। चतुर, चकोर, उत्तम फल लीजिये। भांति भाँतिके रंग-विरंगी सौगंध-युक्त फल, और भवभवों के पाप निर्मूल हो जाय। मोक्षपुरी के मार्गकी ओर अग्रसर होवे।

(८) नैवेध नूतन प्रकार के और वहु प्रकार के धृतपुरी, मेसुर लाइये साटा पैंडा-बरफी लाइये। मोतीचुर और मनहर जाँवून गुलाव। खाजा विना सक्करके और स्वादिष्ठ और अमृतपाक। इस तरह पूजा कीजिये विविध रीतिसे।

पूजा अष्ट प्रकार करो, तन मन हर्पसे भर लो;
अष्ट प्रकार के कर्मोको दूर हटाओ, आत्मज्योति प्रकटाओ।

११६. भावपूजा भवनाशिनी।

भावपूजा यह है भवसागर पार करनेकी नाव। जिसमें श्री नाथजी की स्तवना और आत्माकी निंदा। प्रभुगुणगण वर्णन। स्वदूषण समूह गर्हा। दोपों का विसर्जन। गुण संक्रमण इत्यादि मुख्यतः होते है। राग रागिणी ताल-लय वद्ध, सुरावली-सह संगीत। मंद मधूर स्वरका आलाप। बिलकुल आवाज नही। कोई भी अडचन नहीं। सभी जन अपनी अपनी रुचि के अनुसार भावना प्रकट कर सके। संसारके व्यवहारको कुछ समयके लिए भूल जाय। आत्मानंद तल्लीन वन जाय।

विधिके अनुसार इरियावहियं लोगस्स प्रकट कहे। तीन खमासमण चैत्यवंदना के आदेश मार्ग पर। ३-५-७ श्लोक गाथा या काव्यसे चैत्यवंदन। जंकिंचि से जावंत केवि साहू नमोर्हत् कहकर सुमधुर स्तवना। मंद और स्वस्थ स्वरसे गान करो

भावको चमत्कृति दे। कर्ममलको दूर करे। आत्मा को भवसागर के किनारे पार करे। जयवीयराय आर्या छंदमें अर्थ विचारणा के साथ उच्चारे, "अरिहंत चेइयाण" एक नवकारका काउस्सग्ग। विशद स्तुति, जहां तक हो सके, मूलनायककी। बादमें अविधि की क्षमापना। प्रभुजीकी साक्षीसे पच्चक्खाण, जाते जाते घंटारव के दिव्य घोष।

११७ "घंटानाद और काँसी युगलका रहस्य"।

घंटानाद माने जागृत होना। दूसरों को भी जागृत करना। श्री नाथजी का संदेश अपनाने की प्रेमसे पूर्ण प्रेरणा। उनके नादमें मादकता है आत्माकी। नाशकता है, मद और मानकी। उसके घोषमें घोष है परमात्म भावका। प्रक्रिया है,-प्रोसेस है। सायन्टिफिक वैज्ञानिक। देव भी दुंदुभी नाद करते हैं। उद्घोषणा करते हैं।

भो भोः प्रमादमवधूय भजध्वमेन-
मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम् ॥

प्रमाद को दूर करो। मन का ठीक कर लो। श्री नाथजी को भजो। श्री नाथ सार्थवाह है। मुक्तिपुरी की ओर जाने के लिए। रे भव्य आत्माओ। आओ आओ आत्म कल्याण साध लो।

कांस की जोड़ी या करताल। साथ है नरघा-पखावज या ढोलक का ध्वनि। यह है आंतरिक भावना का बाह्य प्रतीक। समूह संगीत का नाद। उसका असर दुगना होता है। तन-मन आत्मा [illegible] विभोर हो जाय। श्री नाथ का जय जयकार हो जाय। नाद की लय में नवकार की विजय। दुनिया झूमी जाती है। परमात्मा में लयलीन बन जाते हैं।

वैभव का विस्मरण हो जाय । आसपास का वातावरण स्पर्श न करे । अन्य दुन्यवी शब्द कान पर रेंगता नहीं है । बोले हुए पदों का ध्वनि कान में प्रतिघोषित होते रहे ।

सम्यग् गीयते–संगीत

संगीत आत्मा की आवाज है । ज्ञान की जागृति है । स्वभाव की स्मृति है । पुद्गलभाव की विस्मृति है । आत्मानंद में तरबतर हो जाते है । परमात्म भाव में प्रवेश करते है । साधुत्व का संस्मरण है । संयमभाव की स्वीकृति है । त्याग की उत्सुकता है । मोह का मारण है । राग–द्वेष पर चोट है ; सही राह है । परमात्म–आज्ञा का, संगीत में तीर्थंकर नाम कर्म बाँधा श्री रावण ने । सूर्याभदेव की नाटय–कला शास्त्र में सुप्रसिद्ध है । द्रौपदीजी की भक्ति अभिनंदनीय बनी । सगीत आत्मा की आँतरिक ध्वनि है ।

११८. "तन्तुवाद्य ।।"

तन्तुवाद्य आज भूले जा रहे है । सूक्ष्म संगीत के ये साधन है । बीना की प्राचीन माधुरी आज कदाचित अनुभवी जाती है । हार्मोनियम तबले और शहणाई (पीपुडी) ये मुख्यत: बन चुके है । उसी में भी बेक ग्राउन्ड भूला जा रहा है । गायक स्पष्ट शब्दोच्चार प्रथम करें । उसी वक्त तंतुवाद्य अतिमंद होता है । आलाप के माधुर्य के समय पर, मंद मंद गति से वाद्यों का ध्वनि बढता जा रहे । लय तान के साथ सुबद्ध रहे । बाद में एक ही साथ संगीत का ध्वनि–तरंग वातावरण में बढे । ध्वनितरग में उन शब्दों की गुंजाहट अनुभवे ।

वल्कि प्रत्येक वाद्यकलामे ध्वनितरग गुंज उठे। सारा वातावरण सगीत मय वन जाय।

इसके लिए अवश्यमेव निस्तब्ध शाति होनी चाहिये। वनोका कोलाहल बडा विक्षेप है। महा अडनगस्प कर्म वधे जाते है। पुण्य प्राप्तिके स्थानमे पापका ढेर इकट्ठा होता है। न्युरायन पोन गिरनेकी आवाज भी सुनी जा सके, इतनी शान्ति आवश्यक है। परन्तु ज्ञाता न रहे, सगीत के। आस्वादकी परवाह नही। श्री नाथके गुणगाणकी दिलमे भक्ति नही। इस लिये शक्तिका सदुपयोग नही।

२०-२५ वाद्य एक ही साथ ध्वनि करे। आतमा ससारसे चौंक उठे। सुरावलीका सुर उदात्त वनता जाय। आतमाका भाव क्षपक श्रेणीमे चढने लगे। उसीका नाम हैं सगीत। भावसगीत विना-वाद्य भी जोशीला वने। ऐसा था हमारे नागकेतुजी। अठ्ठमतपके महा उपासक। पुष्पपूजामे रग लग गया है। आंगी रग-विरगी वना रहे हैं पुष्पोकी। तीन जगतके तारक भगवन्त वीतरागकी। पुष्पमे घुसा हुआ छोटा सर्प डसा। भावनाका भग नही। रग वढा ध्यानका। क्षपक श्रेणि आगे वढती चली। सब कर्म जल कर नष्ट हुए। मोहकी बन गई खाख। घाति सब नष्ट। प्रकटा कैवल्यज्ञान। भाव सगीतका प्रभाव।

११६ 'अजन शलाका प्रतिष्ठा।"

' क्या श्री नायके विम्व की पूजा करनी है न। शिल्पी के यहां आकृति वनती है न! तो अजन शलाका किसलिए? प्रतिष्ठा विधिकी क्या जरुरत है? प्रश्न ठीक है। जिज्ञासाके कारण पूछे गए हैं वसे हैं। जमानेके विषमे भरे हुए पूछे हैं, तो निरर्थक, निर्मूल्य अज्ञानके सूचक।

बिना ध्यान ध्येय भी नही। ध्येय प्राप्तिके लिए अवश्य साधना होना चाहिये। साधनसे साध्य सधे जाते है। साधक सबल श्रद्धा युक्त अगर हो तो! बिना वाड बेल कहाँ? वाड तो आलंबन। ध्यान साकार निराकार दोनो प्रकारके। निराकार निरालम्बन ध्यानकी कक्षा बडी ऊँची। हाई स्टेज पर पहुँचते समय लगे। उसी स्टेज पर पहुँचने के लिए आलंबन की जरुरत है

सर्वोत्तम आलम्बन सर्वोत्तम जिनमूर्ति संसारीको!

जिन आगम भी विशिष्ट आलम्बन । परन्तु वह है, क्षयोपशमका विषय। कितने पढे हुए? शास्त्री ज्ञानवाले कितने रे कितनोंको इच्छा? प्रतिशतोमें एक या दो प्रतिशत आवे। जब कि मूर्तिकी ओर विषमकालमें भी अस्सी प्रतिशतका आकर्षण। ध्येय की बात अलग है। उसकी ओर उँगली निदर्शन समय पर होगा। मूर्ति–महा अवलम्बन।

आलम्बन स्वच्छ-सुडोल और कलामय हो। आत्मामे जन्मी हुई कुरुपता दूर करनी है। कर्मों की लगी हुई अस्वच्छता दूर करनी है। कैवल्यज्ञानकी श्रेष्ठ कला प्रकट करनी है। अज्ञानता के जमे हुए ढेरोको दूर करना है। अंधकारके ढेर दूर करना है। पवित्रता की बाढ़ आगे ढकेलना है। सही स्वाधीनता प्राप्त करनी है।

आधार सभी प्रकार का, अवलम्बन पर है। खानमें से पत्थर निकलता है। वहांसे ही शास्त्र दर्शित विधि शुरु होती है। मंत्रोच्चार तो होते है। मंत्र है, शब्द ध्वनि। ध्वनिका चमत्कार आजभी जगविख्यात है। संगीत के ध्वनिसे खेत खिल उठे। बागके पौधे बडे हो जाय। बहुत फूलफलो को देनेवाले बने। पहाड के पहाड भी टूट जाय। तो क्या मंत्रोसे अशुद्ध अशुभ परमाणु दूर न हो जाँय?

पवित्र स्थलमे पत्थर पर शिल्प कार्य होता है। निम्न, रुईसे भरी गद्दी है। नही सही लगेगा, आजके विषपान किये हुएको। शुद्ध घी से पूर्ण भरे दीपक हो। मादक दशांग धूप भी हो। किसलिए ? अशुभ विचार दूर करनेके लिए। शुभ विचार प्रकट करने के लिए। दुर्ग धि, पुदगलो को दूर करनेके लिए। सुगधि पुदगलो का सक्रमण करन के लिए।

शिल्पी की तालीम भी अनोखी होती है। काम कम घटे तक करने का। वेतन माँग से सवाया देवे। भोजन भी भाँति भाँति के, ऋतु के अनुसार, जिसमे मन की प्रसन्नता बढती चले। मूर्ति मे सुन्दर भावो का सक्रमण हो जायें। आकार सुन्दर, मुखाकृति प्रफुल्लित। मानो अभी अभी बोल उठेगी। सौम्य स्मितो से भरे हुए ये बिम्ब। गाँभीर्य का गौरव पूर्ण प्रतीक। आँखें सिफ भाव करुणा का भाँडार।

जिन विम्ब तैयार हुए। देवत्वका सक्रमण होना चाहिये। देवाधिदेवत्वका अविभाव होना चाहिये। बादमे ही पूजन होना चाहिये। महामहोत्सव पूर्वक पाँचो कल्याणोंकी उत्सव किया। विश्व कल्याण के लिए आचार्यों आदि द्वारा अजन। अजनमें छिपा हुआ है, आत्माका रजन। पापीका प्रमार्जन मुक्ति मार्गका गमन। अजन शलाका सुवर्ण सली से होता है। उसीका नाम अजन शलाका। आँखोमे अजन डाले। आँखें खुल जाती है। दुनिया दीखनेमे आती है। अजन माने कवल्य ज्ञानका विधि पूर्वकका प्रतीक। आँख पर भगवन की आँख ठहरेगी। आधि-व्याधि-उपाधियो के दुख नष्टप्राय होंगे। घाति सब नष्ट होंगे। कैवल्य ज्योति प्रकटेगी। यह है अजन विधिकी अपूर्वता। त्यागी महात्माओंकी लोक कल्याणकी भावना।

प्रतिष्ठा है, स्थापना जिन बिम्बोंकी। जिनालय तैयार हो चुका है। श्वेत संग मरमरका। मानो पृथ्वी पर उतर आयी हो, आकाशगंगा। प्रत्येक संगेमरमर अरीसा बनता है आत्माका। आदर्श जीवन की याद लाता है। जड़ पाषाण वत् नहीं रहते हैं। बोलती पुस्तकें बन जाती हैं। अगर विधिपूरस: संपूर्ण उदारता हो तो। समवेदना–सहिष्णुता–लक्ष्मीकी असारता त्याग-संयम और तपके ये प्रतीक है। क्यों? बंधानेवालोंकी जीवन कला से? जीन मंदिर निर्माता अर्थात् भव्यात्माओं का भ्राता।

निर्माता उदारताके गुणोंका मालिक होता है। लक्ष्मी उसीको हाथके मेलके सामान लगती है। मंदिर–निर्माण आदि कल्याणक कार्योमें उपयोगी बनी, उतनी ही सफल। और सब निष्फल। कुछ कुछ खाद्य–पेय बस्तुओंका त्याग करना है। ब्रह्मचर्यका पालन होता है। आर्यविल आदि यथाशक्ति तप चालू होता है। कारण पूछता है? सहिष्णुता और समवेदना उसमें व्यापक होती है।

ऐसा भक्त देखभालके लिए, तैयार होते, जिन मंदिर आता है। कारीगरको उदास देखता है। कारण पूछता हैं। घर पर पत्नी बीमार है। स्वयम् संभाल रखनेकी आवश्यकता है। भक्त, कारीगर को नीचे उतरने के लिए कहता है। दस दिनोंका वेतन पहले से देता है। घर जाओ सेवा चाकरी करो। मन प्रसन्न होने पर अवश्य आना। वेतन चालू रहेगा। हाँ! इस चितामें कितना काम बढाया है? पाँच–सात इतने काफी सातों बढावा दूर करके फिर से काम किया जायगा। क्या समझमें आते हैं सहिष्णुता और समभाव? देवालय याने उदारताका दरिया। मूर्ति संसार सागर तैरनेका अभेद्य

जहाज। इसलिए प्रतिष्ठा माने दुंदुभि नाद। आमंत्रण भव्यात्माओं को भक्तिके लिए। शक्तिकी उन्नति के लिए। धन्य है निर्माताओं को। धन्य है पूर्वाचार्यों को। धन्य है, महामंगलमय विराट जैन शासनको।

१२० "धन कैसा चाहिए"

स्थान स्थान पर प्रश्न होता है। समक्षसे-असमक्षसे-मददकारी रूपमें भी, धर्मकार्यों में धन किस प्रकार से-व्यय करना चाहिये। उत्तर है, शुद्ध नीति-सच्चाई से और प्रामाणिकता से पैदा किया हुआ। ऐसा धन न मिलने पर क्या धर्म कार्य में रुकावट ला देनी? क्या साधन प्रवाह बिलकुल बन्द कर देना? जिससे थोड़े अंशों में टिकी हुई धर्म भावना नष्ट नहीं होने देनी चाहिये। व्यवहार शुद्धिके सिद्धांत का अपलाप नहीं कर देना चाहिये। उस तरह दानकी बची-खुची भावनाको नेस्त-नाबूद भी नहीं होने देनी चाहिये।

बात यह है कि सच्चा धर्मी महद् अंशोंमें प्रामाणिक और नीतिमान होता है। अपितु किसी भी कठिन संजोगों में, अनीति करनी पड़े तो, उसका आत्मा दुःखित होता है। यह बात उसको खलती है। इसलिए वह क्षम्य कोटिमें आ गिरता है। परन्तु जिसका सारा धन्धा और तरकीब अनीति और अप्रामाणिकता की नींव पर स्थापित हुआ है। साम्राज्य बनाया है। और आगे बढ़ाता जाता है। इसकी बातमें क्या? ऐसे महद् अंशों में धन पावेंगे मान बढ़ानेके लिये? और अप्रामाणिकसे प्रतिष्ठा व्यय करनेवाले हों, तो, प्रशंसा और कीर्तिलालसा भी बड़ी भयंकर है न? इसलिए ऐसी

व्यक्तिओं के लिए किसी भी प्रकारके धर्म का स्कोप नही है
अब रहा सिर्फ एक वर्ग ?

जो धर्मी नही है, नीतिमान नही है, परन्तु पूर्वपुण्य की सहाय से सुन्दर कमाई करता है। आमदनीका करन्ट भी जोरो का है। ऐसे कतिपय आत्मा को सुनने से-पढने से किसी भी क्षण पर सद्बुद्धि जागृत हो गई, तो हे भगवान ! ये सब इस लक्ष्मी के खातिर ? जो किसी भी समय पर फेंक दे उसीके लिए ही ? अन्तमे जिसको छोड़कर जाना है। उसी ही के लिए यह पाप ? यह अनीति ! दिलमे प्रकृति-तन्त्र का करन्ट लग गया। सत्यकी समझदारी कुछ अशोमे भी जागरुक बन उठी। ऐसे आत्माको निर्मल बननेका कुछ अशोमे मन होता है। "पश्चातापका पुनित झरना स्वर्गसे नीचे उत्तर आया है।" वैसे आत्माको धर्मस्नान करने देना या नही। पवित्र बनने देना या नही ? कि सिर्फ 'ना' कहकर उसका सीना क्या तोड डालना ? पैदा हुए सद्भावको जला देना ? पाँच लाख विला-समें खर्च करे, तो कौन रोकनेवाला है। तो सन्निष्ठा पूर्वक धर्मकार्योमे खर्च करे तो मजाक किस प्रकारकी? उसमे उसकी अनीतिको बिलकुल भी सहारा हमारा नही है। परन्तु उसमे जागृत हुए पापके पछतावेको और नीतिकी ओर प्रकट हुए सद्भावको हमारा सहकार है। ऐसे करते बिलकुल नीतिमान और प्रामाणिक बन जाय, तो वडा फायदा, एक सज्जन सन्नागरिककी समाज को भेट मिलेगी।

जबकी चारो ओर महा तमसके काले बादल मंडराये है। वहाँ एक-दो विजलीके चमकार प्रकट हो जाये तो होने दीजिये।

चाहे वैसे सजोगोमे "नीति" को हो, 'व्यवहार सिद्धात समझ लेना चाहिये। अनीतिका मापदण्ड गलत ही गलत। अपितु सही बातकी ओर वे ध्यान कैसे रह सके? आँखोके सामने प्रकट होती रहती, चौवीसो घटोकी प्रवृत्तिको-परिस्थितिको कैसे फेंक दी जा सके? 'अर्थनीति' और 'राजनीति' दोनो जहाँ 'नीति' के रूपमे ही न रहे हो। वहाँ क्या कहा जा सकता है? भयकर कट्टर सजोगोमे भी 'नीति'-न्याय-प्रामाणिकता ही सिद्धान्त मान ले जाय। उसका ही उपदेश दिया जा सके। तब ही कोई भी विरल व्यक्ति उसका उपासक देखने मे आवे। शेष सभी तो, जैसे थे, भाई जैसे थे, कौन किससे कहे? ऊपरकी कक्षा से लेकर नीचेकी कक्षा तक व्यापक भ्रष्टाचारमे जो कोई बच गया हो या बच सके उसको शतकोटि धन्यवाद!

इतनी गभीर बातके बाद भी स्पष्ट विचारणा के बाद, प्रश्नको उत्तर, सहज स्वाभाविक रीतिसे बहुत स्पष्ट रूपसे मिल जाता है। और तो धर्मोको, धर्मगुरुओको, येन केन प्रकारेण गिरानेकी वृत्ति जिसमे उत्पन्न हुई है, उसके भावीकी बलिहारी है? इससे ज्यादा क्या कहा जाय?

१२१ "क्या धनके बिना धर्म हो सके या नहीं?"

प्रश्न अच्छा और समझने योग्य है। प्रश्न के पीछे धनका तीव्र लालच न हो तो। जिसके पास धन है, बेलेन्स है, सामाजिक दृष्टिसे सुखी आर्थिक जीवन है उन्हीका यह प्रश्न हो तो, बिलकुल "ना" मे उनका प्राथमिक उत्तर है। अगर वह ऐसा कहता हो तो, सचमुच मुझे अपना धन धर्मके लिए खर्च करना चाहिये। परन्तु मेरा पापोदय है। शक्ति होने पर एक पैसा भी व्यय करने के लिए मेरी इच्छा नही होती है।

तो वह क्षन्तव्य कक्षाका जीव है। अगर यह एकरार हृदयका–सच्चे दिलका हो तो।

अब जिसके पास धन नहीं है। वैसी आय भी नहीं है। इस जमानेकी महंगाई परेशान करती है। इनके लिये, विना पैसे खर्च किये भी धर्म करनेके मार्ग खडे है! चारित्र्य, सुन्दर स्वभाव–नम्रवाणी-ब्रह्मचर्य–सेवाभाव-सहिष्णुता ये है अलग अलग तपकी कोटी। रसत्याग, जरुरतों पर काबू। नीति-सत्य –प्रामाणिकता इत्यादि बहु प्रकारोंमें धर्मका पालन कर सकता है। करा भी सकता है। अरे! ऐसा आत्मा तो, उदास भावना चनता, छोटी आयमें से पाँच या पंद्रह धर्मके मार्गमें व्यय कर सकेगा। तभी उसको चैन होगा चैन? यह तो हमारा अलवेला भारतीय माना जा सकता है।

१२२ "समाज–धर्म और लक्ष्मी नंदन"।

क्या समाकको धनवान की जरुरत है? धर्ममें उसका स्थान है? हो भी सकता है और न भी हो। सुयोग्य आत्मा और धनवान-उदार वह तो है समाजके चोकीदार। समाजकी प्रतिष्ठा है। समाज ऐसे धनवानको अभिनंदन देता है। उसकी भूरि भूरि प्रससा भी करता है। उसका स्वागत पुष्पमालाओंसे करता है। उसका स्थान गौरवपूर्ण बना देता है।

धर्ममें प्रवेश करनेवाले ऐसी निराभिमानी आत्माएँ अनुमोदनके पात्र बनते है। धर्मगुरु भी उनको उत्तम मार्गकी ओर अग्रसर करके उसके आत्म कल्याणका साधन करनेमें दत्तचित्त होते है।

परन्तु ५०० खर्च कर के पाँच हजार का दिखावा करनेवाले को भी समाज पहचान लेता है। जिस का सीना कडा

होता है, उसकी परख भी समाज न.यको को होती है, मानते हैं कि मरने दो । हमारा क्या ? थोडा सा अभिमान करने दो । हमे काम से काम रखना चाहिये । दश हजार दिये तो जाने दो । एक पत्र का कागज और एक पुष्पहार उसके लिए गनिमत है ।

धर्म म तो ऐसे को जान-बूझकर स्थान नही दिया जाता है । एक हकीकत है, कि उसके लिये पथ आरोह बनाने के लिए इस दृष्टि बिंदु से, औचित्य बताना आवश्यक समझना । सभा मे अगली लाइन मे बिठवाना । उस मे भी गलत बुलद और टीका-इर्षा करनेवाले-माग भूले हुए । जो पुण्य और पाप के इस खेल को नही समझे हैं । सकुचित दिलके हैं ।

१२३ "क्या धर्म कलह कराता है?"

धर्म और कलह यह बात गलत है । उसकी नीव ही गलत । धर्म ही धर्म है । प्रशम उस की चोटो है । धर्मप्रकृति का सौन्दय है मुक्ति की सब से ऊँची चोटी है । इसी मे कलह कहाँ से प्रवेश कर सकता है ? अज्ञान से उलटा मालूम होता है । मोह से सत्य, असत्य के रुप मे दृष्टि गोचर होता हे । उसी मे मोहवश जमाने के गहरे अधकार मे धर्म मे कलह मालूम होता है । और तो सिद्धात रक्षा को-सत्य की आलबेल को कलह कहनेवालो को मुबारकबाद ! उस पामर प्राणी की दया ही खाना चाहिये न ? क्यो कि भाव दया तो शासन मे प्रत्येक के लिए भी धर्मात्माओ मे जिन्दा रहती ही हैं । जिन्दा रहनी भी चाहिये । यह है जैनशासन । वीतराग परमात्मा का आर्हत्-शासन विश्व कल्याणकर महासाम्राज्य ।

और एक बात तो स्पष्ट कह देनी चाहिये। सिद्धांत रक्षा में भी दिल की सच्चाई, कटु वानी का उपयोग नहीं होने देगी। आँखों पर दुपट्टे रखे जा नहीं सकेंगे। परन्तु कहे जाने पर भी, आंक की गड्डिया रखनी पडी, ऐसा है समार ? समझने के लिए आनेवालों का उनकी मान्यता स्पष्टता से-शास्त्रों की पंक्तियों द्वारा ही समझाया जायगा। पंक्तिओं का अर्थ सरल और शुद्ध बनवाकर,

इस में कहाँ है कलह ? और कहाँ है मारपीट या गाली गलोज।

परन्तु संसार ही विचित्र है। जैसा दिल में वैसा मुखमें जैसा अंतर में वैसा ही ब्रह्मांड में। स्वार्थ तो शेतान है। उलटे राह पर ले चले। धर्म का उपयोग नहीं है। मजाक-हँसी में बडा रस है। धर्मक्षेत्र में भी स्वार्थ को चरना करना है। वहाँ इसलिए बेचारे आत्माको उलटा देखने में आवे। सत्य के सामने दृष्टि भी नहीं करेगा। अगर कोई उँगली निदेश करायेगा तो दोषयुक्त देखेंगा। आप का चाहे वैसा हो, लेकिन मेरा स्वार्थ तो अवश्य साधना चाहिये। वर मर जावे कन्या मर जावे मगर हमारा खोला-तरबोल होना चाहिए। ऐसा न्याय वह समझेगा। उसको उलटा देखने दो वह दया के पात्र। ऐसे लोगो को धर्म में कलह मालूम होंगे। धन के लिए या जमीन के टुकडे के लिए-या प्रेयसी के लिए तीन-तीन बार कोर्ट-कचहरी पर जानेवाले बहुत अशो में। आज के जमाने में वैसा ही देखने में आयेगा। परन्तु एक प्रश्न पूछ ले। सारे विश्व की सारी फाइलों में धर्म के कलहों के केस कितने ? एक टकाका चतुर्थांस प्रतिशत होता ?

१२४ "क्या धर्म राष्ट्र को उपकारक है?"

राष्ट्र को, राष्ट्र की प्रजा को, सही अर्थ मे, उपकारक ही धर्म है। धर्म नही, तो नीति भी नही। बाद मे सत्य और अहिंसा कहाँ से रहेगे? बिलकुल सही अर्थ मे सत्य और अहिंसा को लीजिये। कोई भी राष्ट्र या राष्ट्र की प्रजा इन दोनो तत्त्वो के बिना जिंदा न रह सकी है। न रह सकेगी। न रह सकती है। राष्ट्रधर्म भी प्रजा के भावप्राण की रक्षा के लिए है। भावप्राण की रक्षा के बिना द्रव्यप्राण की अमल मे रक्षा नही होती है। और तो अज्ञान से पागलपन से चाहे जो कुछ बोला जा सकता है। अधर्मी का अधम स्वार्थ धर्माभास को धर्म मान ले। उसी मे से राष्ट्र को नुकसान होगा। प्रजा को पीडा होगी और धर्म का नाम निन्दित बनेगा। वहाँ क्या किया जा सके? धर्म-तप-सत्य-त्याग-अहिंसा की व्याख्याएँ उलटी होने लगी? प्रजा को भी गलत राह पर ले जाय। जहाँ बहुतो की अज्ञानता प्रजाजनो की हैसियत भी क्या?

१२५ 'क्रियाओंमे धर्म कैसे माना गया?"

क्रिया प्रत्यक्ष ज्ञान है इसलिए ही प्रेक्टीकल है इसलिए एल एल बी की उपाधि प्राप्त करनेके बाद क्या? अच्छे नामचीन की राहबरीमे अल्पाधिक प्रेक्टिस करनी ही पडेगी न? उसीमे ही माफन्य और अच्छा चान्स ज्ञानको विज्ञानमे परिणत करना, वे हैं क्रियाएँ। भोजन बनानेकी क्रिया सिर्फ पुस्तकको पढनेमे नहीं हस्तगत होगी। इस लिए उसको जानने वालोकी राहबरीमे, तैयार होने के लिए क्रियात्मक शिक्षा लेना जरुरी है। क्रिया तो पारदर्शक है।

क्रिया भावका प्रति घोप पाडकर ही रहेगी। क्रियामें वेग भी है। दिल-दिमागको कार्यान्वित करनेवाली है। क्रिया माने सद्भावकी उन्नत श्रेणीका प्रतीक। उलटे भावसे करने वालोंको उलटा फल प्राप्त होगे।

सामयिक समतागुण प्रकट करे, विकसावे। प्रति क्रमण मनको पापसे रुकावट करे। किये हुए पापोंका पश्चताप भी करावे। पौषध धर्मकी पुष्टि करे। आत्माको संयम भावमें पुष्ट करे। पूजा महा पावन कारी। नाथकी पहचान करावे। आत्माको जागृत करे। व्याख्यान वानी देव, गुरु और धर्मकी परख करावे। भावना भक्तिमें तरबतर बनावे। आत्मानंद भी करावें। क्रियाएँ आत्म भावकी प्रत्यक्ष साक्षी है।

१२६ "मोदकका दृष्टाँत"।

घी, गूड और आटेका लड्डू बनता है। तीन थालोमें तीन हाजिर है। अवश्य बनेंगे। वाह! भाई, यों ही कैसे बन पायेंगे? तब, तो, क्या क्या करना पडे? रे, बहुत विधि के पीछे-बादमें स्टव चूलहा झौकना पडे। या अन्य साधनोंका उपयोग भी करना पडेगा। हर एक का प्रमाण प्रमाणसर लेना पडेगा। गूड तो अच्छा, कुछ अधिक पड जाय तो क्या हर्ज है? मजा नष्ट हो जाय? अच्छा भाई? आप की बात मजूर रखता हूँ। आप के कहने के अनुसार लड्डू बनवाया। थाली मे परोसा भी गया! परंतु देखो, स्पर्श नहीं करना। कहो कैसा स्वादिष्ट बना है? बडा अचरज, बिना मुह में रखे?

स्वादका प्रश्न पूछते है? मुँहमें रखनेके बाद, चबा देनेके बाद जीभको आस्वाद करने दो। बहुत अच्छा बादमें, तो कहेंगे,

न ? कैसा है आस्वाद ? स्वाद का वर्णन कैसे किया जा सकता है ? आपही थोडा सा टुकडा मुंहमे डालो न ? जीभ पर ? क्रिया । क्रिया ?

बिना क्रिया के ज्ञान नही । "सम्यग ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष" ज्ञान क्रिया की ज्योति ही है । क्रिया ज्ञानका रक्षक है । पोपक तत्त्व है । चौदवे स्थान पर निष्क्रिय बनेगा । बादमे किसी भी योगम नही । क्रिया नही । निष्क्रिय बननमे भी क्रियाएँ अति आवश्यक है ।

१२७ "क्या सिर्फ अकेला ध्यान नहीं चलेगा ?"

कैवल्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही ध्यान आवश्यक है न ? धर्मध्यान शुकलध्यान ,दो, शास्त्रोने बताये हैं । और उन शास्त्रोने ध्यान की सभी भूमिकाएँ बतलाई हैं । केवल नाक दबाकर, पद्मासन लगाकर बैठ रहनेसे क्या ध्यान की प्राप्ति होगा ? मन-वचन काया का नियतन वही ही है प्राथमिक ध्यानकी भूमिका न ? वही है योगका प्रारभ ही न ? मन चचल भटकता फिरे और ध्यानकी बात कहाँ ? आलबनमे मनको स्थिर होने दो । बिना शुभ प्रवृत्ति के मनकी स्थिरता कहाँ ? शुद्ध आशयकी प्रवृत्ति, निवृत्ति ला सकेगी ।

लक्ष्मी का ही केवल ध्यान करते रहो, व्यापारके लिए जाना मत ? नौकरी की गुलामी भी मत करना । इसीमे भूखा रखने की बात ही कहा है ? यह तो सिर्फ कोरे ध्यान को आलम्बन देने की बात है । इसलिए सिर्फ कोरी ध्यान की बातोमे मोहविलसित न बनना । जिनदेव की आज्ञानुसार सब किये जाओ । ध्यान की भूमिका पर ध्यान स्वयम् आ पहुँचेगा । अनोखा आनद मिलेगा ।

देवाधिदेव चरम तीर्थपति भगवंत महावीर का ध्यान तो आश्चर्य जनक है न ? परिषह उपसर्ग सह लिये। कैसे भयंकर। अपितु अडिग रहे। तप साढे बारह वर्ष का। शिरको धुनादे वैसा। क्या है, वैसी शक्ति ? और पिछले भवोंकी रे नंदन राजर्षि के भवों की आराधना ? तप-सयम बिना शुद्ध आचरण के और आराधन के, ध्यान की वातें दंभमें और आत्माकी छलमें न परिणमे तो आत्मा का कल्याण।

१२८. "आज श्री तीर्थंकर देव कहाँ हैं ?"

वर्तमान कालमें पाँच महाविदेहों में २० तीर्थंकर भगवत चराचर विश्व को देखते, जानते, इस विराट विश्वभूमि पर विचर रहे है। प्रत्येक महा विदेहमे ३२ विजय। (१ विजय= करीब एक भरतक्षेत्र। होता है।) उनमें से चारोमें चार तीर्थंकर देवों का आज अस्तित्व है। अर्थात् पाँच महाविदेहोंमें २० जिनेश्वर देव महा ज्ञानका प्रकाश फैला रहे हैं। उक्त क्षेत्रमें सदैव चौथे आरे के भाव होते है। वहाँ धर्मका और तीर्थंकर देवों का विरह नहीं होता है।

उन बीस तीर्थंकर देवों के दो कोटी कैवल्य ज्ञानी महात्मा है। दो हजार कोटी साधु महात्मा आत्म साधना कर रहे हैं। अगर कोई उच्चकोटी के देव की सहाय या प्रसन्नता प्राप्त हो जाय तो, परमात्माके सदेह दर्शन आज भी कोई पुण्यशील आत्मा कर सके। इसलिये ही प्रत्येक सुबहमें प्रतिक्रमणमें सीमंधर स्वामीका चैत्यवंदन करते है। महामहोपाध्यायजी को तत्कालीन प्रवर्तमान परिस्थिति संघ की देखकर आघात पहुँचा है। श्री सीमधर स्वामीको १२५ गाथाओं के स्तवनमें प्रथमकी दो कलहों मे मार्मिक विनंती की है।

'स्वामी सीमंघरा विनती, सुनो मेरी देव रे।

श्री सीमंधर स्वामिने पुष्कलावती विजयमे जन्म पाया है। पिता श्रेयांस राजा, सत्य की रानी माता । १७ वाँ कुंथुनाथ और १८ वाँ अरनाथ भगवत के बीचके समय मे प्रभुश्रीका आविर्भाव हुआ है । २० वाँ श्री नमीनाथ भगवान के अतरमे प्रभुश्रीने सयम् लिया । आगामी चौवीसी के श्री उदय प्रभु और श्री पेढाल स्वामीके अतरमे सीमधर स्वामि सिद्धपद प्राप्त करेंगे ।

१२६ "भालतिलक की भव्यता"

पूजा करनेवाला भक्तजन अपने भाल पर तिलक करना है । केसर चदन मिश्रित केसरिया चाल्ला जैन की पहचान करावे अर्थात् जैन जिनकी आज्ञा और क्रियाओकी अडिग श्रद्धा रखता है, और शक्ति अनुसार पालन भी करता है ।

"तिलक करे तारक नाम का, जिन आज्ञा सिर पर धरे ।' यह, तो है, सर्वज्ञ भगवन्तको प्राप्त करने के लिए गौरवपूर्ण तिलक। यह गौरव तीनो गारवदोषो का नाशक है । अकार्य करते समय रुकावट करनेवाला पेहरगीर ।

परन्तु इसके अलावा भी गले, हृदय और नाभि पर, इस तरह तीनो स्थान पर, तिलक करना, पूजा करनेवाले के लिए आवश्कक है । बोलना-उच्चार करना जिनाज्ञाके अनुसार । व्यवहारमे दिल साफ है, ऐसा बोला जाता है। इसलिए दिलमे जिन आज्ञा धारण करना और श्रध्धा-धमप्रेम-तत्वज्ञान भी अधिक गहरे घोर नाभि मे स्थित हो जाना आवश्यक है ।

इस के सिवा, इसके पीछे, आत्म कल्याण के हेतुसे तन-मनके वैज्ञानिक प्रयोगोका तत्व भी बैठा हुआ है। पूर्व पुरुषोने

आयोजित की हुअी क्रियाओंमें पीछे गुप्त रहस्य भी भरा पडा है। जैसे कि पाटले पर बैठकर भोजन लेनेकी गृहस्थकी प्रक्रियामे, उनके आसन पर बैठने की साधु की प्रक्रियामें, ३-३॥ (साढे तीन) हाथ दूर द्रष्टि रखकर चलनेकी प्रक्रियामें स्वपर कल्याणकी सुदर रेखाअे अंकित हुई है।

१३० "आरती मंगल दीप"।

'अरतिको उतारती है आरती'। रति-अरति, आनंद-खेद के द्वन्द्वको दूर करनेके लिए श्री नाथकी आरती उतारते हैं। पाँच बत्तियोंका संकेत पाँचों ज्ञानकी प्राप्ति सूचित करता है। महद् अंशोमें, बोलनेकी आरतीकी पाँच कडियाँ होती हैं। आत्मा भक्तिमें सान भान भूल जाते हैं। तल्लीन बन जाते हैं। वाजित्रों-वाद्योंसे वातावरण शुध्ध बन जाता है। छोटे बच्चों पर सुकोमल संस्कार सिचन होता है। धर्मभावना जागृत होती है।

तीन जगतके नायका मंगल दीप है। कैवल्य ज्योति जग रही है नाथके आत्मामे। उसीका प्रकाश झिलना है, उपासकोंको। प्रकाशका प्रतीक है, शुध्ध घृतका दीपक। घी के दीपक और उसकी रोशनी स्वच्छ वातावरण और द्रव्यभाव स्वास्थ्यकी द्रष्टिसे अति जरुरी है।

'तीन जग दीपक नाथ, तू देना हमें साथ।'

१३१ "चामर ढालना"

यह है, एक सुखद राज प्रतीक देवेंद्र चामर दोनों ओर ढालते हैं। अपनेको कृतकृत्य मानते है। नृत्यके साथ चामर पूजा

अद्भुत रितिसे होती है । आज तो महत् अशोमे, चामर देखने भी योग्य नहीं होते है । अति नाटे श्याम और पीले बने हुए । क्या ? क्या भक्ति का भाव चला गया है इसलिये ? त्रिजगत्पतिके परमोपकार को नही पहचाना है, क्या इसलिए ? स्वच्छ सफेद जुईके फूल जैसे, श्वेत-विकसित । देखते ही आँखो को आकृष्ट करदे वैसे दो मूल्यवान चामर-जिनकी दोनो ओर काच जडित पेटी हो । सुन्दर चाँदी की जजीर, जो जरा लम्बी रसी हो । चामरो की देखभाली होनी चाहिये । मैले न होने पावे न इधर-उधर भक्त जन रख दे । देखते ही चामर झुलाने की इच्छा हो जाय ।

हे स्वामिन्, ठीक ऊपर से नीचे आकर नमते हुए चामर सचमुच जीवत बन गये हैं वैसे लगते हैं प्रेरणा दे रहे हैं । जो नाथ के भी नाथ को विश्वोद्धारक को विश्ववन्दनीय तीर्थ कर देवो को नमन करते है, वे शुद्ध भाव से परिपूर्ण आत्माएँ शीघ्र ही ऊर्ध्वगामी बनेगे । एक समय के काल में सिद्धशिला आवास करेंगे । तीनो जगत मे आत्मा की सुगध का फैलाव करेगे ।

१३२ "श्री जिनेश्वर देवों के पाँच कल्याणक ।"

कल्याणक शब्द, बहुत गहरा हेतुपुरस्स का है । वहाँ आधुनिक 'नव्य' शब्द योजित नही हो सकता है । तीनो जगत का कल्याण करने का अद्भुत सामर्थ्य, जिन-तीर्थंकरो में ही होता है । वही शक्ति तीर्थ कर के भव से पिछले तीसरे भव मे आविर्भूत हो जाती है । मस्तक कपने लगे ऐसी उत्कृष्ट धर्म-आराधन से । उक्त आराधना देवलोक में भी महा-वैराग्यवान रखती है । कदाचित् कवचित् नरक गामी हो जाय, तो भी उच्च कोटी का प्रशम अनुभवता है ।

(१) देवलोक में से च्यवे तो भी, नन्दीश्वर दीप में 'कल्याणक' आराधना अठ्ठाई महोत्सव भी देव करते हैं। क्यों कि तीन जगत के सुयोग्य आत्मा के उद्धारक, माता की कुक्षी में पधारे और तीर्थंकर की हैसियत से चौदह बड़े स्वप्न माता देखती है। इसलिए ही च्यवन से ही तीर्थंकर देवो के तीर्थंकरत्व की पूजा देव गुरु ही कर देते है।

(२) स्वामि जन्म लेते है। ५६ दिग्कुमारी शुचिकर्म करे। उस वक्त, बडे शान–शौकत से, सोत्साह ६४ इन्द्र मेरु गिरि पर हाजिर हो जाते है।

प्रथम देव लोक के इन्द्र, बाल प्रभु को लेकर मेरु पर जाते है। भक्तिपूर्ण हृदय पाँचरुप धारण करता है। छत्र स्वयम् रखते हैं। दोनो ओर स्वयम् चामर ढालते है। स्वयम् आगे वज्र उछालते है। हृदय के पास, दोनों हाथो में रखकर प्रभुश्री को धारण स्वयम् करते है। अभिषेक महोत्सव याने स्नात्र महोत्सव—रत्न—स्वस्तिक रत्न—आरती—मंगलदीप—नमुत्थुणं– शक्रस्तव। देवों का हर्षनाद—नृत्य—दौडधूप। आनंदकी कोई सीमा—छोर नहीं।

फिरसे इन्द्र प्रभुजीको माताके पास रख दे। रत्न–गेंद और दुकूल वस्त्र युगल। रक्षा घोषणा—नंदीश्वरद्वीप में अट्ठाई महोत्सव। सब कुछ सत्य से पूर्ण। महापुण्य का प्राकृतिक फल। बिलकुल आश्चर्य नहीं। अतिशयोक्ति भी नहीं। कितना लिखा जा सके।

(३) प्रभुजी के दीक्षा समय को एक वर्षकी अवधि शेष है। लोकांतिक देव, हर्षपूर्वक आकृष्ट होने से आते है, विनति श्री नाथसे करते है। तीथ प्रर्वतावोजी। हे नाथ! जगत्

उध्धार के लिए संयम अवसर यह समझो जो। अवधिज्ञानी प्रभुश्रीतो जानते ही हैं। परन्तु अपना शुभ आचार देव कैसे भूल जावे।

वर्षीदान बारह-बारह मास तक सुवर्ण-सिक्के। अच्छे, वजनदार और घट्टा। ऊपर नाम, उपकारी माता पिताके। कोई भी ले जाँय-ले जाँय। ३८८ कोटी उपर अेंसी लाख के दीनारका दान। सब त्याग। देवेन्द्रोने पालकी उठाई है। शोभायात्रा!। अशोकादि वृक्षके नीचे पचमुष्टि लोच महा भीष्म प्रतिज्ञा। "करेमि सामाइअ," । देवेन्द्र की शांति के लिए घोषणा।

४ अनेक परिसह—उपसर्गो, समतासे पूर्णध्यान, राग-द्वेप का सम्पूर्ण नाश। मोहकी कायमी विदाय। तेरमा गुणस्थानक सर्वतोमुखी सपूर्ण ज्ञान। ६४ इन्द्रोका आगमन समवसरणकी रचना, शासन स्थापना, चतुर्विध सघ व्यवस्था चतुर्मुख उपदेश दो धर्मका चार प्रकारका उपदेश वि वि

५ राजा-महाराजा, नगरशेठ, उपदेश, सुणे, जाग्रत होवे खडा होवे, सयम स्वीकारे।

देशविरतिधर बने। सम्यक्त्वका उच्चारण करे श्री प्रभु मुखसे मार्गानु सारी-सत्य नीति-प्रामाणिकता जीवनमें लाते है। जगत् उद्धारक आयुष्य पूर्ण होने पर, आखरी जन्म समाप्त करते हैं। अजन्मा बनकर सिद्धि स्थान पर अनत अव्याबाध सुखके भोक्ता बनते हैं। धन्य स्वामि ?

पाँचो कल्याणकके, देव नदीश्वर द्वीपमे मनाते हैं। विद्याधर वैताढ्य के, भी नदीश्वर उत्सव मे मनाते सम्मिलित होते हैं। मनुष्य अपने अपने गावमें नग मे देवालयोमें या स्वगृहोमें मनाते है। आज भी पाचो कल्याणको की यत् किंचित् विधि ऐहमेशावादमे सुरक्षित रही है। पाँचो कल्याणको की रथयात्रा निकलती है।

कल्याणकों के दिन पर दर्शन-पूजन-महापूजन-जप-तप-त्याग इत्यादि द्वारा मुक्तिमार्गकी आराधना आज भी होती है।

आराधता कल्याणक पांच, प्राप्त करे भव पार ।"

कल्याणक इनकी रीति के अनुसार मनाते हैं। शास्त्रोंमें उनकी रीति बतलाई गई हैं। उलटी रीति धर्म से च्युत कर देनेवाली है। वह धर्म ध्वंसक, शास्त्र को हत-प्रहत करने की रीति है। युक्ति-प्रयुक्ति है। आत्म कल्याण करे "कल्याणक"।

१३३. "चौदह स्वप्नोंका रहस्य"।

प्रत्येक तीर्थंकर की माता प्रभुजीके आत्मा को गर्भस्थ बनते समय चौदह स्वप्न देखती है। आनेवाले महान् आत्मा के सर्वोत्तम गुणों की आगाही है। पुण्य प्रकर्ष की प्रकृति सर्जित चिह्न निशानी है।

(१) ऊँचा सफेद हाथी :-

चार दांत चतुर्विध धर्म कहेगे। ऐसा सूचित करता है। मोह के बडे किले पर निडर बनकर दौडनेवाले है। चार गतियोंका स्व पर के लिए अंतक बनेंगे।

(२) सुरूप वृषभ :-

सयमका बोझ वहन करेंगे। भरतक्षेत्रमें भव्य जीवों के दिलमे बोधिबीज बोएँगे। उन्नत ककुद प्रभुश्री के उच्च-गोत्र-वंश को सूचित करता है।

(३) शेर (सिंह) :-

भव्य जीवोंका रक्षक बनेंगे। कुतीर्थिक रुप हिंसक पशुओंसे। परिषह रुप हस्तिको चीर डालने वाले। किसीकी भी मदद नहीं। बिलकुल डर नहीं।

(४) लक्ष्मीदेवी :-

वार्षिक दान देगे। जिनपदरुप लक्ष्मीजी को वरेंगे लक्ष्मी

चचला, चपला, होती है । ईसी को भी कीर्तिस्थानमें स्थिर बना दी ।

(५) पुष्पमाला :–

त्रिभुवन के लोग प्रभुश्री की आज्ञा शिरोधार्य करेंगे । सारा जगत यशकी सौगधसे सुवासित वन जायगा । '

(६) चद्र '–

प्रभु के सहचार्यसे सब कोई अकलंकित दशा प्राप्त करे, चद्र को भी निष्कलक बनने का मन होता है न। भविकुमुद प्रभुश्री के दर्शन मात्रसे ही विकसित होते हैं ?

(७) सूर्य –

अधकार को दूर करनेवाला । श्री नाथ अज्ञान को दूर कर फेंक देते हैं । सूय से कमल विकसित होते हैं । भव्यात्माएँ भगवत कृपामे खिल उठे । प्रभुश्री के पास प्रतिदिन प्रकाशित सूर्य भी घूधला वन जाता है ।

(८) ध्वज '-

प्रभु श्री कुलके ध्वज । कैवल्यज्ञानके वाद धर्मध्वज इन्द्रध्वज आगे ही आगे वढता रहेगा । ध्वज भी सूचित करता है कि त्रिभुवनमे सव श्रेष्ठ महन्त यह एक ही है ।

(९) कुंभ –

रत्नत्रयी का वना हुआ महाप्रासाद । इस के कुभ-कलश -शिखर महाप्रभुश्री हैं ।

(१०) पद्मसरोवर '–

नव कमल-सुन्दर-सुहावना-मृदु नवनीत जैसे, सुवर्ण के देव रचते हैं । उन पर पाद रखकर मगल प्रस्थान होता रहेगा। ज्ञान-जल-कैवल्यज्ञान के तीर पर ही कमल ताजे ही देखते होगे न ?

(११) क्षीरसमुद्र :-

गुण रत्न गभीर प्रभुश्री । क्षीर समुद्र जैसे मिष्ट स्वभाव वाले, प्रभुश्री का अभिषेक स्वनीर से हो ऐसा समुद्र चाहता है।

(१२) विमान :—

चारों निकाय के देव प्रभुजी की सेवा करेंगे ।

(१२) रत्नराशी :—

वार्पिक दानमें ढेर के ढेर दान मे देगे । देवरचित तीनों गढ पर बैठकर स्वामीश्री देशना देगे ।

(१३) निर्धूम अग्नि :—

कर्मरुप काष्ठोको भस्म कर देगे । स्वामीका आत्मा कर्म रहित शुद्ध कचन जैसा बनेगा । वहुत भव्यों को शुद्ध बनाअेगे । प्रशम में क्या कभी धूम होता है ? नही होता है सचमुच ।

चौदह स्वप्नोंका एकत्रित फल—स्वामि चौदह राजलोक पर सिद्धशिला के स्थान पर बैठगे । चौदह स्वप्न विशद गुण लक्षण युक्त और तेजस्वी होते है । ऐसे नाथ के श्री नाथजी की बराबरी करना, वह है सिर्फ बालिशता न ? आज्ञा पालक ही सार्थक बनेगा न ?

१३४ 'प्रभुजी गृहस्थ जीवन कैसा व्यतीत करें ?

कर्म की गति अद्‌भुत है । तीर्थंकर देवों को भी शेष बचे हुए कर्मो को उदासीन भाव से भी भोक्तव्य कर्म भुगना पडता है । इसलिए पुण्य भी एक प्रकार की संसार की जजीर है । भगवन्त ऋषभदेवजी से इन्द्र प्रार्थना करते हैं, हे नाथ, व्याह कर्म-विधि करने का यह हमारा कल्प है, प्रथम

तीर्थंकर के लिए। स्वामि का मुखारविंद म्लान बन जाता है। दृष्टि नीचे गड जाती है। मन मे कर्म सत्ता के विचारो का मण्डल बन जाता है। हम तीर्थकर बनेंगे, इसी ही भव में। अवधिज्ञान साथमे लेकर आते तब भी ये अशुचि भोग हमे घसीरते ही रहें ? भोगावली कर्म भी बडे जोरदार !

मौन मे सम्मति मनाई। लग्न क्रिया समाप्त हुई। परतु प्रभुजी का वैराग्य बढता ही जाता है। देह भोगोपभोग मे आ जाता हैं। दाक्षिण्य से कतिनय बन विहारादि क्रियाएँ होती रहती हैं। परन्तु मन वैराग्य से तरबतर हो रहता है। समय की राह देखने हैं। समय पर त्याग वही है ध्येय।

ऐसे प्रभुजी औचित्य की दृष्टि से, ससार व्यवहार-सगे सबधीओ के साथ सबध का पालन भी करे। ६४ कलाएँ पुरुषो की ७२ कलाएं स्त्रियो की सीखाये। वह तो है ही अपेक्षाकृत धर्म-प्रवर्तक औचित्य की आचरण कला न ? प्रथम तीर्थकर धर्मशासन प्रवर्तावें। उसके पहले अनभिज्ञ लोगो को औचित्य व्यवहार भी समझाना पडता है न ? नहीं तो भीतर क्लेश ककाश कर बैठें और मर भी जावें। क्लेश-द्वेष के बधन के कारण दुर्गति में भी जाय। इसलिए तीर्थकरो के औचित्य से बनते हुए कार्यों को उपादेय के समान बलात्कार पूर्वक मान लेना नही चाहिये।

भगवत श्री महावीर देव ने गर्भ मे अभिग्रह धारण किया—माता पिता की भक्ति के कारण, परन्तु इस के पीछे औचित्य पालन और अनौचित्य परिहार सुझाऐ कार्यों की शिथिल परिस्थिति इत्यादि। बातें क्या विचारणीय नही है क्या ? अनुकरण न होने पर भी औचित्याचरण करना ही हो,

तो प्रतिज्ञा करो कि माता पिता के स्वर्गस्थ होने के बाद, तुरन्त ही संयम लिया जाय। क्या कैसा है अनुकरण ? आगे का अनुकरण साढे बारह साल का कठिन घोर तप और ध्यान। प्रारम्भ में ही वर्षीदान, ये बाते भूल जाने ही दीजिये। शक्ति के बाहर की बात कहोगे। वसा ही बनता है। प्रभुश्री का जीवन, ज्ञान-जीवन उपयोगात्मक उच्च कोटी का वैराग्यशील जीवन है।

१३५ "प्रभुश्री का दीक्षित छद्मस्थ जीवन।"

दीक्षा के बाद प्रभुश्री परिषह उपसर्ग सहन करते हुए ध्यानस्थ रहे। पलांठी लगाकर या जधा जमीन पर टेक कर बैठते नही। खडे कायोत्सर्ग मुद्रा में रहे। गाय दोहन की क्रिया के तरह उत्कट आसन रहे। कैवल्यज्ञान की प्राप्ति तक खडा रहे। निद्रा भी कभी कभी परेशान करती रहे। बारह वर्ष का छद्मस्थ काल श्री महावीर का २ घटी का पर्यन्त का सिर्फ काल आयी हुई निद्रा का। प्राय: हमेशा मौन सर्वथा। प्रभु श्री ऋषभदेवजी स्वामि का एक हजार वर्ष का छद्मस्थकाल। एक अहोरात्री का समय निद्राका भिक्षा में भी कोई समझता भी नही है। चार हजार साथी, तापस बन बैठे। परन्तु प्रभुश्री भिक्षा विधि बताते नहीं है। परोक्षरीति से भी भिक्षा मार्ग किसी को भी समझाते भी नहीं है। चाहे, मास के पीछे मास बीतते चले। अन्तमें तेरह माह बनते चले।

वडोंका संकेत बडे पहचान सकते है। अरव के अरब वर्ष बीत गये। परन्तु वर्षी तप सूर्य के समान तपता ही रहा। एकांतर एकासना अगर बेसना करके। परन्तु ये उदाहरण और प्रतीक तो

हैं, श्री नायके तपका न ? लब्धी भी कैसी ? चाहे इतना आहार-पानी हो, सिर्फ अजली मे समा जाय । शीखा हो जाय । परन्तु एक कण या विन्दु नीचे न गिरने पाये । अपितु विषम कालकी विषमताको पहचान कर भगवन्त महावीरने सपात्र धर्म स्थापित किया है ? शास्त्र ही मार्गदर्शक बन सकता है । मुँहके गप्पे नही । गलत अर्थघटन भी नही । पूर्वापर सम्बन्ध रखते हुए आत्माका हिताहित सोचकर अथका विधान होता है ।

चार ज्ञानोके मालिकके जीवनको, जीवोको इच्छाके अनुसार अर्थ करने वाले महा गुनहगार बनेगे । परम प्रभुश्रीके मार्गके, आगम ज्ञानके, प्रकृति तन्त्रके, शुद्व सही गणितके उलटा अर्थ करनेवालोको सख्त नसीहत भुगनेके लिए तैयार ही रहना पडेगा । नर्क नही है या अष्टमी भी नही है । बोलनेवालोंको वहाँ ही सब प्रकारकी समझ पडेगी ।

१३६ श्री तीर्थंकर देवोका उपकारक आचरण

मुनीसुव्रत स्वामी घोडेको बोध देने के लिए सारी रातमें योजन के योजन काटके पधारे । भगवन्त महावीर रात ही रातमें अपापापुरी पधारे । उनके लिए कोई आगमकी मर्यादा नही होती है । अरे ! स्वामिकी आज्ञाके मर्मको पहचानने वाले आगम विहारी श्री वज्रस्वामि भी विद्याका उपयोग शासन प्रभावना के लिए करे । शासन प्रभावनाका अर्थ ? आत्माओको शुद्ध —सनातन—सन्मार्ग पर ले चलनेका न ? मुक्तिपथकी ओर अग्रसर ही कराना न ?

भगवन्त महावीर किसीको भी नही । राजा श्रेणिक जैसा परम भक्त को भी नही, परन्तु एक श्राविका सुलसाको

"धर्मलाभ" कहलाते हैं। ७०० शिष्य के अधिपति अंबड तापस के साथ। इसके पीछे, अभी श्रावक बने हुए, अंबड को दृढ करने की भावना होगी न ? और वही श्राविकाका श्रद्धा धन कितना उज्जवल ? क्या उसकी दृढताको इन्द्र भी परास्त कर सके ?

महाज्ञानीओं का गर्भित आशय भी समझ में नहि आ सकते हैं। फिर कवल्यज्ञान के मालिक की तो बात ही कहाँ ? चराचर विश्व को हस्त-जल को भाँति, निर्मल दृष्टि से देखते श्री तीर्थंकर देवों की वात ही क्या करें।

१३७ 'आगम वाचन के लिए बंधन क्यों ?"

वन्धन तो हित के लिए ही होता है न ? चोट पहुँचे हुए पैर को मलम पट्टी अच्छी न ? भगे हुए हस्त को गले में झोली अच्छी न ? भयकर खूनी को लोहे की जंजीर जनहित के लिए ही न ? जानवर के लिए क्या खूंटा अच्छा न ? शाम के समय खुंटे पर आनेवाले को घास-चारा पानी मिले न ?

नौकरी में वन्धन ? व्यापार में भी नियमों का वन्धन ? डोकटर वनने के लिए डिग्री का बन्धन ? पर राज्य में जाने के लिए परमीट का बन्धन ? बस जहाँ देखो वहाँ बन्धन ही वन्धन ?

क्या न चाहिये सिर्फ धर्म में ही बंधन ? क्या न चाहिये बंधन आगम वाचन में ?

दवाइयाँ डॉकटर के प्रीस्क्रिप्शन के अनुसार ! हक-दावा अरजी वकील की सलाह के अनुसार। मालीश-उस्ताद

की आज्ञा के अनुसार। कुस्ती मल्ल की सूचना के अनुसार। क्या सिफ धर्म मे ही गुरु आज्ञा की आवश्यकता ही नहीं। शास्त्र आज्ञा मानना ही नही, "वहाँ अच्छी चीज सबो, के लिए" की मूर्ख की वडबडाट सक्कर जैसी मीठी लगती है। अगर खाने दीजिये टाईफोड के दर्दीको। क्या परिणाम होगा ? नीबू गुणप्रद है, परन्तु दीजिये फुले हुये दर्दी को ? क्या होगा ? मिठाई अच्छी है, अपितु दीजिये बुखार के दर्दी को ? क्या होगा ? सन्नीपात। बुखार बढ जाने से सन्निपात हो जायगा।

वस ! आज चारो ओर सन्निपात हो गया है। बिना अधिकार के अभ्यासके कारण। बिना गुरु के दिशासूचन, चाहे जैसा हो, चाहे जमो पढते का भी हो, अपितु उसमे से उद्भव होगा सिर्फ बडबडाहट का उत्पात का ही। यह है सिर्फ पागलपन का चिह्न, केवल आत्मा की पागलता। त्रिकाल-दर्शी सर्वज्ञ भगवंतो के शुद्ध सिद्धांतो का अपलाप। कहाँ तकता ? सर्वज्ञ नही है, सर्वज्ञ नही हो ही सकता।

अगर सर्वज्ञ होगा, तो अबके पीछे के कालमें। धर्मास्ति-काय नही है। अधर्मास्ति काय नही है। जबकि सापन्स इधर के गहरे धर्मा की वार्ते कर रहा है। 'महाविदेह' भी नहीं है। शास्त्रमे सब गप्पे। आजके जमानेमे अंधश्रद्धा का हमारा अघापा ही सच्चा। गप्पे सही हैं, तद्दन सही बातें सच्ची नही। ए अनधिकृत आगम पठनका मारक-घातक-भेदक

फल । यह है, आजके शब्द पंडितों की पागलपनसे भरी पंडिताई ।

सही बात जरा समझ लें । साधुजन आपकी कक्षाके अनुसार आपको सब कुछ समझानेके लिए तैयार हैं । ४५ आगम समूह समझाने के लिए तैयार है । उत्साह भरे हैं । पात्र आत्मानंद अनुभवते है । परन्तु, ना, हम तो अपनी रीतिसे ही पढेंगे । मन मोजीला उडांग उटाँग–उल्टा अर्थ निकालेंगे-लोगोकी श्रद्धा तोडनेके लिए यत्न करते रहेंगे, उनके गलत पथ पर ले जायेंगे । युगका विष पान कराअेंगे, दुर्गतिमें जायेंगे अपने साथ बहुतोंको भी ले चलेंगे ।

नहीं तो आत्मा और पुद्गल । चेतन और जड । चेतन पर जड़ की तीव्र पकड । उसीमेंसे छुटकारा पानेका सन्मार्ग । सन्मार्ग पर जाने के वाहक–साधक वाहन–साधन उनके प्ररुपक सर्वज्ञ–भगवंत–मार्ग प्रचारक अतिशयज्ञानी गणधरादि सूरि पुरदर ! मार्गस्थ महात्मा उन सबोकी हँसी–मजाक अभावजनक शब्दोका भी उच्चारण भी हो सके ? निःस्वार्थता मानकीर्तिका अभाव । सिर्फ जन कल्याण की शुद्ध भावना । ऐसे उच्च गुणों के मालिक । जिसमें, 'ना' कही उसमें एकांत हित, ऐसा क्यो न माना जाय ?

आगमों में से, उद्धरे हुए विवेचन युक्त प्रकरण ग्रथ, तैयार है । क्या पढने चाहते हैं ? रे ! यह तो है सद्गुरुजी को हलकी कोटीमें ले जाने की युक्ति, अज्ञानीजनोंमें ! जीवविचार या नव तत्त्वोंका सामान्य अभ्यास भी नहीं करना चाहता है । ठीक । सद्बुद्धि प्राप्त करो ऐसे जीव, और आ जाओ सन्मार्ग पर ।

सूर्यका प्रकाश अंधेरेको दूर करता है। समझ पूर्वकका ज्ञान अज्ञानको नाश करता है। शिक्षा या ने उत्थानकी सीढी। यह सीढी सडे हुए वांस (बम्बूकी) न होनी चाहिये। शिक्षा आत्माको अधो पथ पर लेनेवाली तो नही होनी चाहिये। क्या ऐसी शिक्षा शिक्षा कही जा सकती है? जिससे आत्मा या समाजका पतन होता है, वह तो केवल अंधकार-अज्ञान। अंधकारको प्रकाश नही कहा जा सकता। यह तो राग-द्वेष और मोहमें बडे जोरोंके साथ लपेट जाओगे। इस महा अंधकार अज्ञानको कोई चतुर जन शिक्षा न कहेंगे अगर वह कहे, तो प्रथम नंबरका मुर्ख कहा जा सकता है।

इसलिए शिक्षा माने नम्रता। आटेकी कणक जैसी पानी से नम्र बनाती है। वैसे रोटी नम्र मुलायम बनेगी और मधुर बन पायेगी। वैसे ही बालक या युवक जैसे जैसे शिक्षा अधिक से अधिक लेते चले, वैसे ही वैसे उनमें सरलता, नम्रता और विवेकपूर्ण मधुर बाणीका भण्डार पूर्ण बनता रहेगा। नागरिकताका पूर्ण आदर्श बनेगा। परको सहायक, गरीबोंको सहायक, दीन-दुःखियोके प्रति दयालु बनेगा ही। आर्य संस्कृति तों उसके दिलमें होगी ही। आर्य संस्कृति समझना हो, तो उसको दृष्टांत के रुपमें प्रतीक समझना।

ऐसी शिक्षाका विरोध साधु न करे। साधु या ने समाजका कल्याण चिन्तक! साधु माने शुद्ध तारक बुद्धिका प्रवंतक। साधु चरणों में वन्दना!

विभाग ५ वाँ

१३६. "जैन शासनका साहित्य"।

साहित्यका अर्थ होता है 'साधन'। यह अर्थोमे पुस्तकों को भी साहित्य कहते है। आत्माका मुख्य गुण ज्ञान है। ज्ञान के साधनमे पुस्तके सम्मिलत हो जाता हैं। इसलिए पुस्तके, पोथियाँ, ये भी साधन हैं। परन्तु यदि वे आत्माके ज्ञान—गुण को विकास करने वाले हो तो। यह ग्रहण करने योग्य है यह कार्य नही करना चाहिए। ऐसा विवेक उत्पन्न करने वाला ही ज्ञान है। और शेष सभी मिथ्या ज्ञान है। आत्मा को डूबा देनेवाला ज्ञान।

श्री जैन शासनमे ज्ञानग्रन्थ विपुल प्रमाणमे भरे पडे हैं। ४५ आगम तो हैं ही। हस्तलिखित और छपे हुए। सुवर्ण स्याहीसे रौप्य स्याही से भी लिखित है। निर्युकित ग्रन्थ भी वैसे ही आलेखित हुए प्राप्त हैं। भाष्य तो लाखो श्लोको अधिक से अधिक प्रमाण मे उपलब्ध हैं। चूर्णिकाएँ भी हाजिर हैं। सटिक ग्रन्थ—आगमके भावोको स्पष्ट करते, बहुत है।

इस के अलावा व्याकरण-छन्द-चम्पू-गद्य पद्य-प्राचीन-न्याय नव्य न्याय का साहित्य बहुत विशाल और विशद है। लक्षणो के वडे विधानो सिर भी धूना ? वैसे सुरम्य ज्ञान गभीर हैं। जैनाचार्यो ने किसी भी विषय मे विद्वता पूर्ण महान ग्रन्थ लिखे हैं। दार्शनिक क्षेत्र मे भी छ दर्शनो की विशद समीक्षा कर के ज्ञान वताया है। ज्योतिष-यन्त्र-तन्त्र मे

भी कुछ भी छोड नही रखा है। विज्ञान-खगोल-आकाशी पदार्थो के पुस्तकों का भाँडार भरपूर है।

इन सबों के पीछे ध्येय सिर्फ ज्ञान प्राप्त कर के आत्मा को संसारमोह से पर बनाने का है। मुक्तिमार्ग का मुसाफिर बनाने का है। अजन्मा-अनन्त शांति का भोक्ता बनाने का है।

१४०. "श्री ज्ञान पंचमी पर्व।"

यह महा पर्व ज्ञान की आराधना का है। कार्तिक सुदी पचमी। द्रव्य से भक्ति करो। अष्ट प्रकारी आदि पूजा पढाने पर, रुपये मुहर—मोती हीरा इत्यादि भेट देकर भाव से पूजन कीजिये। नया ज्ञान प्राप्त करने का संकल्प कर के पूजन करो। साधु—साध्वीजी, सार्धमिकों को धार्मिक अभ्यास की अनुकूलता कर दीजिये। जो कुछ साधन चाहिये हाजिर कर दीजिये। आगम—पुस्तके लिखवा कर सुयोग्य स्थल में सुरक्षित कीजिये।

१४१ "श्री मौन एकादशी पर्व"

मागशीर्ष सूदी ११। १५० कल्याणकना महापर्व। अविरत श्री कृष्ण वासुदेवने भी आराधन किया था। श्री सुव्रतसेठ सुश्रावककी आराधना अद्‌भुत है। त्याग वैराग्यकी बोछारोंसे पूर्ण यह कथा साहित्यका अंग बन चुका है। उपवास-पौषध —मौन—१५० नोकारवाली आदिकी आराधना आत्मतारक और मनोरम्य भी है।

१४२ "श्री पोष दशमी पर्व"

मागशीर्ष वदी १० (मारवाडी पोष वदी १०) श्री पार्श्वनाथ भगवंतका जन्म कल्याण व्यापक पर्व है। ६

तीन एकासणा । ९ मे सिर्फ सक्करका जल पीना । १० में खीरका एकासणा ११ मे पूर्ण भोजन । प्रथम दो प्रायः ठाम चोवीहार २० नोकारवाली सुबह-शाम प्रतिक्रमण तो किसी भी आराधनामे होगा ही न ?

१४३ 'श्री मेरुतेरस" ।

पोष वदी १३ हमारे इस कालके आदि बाबा श्री आदीश्वरजी दादाने उस दिन पर निर्वाण पद प्राप्त किया । उस दिन पर देरासरो मे मेरुपर्वत का प्रतीक रखा जाता है । आयबिल एकासणासे आराधन होता है ।

१४४ । "श्री अक्षय तृतीया" ।

जैन शासनमें जगप्रसिद्ध त्योहार १३ माह के उपरातका, एक दिन के बाद उपवास । ऐसे दीर्घ तपका पारणा बडे हिस्से मे पालीतानेमे करते है । गन्ने के रससे वैशाखकी सुदी ३ के दिन पर । आखरी दिनोंमे २ ३ ४ ८ आदि उपवास करते हैं । तारक गिरिराज पर चढे । भावना बढे । कर्म पीछे हठ करते जांय । श्री आदीश्वरदादाकी आराधना करे, मोह-राजा कम्पे । आत्मानदका सगीत गु जन हो जाय ।

कनई श्रद्धालु दिल्ही के पास हस्तिनापुर पहुंच कर वहाँ पारणा करते है । श्री आदीश्वर दादाने वहाँ पारणा किया था । उक्त मान्यताके आधार पर श्री श्रयास गन्नेका रस वहोरावे, श्री प्रभुजी को 'पारणा' भावसे कराते हैं ।

भेट सोगादोका छोर नही । भाई और बहनों का उत्साह अन्यत-अमीमित । 'पारणा' करावे और धर्मपसली भी दे । सगे-सबधी भी दोडते आ पहुंचे । कोई दर्शनार्थे और कोई

सुखशाता पूछनेके लिए आते है और अपने दिलमें आनंद मनाते है ।

१४५ "श्री दीवाली का पर्व"

दीपावलीमें प्रत्येक गृहमे दीपक प्रगटते है । ये, तो है, आत्मा की ज्योत । हमारे शासनपति मोक्ष सिधारे। भावदीपका अस्त हो जाने पर द्रव्यदीपकका प्रतीक प्रकटाते है । प्रकाशसे श्री नाथ की तारक आज्ञाको पहचान लो । मोहको मारो । श्रद्धाका प्राकटय करो । संवर भावमें आओ। आश्रवको दूर करो । मुक्ति की भावना भावो ।

छठ्ठ करे भाविक । 'गणणु' गणना करे श्रावक । रातमें देववन्दना होती है । नोकार वाली ६० गिनते है । श्री नाथ का जय जय उच्चार करते है । दुनिया के रंग राग विसर जाय ।

१४६. "नया वर्ष का प्रथम दिन"

कार्तिक सुदी प्रथमा १ नये वर्ष की नवलिका । श्री नाथ का शरण । आज्ञाका पालन । पवित्र विचार । ससार का स्पर्श नही । अब मुक्ति हाथवेत मे । श्री नाथ का नाम हृदय में धारण कर लो । हो जाओ बुद्धि का सुधार । देव-दर्शन-परस्पर का जुहार-प्रणाम । साधर्मिक वात्सल्य की विकसित भावना ।

बडी सुबह नवस्मरण-श्रवण । लब्धिनिधान-गुरु गौतमका रासा सुने और आनन्दे । श्री महावीर प्रभुश्री के प्रथम गणधर । 'अणहूंतु दिये' जिस को दिक्षा दे, उसी को कैवल्यज्ञान प्रकटे । श्री गणधर देव को वह प्रकट हुआ था । श्री नाथ के विरह-

विलाप से कार्तिक सुदी १ के दिन । वह था बहुत मननीय दिन ।

१४७ ।। "तिथियॉ-पर्व तिथियाँ"

सबल-सुयोग्य-आत्माकी धर्म आराधना सर्वदा-सर्व काल। वही कक्षा है, साधु साध्वीजी सस्याकी । सुश्रावक शक्य रीतिसे भावात्मक आराधना प्रतिदिन करनेके लिए उत्साही बने रहे। बाह्य तपादिक प्रतिक्रमणादिक-पौषधादि सामायिक सर्व कोई सदैव न भी कर सके। आराधना के बिना जीवन व्यर्थ, मानव-जीवन सर्वांगी सर्वविरतीके स्वीकारके लिये शक्य न बना सका। इसलिए ही श्रावकत्वमे शक्ति अनुसार शास्त्राज्ञा अनुसार विधिपुर आराधना करनेका भाव तो होता है न ? अगर सदैव न कर सके तो पर्वतिथि पर तो सही न ?

द्वितीया-पचमी-अष्टमी-अेकादशी-चतुंदशी-पूर्णिमा-अमावास्या-इत्यादि बारह तिथियाँ। जिनेश्वरदेवोकी कल्याणककी आत्म कल्याणक तिथियाँ । इन दिनोमे प्रतिक्रमण पौषध-एकासणा तप करनेके लिए श्रावक लालयित हो जाता है । ब्रह्मचर्य पालन तो होता ही है ।

इसके अलावा अपनी प्रथम महान् यात्राका दिन । उपधान तपका या सघ यात्रा दिन उत्सवदिन समकित या बारहमे से किसी भी व्रतका उच्चारणका दिन । इत्यादि दिनाकी आराधना, पुण्यात्माएं आराधना करके भव पार करना चाहते हैं । जीवनको सफल करते है । इसके सिवा छ अट्ठाईकी आदि आराधना सुप्रसिद्ध है । सिध्ध बननेके लिए। जमानेकी हवाने, आंग्ल अेज्युकेशनके वातावरणने, आराधनमे कमीना ला दी है । अवश्य, मातापिताकी बेदरकारी जिम्मेदार तो है ही । बचपनसे ही संस्कार सिंचन न करनेका परिणाम

है । अपितु ज्ञान-चक्षु खुलते नहीं हैं । रे, समझते हुए, बे-ध्यान रहते है । बहुत दूषण उद्‌भव हुए है । व्यवहार भी विगडा है । चारित्रका भी ठिकाना नहीं रहा है । अपितु बच्चोंको, यह विशिष्ट तिथिके आराधनमें संम्मिलित करनेकी इच्छा नहीं होती है । काल ! तेरी भी बलिहारी है न ?

१४८ "पच्चक्खानमें क्या आता है ?

तिथिके दिन पच्चक्खान आवश्यक माना गया है । प्रत्याख्यान संवर भावका है । आश्रव-आनेवाले कर्मोंकी रुकावट करनेका अमोघ उपाय है । अमुक-समय मर्यादा तक अमुक चीज-वस्तु की त्याग भावना रखना । कतइयोंकी मर्यादा लिमिट भी बन्धा जाती है ।

सूर्योदयके वाद ४८ मिनिट तक अशन पान-खादिम-स्वादिम चारोंका त्याग समझ पूर्वका वह त्याग नोकारसी । समय हो जाने के वाद मुष्टि बन्द करके तीन नोकार गिनकर पच्चक्खाण पारे ।

पोरसी—सामान्यतः सूर्योदयसे तीन घन्टों तकका—चार आहारोंका त्याग । चार आहार इस तरह—

अशन—दाल, भात, रोटी, शीरा, चाय, दूध-भाखरी इत्यादि ।

पान—निर्मल पानी-या भाँति भाँतिके पानी ।

खादिम-वादाम, काजू, पिस्ता, अखरट, आदि मेवे आदि ।

स्वादिम—तज, अेलायची, ताँवूल, लवंग, इत्यादि ।

सार्धपोरसी-४।। (साढे चारह घन्टोंके वाद) पुरिमुड्ढ छः घन्टोके बाद । निश्चित समय अर्ध दिनमान । सूर्योदयसे सूर्यास्त तकके समयका आधा हिस्सा । अवड्‌ढ-सूर्यास्त पहले

प्रथम पहरमे ।

वैसणा-दो समय पक्का ही भोजन लेना । आसन पर बैठके । पानी उबला हुआ-एकासणा-सिर्फ एक ही बार । आयबिल-सिर्फ भुंजा हुआ अनाज एक ही बार खाया जाय । तैल, घी, आदि विगयकी चिकनाहट न ले । दूध दही-सर्कराका अभाव । हरि सब्जी आदिका तो त्याग ही होता है । न धनिया जीरा, मरी मसाले मिर्च इत्यादि । आज कल मरी उपयोगमे लेते हैं । बलवन-पक्का निमक उपयोगमें लिया जा सकता है । उपवास-रात्रि-दिनका चार आहारोका त्याग वही है चौवीहारा । सूर्यास्त पहले पानी पीया जाय तो तिविहारा । छट्ठमे दो उपवास । अट्ठममे तीन । अट्ठाअीमे आठ उपवास करे ।

छट्ठ याने छ समयका आहार छोड दे । अट्ठममे आठ बार का । किस तरह ? प्रथम एकासणा । बादमे तीन उपवास । पारणे एकासणा-३×२=६+२=८ । अपितु सिर्फ तीन उपवासोको भी रूढीगत रीतिसे अट्ठम कहा जाता है ।

ये सब पच्चक्खाण अभग रहे, अखड रहे, किसी भी भूल हो जाने पर भी । इस मर्यादाको पच्चक्खानके आगार कहते है । मनके भाव सच्चे अखडित रहनेके कारण ही ।

'अन्नत्यणाभोगेण' ख्याल ही न रहा । भूलसे, हमेशाकी आदत के अनुसार कोअी भी चीज मुंहमे डाल दी, पीछे याद आ गया । तुरन्त ही याद आने पर विसर्जन कर डाले । देरी हुए याद आ जाय ऐसा भी बने । गुरुके पास शुद्धि करावे । 'सहसागारेण' यकायक बारीशकी बूंद मुंह मे गिर गई इत्यादि । 'महत्तरागारेण'-कोई भी श्री सघ आदिके-शासनके महान कारण के अनुसार गुर्वादिकी आज्ञासे पच्चक्खाण में परिवर्तन करना पडे । "सव्वसमाहिवत्तिआगारेण"-आत्माकी

भयंकर असमाधि होती हो। भयंकर रोग, पागलपन–उन्माद आदिके कारण। ये है मुख्य चार आगार। जिन प्रसंगोंमें पच्चक्खाणका भंग नही होता है। लगी हुई अतिचारकी, गुरु आज्ञाके अनुसार तप-स्वाध्याय आदिसे शुद्धि अवश्य करनी चाहिये।

अन्य आगार—वैसणाका एकासणेका–उपवास आदिके होते हैं। गृहस्थ आते–स्थलांतर इत्यादि। पैर ऊँचा नीचा करना पडे।

गुरुजीके आने पर भावसे खडे हो जाय। किसी भी कारणवश गोचरी शेष रह पाओ और उसीका उपयोग भी करना पडे। पहला और आखरी आगार खास करके साधु–साध्वीजी के लिए है।

आयंबिलके आगार लेपित आहार आ जाय। गृहस्थ संसृष्ट उत्क्षिप्त विवेक पडुच्चमृक्षित–पारिट्ठावणिया।

जलके–लेपित अलेपित–अच्छ–बहुलेपित्त–कणीयायुक्त। अल्पकणिया–युक्त। पाणहार–पच्चक्खाण शामको लीया जाता हैं? सिर्फ पानीका आहार मुक्त था, वह बन्द हो जाय। शामके वक्त चोविहारमें चारों आहारका विशेष त्याग होता है। तिविहारमें तीन आहार बन्द। पानीका उपयोग आवश्यकता होने पर हो सकता है। उक्त जल भी रात्रीके बारह के बाद बन्द किये जानेकी प्रणालिका है। अन्य मुढसी–वेढसी इत्यादि सुन्दर पच्चक्खाण भी है। खा पी लेने के बाद मुष्टि बन्द करके जहाँ तक नवकार न गीनूं वहाँ तक सब कुछ बन्द। वेढसीमें अँगुलीका एक अँगुलीसे दूसरी अँगुली तक घुमा जानेकी समय मर्यादा है। किसी भी रीतिसे जीव–आत्मा त्याग-तपके पंथकी ओर अग्रसर हों। अनादिकालकी आहार संज्ञा–सर्व दुःखका मूल, कम हो जायें। यह है योजना

पच्चक्खाणमें महर्षिओकी ।

१४६ "कर्म बंधके हेतु"

पच्चक्खाण आश्रवको कर्मबंधनको मिटाते हैं । कर्मबन्धन के मुख्यत चार हेतु हैं । मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग ।

मिथ्यात्व—

सत्यको असत्य मानना । असत्यको सत्य मानना संसारको सुखकर या अच्छा मानना । सुदेवादिको न मानना कुदेवादिको मानना । मोहमे फँसे रहना ।

अविरति—

त्याग बुद्धिसे त्याग करने योग्यका त्याग करना संसार मात्र त्याज्य । उसमे अभक्ष्य अपेय अकार्य विशेषत त्याज्य । उसीका त्याग न करनेसे कर्म बन्धन होता ही रहे न ? यह सब त्याग न करना वे है अविरति ।

कषाय—

बहुत हडा कर जाने वाले । क्रोध-मान-माया-लोभ चारोकी चांडाल चौकडी । सारे विश्वको हैरान-परेशान करने वाले । आत्माके अनादि कालके शत्रु । ढोंगी मित्र बनकर बैठे हुए । उत्पातीया और संहारक कैसे कर्म-बन्धन करावे ?

योग—

मन-वचन-कायाका दुरुपयोग । गलत विचार । गलत ध्यान । अघटित बोलना । बना कार्य भाषण । शरीरका उपयोग परको परेशान करनेमें । बिना प्रयोजन चलना या बैठे रहना । इत्यादि, समझ न रखे तो प्रत्येक क्षणमे बन्धन होते रहते हैं ।

१५० "कर्मकी रुकावट करनेका उपाय-साधन" ।

'संवर भावसे रहना रे साधुजी ! ।' पाँच समितियाँ, तीन गुप्तियाँ, १० यति धर्म—२२ परिषह सहन करना । बारह भावना भावते रहना । बारह प्रकारका तप करते रहना । इत्यादि कर्म निरोध करने के कारण है । पालन करे, वह प्राप्त करे, माननेवाले जागृत बनेंगे । सग्राममें शस्त्रधारी और बलवान ही विजयी होते है न ? अनादिके शत्रु महा मोह और उसका परिवार-राग-द्वेषादि । शस्त्र भी उनके लिए तीव्र और तेजस्वी होने चाहिये न ? परमप्रभुश्री महातारक अरिहंत देवोंने बताये है ।

१५१ "छः लेश्या" ।

लेश्या है आत्माके परिणामकी अध्यवसायकी सूचक तीव्र दुर्भाव है, या उच्च कोटिका भाव है । यह सामान्यतः बाहरकी प्रवृत्ति परसे ही समझा जाय न ? एक उदाहरण समझ लें । छः मानव वनमें आये । जॉबून वृक्ष देखा । क्या जांबून खानेकी इच्छा न हो जाय । क्योंकि खानेकी आदत तो अनादि कालकी है ।

(१) कृष्णलेश्या—

महाक्रूर-दखनेमें भी काला कलूटा मानवी । कहता है, लगाओ कुल्हाडा मूलमें-गिरा दो वृक्षको नीचे । खाओ जाँबून ! आनन्द मनाओ ।

(२) नीललेश्या—

पहले से ठीक । परन्तु बुद्धि का बैल । बडी बडी शाखाऐं काटनेके लिए कहता है । लगाओ ढेर ।

(३) कापोतलेश्या—

थोडी सी दया युक्त । रे भाई ! छोटी शाखाऐ काट डालो । ढेर के ढेर तो उन ही पर भी हैं ।

(४) तेजोलेश्या—

जितने झुमखे हैं । उन सबको झिकट्ठे करके-करो ढेर । और मोज उडाओ जाँबूनोकी ?

(५) पद्मलेश्या—

अरे ! भाई । आवश्यक झितने झुमखे गनिमन हैं । सबोको तोड डाल कर क्या काम है ?

(६) शुक्ललेश्या—

देखो भाई । खानेका काम है । सुन्दर पक्के जाँबून जितने चाहिये गितने पेडके नीचे पडे हैं । खाकर तृप्त बनो । बिना कारण महापापसे क्या ?

ये छ विचार धाराएँ बहुत कुछ कह देती हैं । अन्यके अध्यवसायकी अच्छी—बुरी तीव्रताके प्रतीक है । कमसे कम पापोसे जीवन जीनेकी कला बतलाते हैं ।

आजके यह भयकर और क्रूरताके युगमे, विशेपत यह उपयोगी दृष्टात है । मौज शौकके कारण अहिसा तत्त्व बिलकुल भुला गया है । दयाभाव विलुप्त हो गया है । भयकर कर्म बन्धन आत्मा पर हो रहा है । बचे गे वे बलिष्ठ । बच सके उनकी बहुत प्रशसा भी ।

१५२ '१० प्राण ।"

"हान करे जो प्राण हत होगे" ५ इन्द्रियाँ, मन-वचन-काया, श्वासोश्वास और आयुप १० प्राण हैं । उनमें से एक को भी नुकसान पहुँचाया जाय, तो हिसा । अिन दसोके सहारे आत्माका ससार व्यवहार चलता है ।

एक इन्द्रियको ४-प्राण स्पर्शेन्द्रिय, कायबल, श्वासोश्वास, आयुष्य ।

दो	,,	६	उपरके	+ जीभ और वचन बल ।
तीन	,,	७	,,	+ नाक
चार	,,	८	,,	+ आँख
असंज्ञी पाँच	,,	९	,,	+ कान
संज्ञी	,	१०	,,	+ मन

आयुष्य बल-आयुष्यके कर्मदल परमाणु पूर्ण होने पर एक क्षण भी आत्मा देहमें रह ही नही सकती है ।

लोगोकी कहावतमें 'धनको पैसेको' ग्यारहवाँ प्राण कहा गया है । वह पैसे को, मर्यादा से भी अधिक प्रेम सूचित करता है । ऐसे अतिमोही जीवके, पैसे जाते ही उसके दसों प्राण भी नष्ट हो जाते है । मृत्यु हो जाती है । आत्मा शरीरका त्याग कर चला जाता है ?

इन सभी जानने योग्य बातोंसे, 'रागद्वेष-मोह' के त्रिदोष में से मुक्त हो जानेका ध्येय है । सम्यग् ज्ञानदर्शन-चारित्र औषध ही रामबाण है ।

१५३ "६ पर्याप्ति" ।

प्राणोके साथ ही पर्याप्ति पर विचार कर लेना चाहिये । पर्याप्ति उन उन वस्तुओंके पूर्ण की हुई शक्ति । ये शक्तियाँ जीवन जीनेमें उपयोगी है । उनके छ. प्रकार है ।

(१) आहार पर्याप्ति—

आहार योग्य पुद्गलों लेकर रस और खलरुप बनानेकी आत्म शक्ति ।

(२) शरीर पर्याप्ति—

रसके पुद्गलोको सप्त धातुरुप बनाकर शरीररुपे करनेकी शक्ति ।

(३) इन्द्रिय पर्याप्ति—
इन्द्रिय प्रायोग्य पुद्गलोको इन्द्रियमे परिणमनकी शक्ति।

(४) श्वासोश्वास पर्याप्ति—
श्वासोश्वास लेनेकी और छोडनेकी शक्ति

(५) भाषा पर्याप्ति—
वचन या शब्द उच्चार करनेकी शकित।

(६) मन पर्याप्ति—
मनद्वारा विचार करनेकी शक्ति।

एकेन्द्रियजीव —आहार—शरीर—इन्द्रिय—श्वासोश्वास— ४ पर्याप्ति।

विकलेन्द्रि-२ से ४ इन्द्रियवाले— } ऊपरकी + भाषा
—असज्ञी पचेन्द्रियजीव } = ५ पर्याप्ति।

सज्ञी पचेन्द्रिय ऊपर की + मन = ६ पर्याप्ति।

कर्मसत्ता पूर्व पापादि का यह भी एक नकशा है। अपने प्रायोग्य प्राप्त किये पहले, भी जीवो को मृत्युशरण, गर्भावस्थामे ही जाना पडे। परकी शक्तियों, परके हमला का ही यह परिणाम न? प्रकृति तन्त्र बिलकुल न्यायी। जैसा करो वैसा फल भुगते रहो।

१५४ 'देवाधिदेव श्री तीर्थंकर देव"

इन सभी बहुत महीन बातोंको एवम् अत्यन्त आवश्यक बातें अनत उपकारी अरिहत तीर्थंकर देवो के सिवा और कोन कह सकते हैं? आठ कर्मो और १५८ निम्न श्रेणी के भेदोकी प्रक्रिया जो बिलकुल अजायबीसे पूर्ण वैज्ञानिक प्रक्रिया है। उनकी मेथेमेटीकल-सिद्धात पूर्वक गिनती की है। और

गिनती पुरसः परिणाम भी है । उदय-उदीरणा । उदीरणा-माने भविष्यमे आनेवाले उदयको तत्कालीन उदीयमान कर देना । एक कर्म का अन्य रुप में संक्रमण । पाप का पुण्य में और पुण्य का पाप में इत्यादि अजब प्रक्रियाँ । अद्‌भुत रासायणिक आत्मप्रयोग बतानेवाले सचमुच तीर्थंकर देव ही है ।

स्वतः बहुत सहकर घोरातीघोर दुःख सहकर, समतारसमें निमग्न रहकर, प्रशम की वायु से कषायों को दूर फेंक देनेवाले श्री तीर्थंकरों की आत्माएं है । देशनाशक्ति अनुपम और अनोखी-वेनमून होती ही है । परमोपकारिता निःस्वार्थता भी कमाल है । एकांत कल्याणकर मार्ग के प्रणेता । मामका-परकीय ऐसा नाम-निशान भी नही । विश्वविजेता सर्वजीव-त्राता, त्याग उत्कृट, विराग अत्यन्त अपार । समवसरण-ऋध्धि अन्य किसी के अन्य स्थल में नही । रत्न जडित सिंहासन पर बैठे श्री नाथ । देशना दे पूर्ण विराग । "कनक कमल पर पैर पडते जायें, परन्तु आसकित का नहीं कुछ नाम" ६४ इन्द्र सेवक रूपमें रहे । राग मात्र श्री नाथ ना धरे मुक्ति स्वयम् आकर खडी रह जाय सामने ।

१५५. 'ऐसे अरिहंतके मुख्यतः १२ गुण सर्वजगदृष्ट ।"

देवकृत भकित सुरभिमें से प्रकटते प्रातिहार्य-८ सर्व-जन आकर्षक गुण या विशेपताएँ ।

(१) अशोकवृक्ष-

अरिहत के शरीर प्रमाण से बारह गुना ऊँचाई का वृक्ष समवसरणमें ।

(२) सुरपुष्पवृष्टि-

समवसरण और उसके आसपास पंचवर्णवाले सुरभियुक्त

पुष्पो के ढेर लगे हुए ।

(३) दिव्यध्वनि–

वीना बाँसुरी आदि द्वारा श्री नाथकी 'मालकोष' राग की देशना मे पूरकता ।

(४) चामर—

भगवतको दोनो ओर चमर ढलुवाते

(५) आसन—

रत्नयुक्त सिंहासन श्री नाथ को बैठनेके लिए ।

(६) भामंडल—

भगवतके पीछे देवरचित तेजका वलय

(७) दुंदुभि—

आकाशमे बजती भेरी-वीणा । सबको जागृत और सावधान करती ।

(८) छत्र—

हीरा-माणिक-मोतीसे सुशोभित सार, तीन छत्रोंका अधिकार ।

(९) अपायापगमातिशय—

राग-द्वेष-अपाय दु ख है.। श्री नाथ उसका 'अपगम' नाश करे । अपने अपाय तो बीत चुके है । श्री नाथ जहाँ होते हैं, उनकी चारो दिशाओमे १२५ योजनमे न बीमारी, न महामारी-मरकी, न अकाल-दुकाल । परन्तु सर्वत्र हरियाली होती है । कारण क्या । कारण स्पष्ट है ही । पूर्वमे तीसरे भवमे, 'सवी जीव करूँ शासन रसी, ऐसी 'भाव-दया' दिलमे तरवतर भरी है । शासन रसी माने सर्वोत्कृष्ट समाधि-शांति सुखकी चाहना ।

(१०) ज्ञानातिशय–

चराचर विश्वके सभी पर्यायोको जाननेवाले और देखनेवाले ।

(११) पूजातिशय–

परमोच्च कोटीकी देवेन्द्र सेवा करते है ।

(१२) वचनातिशय–

३५ गुणयुक्त वानी । देव–मनुष्य तीर्यंच–सव अपनी अपनी भाषामें समझ सके । चार जोजन तक एक ही रीतिसे सुनी जा सके वैसी । "योजन गामिनी वानी मधुर" ।

१५६. "३४ अतिशय" ।

सबसे अनौखे उच्चे चिन्ह या आश्चर्यजनक ऋद्धि ।

४ जन्मसे प्राप्त–(१) शरीर अद्‌भुत मनोहर सुरभियुक्त–रोग अस्वेद रहित । (२) श्वास कमल-सा सुरभियुक्त (३) लहू– माँस –दूध जैसा श्वेत । (४) आहारनिहार–चर्म चक्षुसे न देखा जाय । बिलकुल देखनेमें भी न आवे ।

१९ देवकृत–८ प्रातिहार्यमें तेजमंडल और दिव्य–ध्वनिके सिवा (६) आकाशमें धर्मचक्र (७) रत्नमय हजार योजन ऊँचा धर्म ध्वज (८) नौ सुवर्ण कमल (९) रजत सुवर्ण–रत्नके तीन गढ । (१०) चतुर्मुख देशना, (११) काँटे उलटे बन जाय । (१२) वृक्ष नमन करते हैं । (१३) सानुकूल वायुका बहना (१४) पक्षी भी प्रदक्षिणा करें । (१५) सुरभियुक्त पानी की छिडक बनी रहे । (१६) मस्तक–दाढी–मुछ–बाल इत्यादि केश नखुन न बढने पावे । (१७) कमसे कम एक

कोटी देवगण सेवामे और उपस्थित रहे। (१८) ऋतुएँ सानुकूल बनी रहे। (१९)

११ कैवल्य ज्ञानके बादके—(१) एक योजनमे सर्व पर्षद कोटी गम भीतर आ जाय देव-मनुष्य-तीर्यंच। (२) सर्व अपनी अपनी भाषामे योजन तक सुन सके। (३) तेजोमडल (४) भगवतकी चारो दिशाओमे २५ योजन और उर्ध्व अधः १२॥ योजन रोगोत्पत्ति नही। (५) सवासो योगन तक वैर-जहर नही। ६ सात इति नही। (७) महामारी-मरकी नही। (८) अतिवृष्टि नही। ९ अल्पवृष्टि नही (१०) अकाल नही (११) स्वचक्र भय नही और परचक्र भय नही।

१५७ "३५ गुण वाणीके"।

सामान्य जनकी वानी हित-मिष्ट-मित-काय साधक होती है। तीन जगतके तारक और मोह मारक, अनिष्टोके घातक, आत्महितके साधक प्रभुश्री की बानीमे बढिये गुण होते है उसमें आश्चर्य भी क्या ? ईनमेसे-गुणोमेसे विशेषणो द्वारा बहुत सी वस्तुएँ जानने योग्य प्राप्त होती है। धर्मोपदेश और सामान्य बातचीतमे भी कैसी भाषामे बोलना-कैसे बोलना-वहाँ भी ध्यान देकर सीख लेने योग्य है।

(१) अक्षर आदिकी सस्कारवाली (स्पष्ट) (२) ऊँचे स्वरमे बोली जाती (३) शोभायुक्त (४) मेघ गभीर (५) प्रतिघोष करती हुई (६) सरल (७) मालकोष रागमे यह सात गुण शब्दोच्चारके है। (८) बडे अर्थ पूर्ण (९) पूर्वापर अविरोधी (१०) वक्ताकी विशिष्ठता प्रतिपादित करती हुई (११) बीना सदेह (१२) परके दूषणसे दूर (१३) मनको उलासती (१४) पद-वाक्य मिलावट करती (१५) अवसरोचित।

(१६) वस्तु के स्वरुपको प्रतिपादित करती (७) न त्रुटक या न अति विस्तृत। (१८) स्व-प्रशसा या पर निदाके बाहरकी (१९) कहने योग्य बातको उत्तम रीति से पेश करती। (२०) स्निग्ध, मधुर (२१) प्रशंसा मिल जाय वैसी (२२) किसीके मर्मको न प्रकट करती हुअी २३) उदार (२४) धर्म-अर्थ-सबध युक्त (२५) विभक्ति-काल-बचन-लिंग संमिलित (२६ विभ्रम-विक्षेप के बाहर की (२७) आश्चर्ययुक्त (२८) अपूर्व (२९) अविलम्बी (३०) वर्णन करने योग्य का वर्णन करती हुई। (३१) विशेषता बतलाती (३२) सत्त्वगुणी (३३) अक्षर-पद-वाक्य की स्पष्टता युक्त (३४) निश्चित ध्येय को सिद्ध करने पर मुक्ताक (३५) श्रोताजनो को आह्लादक।

१५८. "सिद्ध भगवंत"

संसार का अत करनेवाले। सिद्धशिला से परे विराजमान। अजन्मा बने हुए। चार अघातियों का भी अतक। एक ही समय में सात राज को पार करनेवाले। प्रतिदिन अनंत अव्याबाध सुख में विहार करनेवाले। अनंत सुख-शांति-गुण के आलिक।

मुख्य गुणों की गिनती करे तो आठ

अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अव्याबाध सुख, क्षायिक सम्यक्त्व चारित्र, अक्षयस्थिति, अरुपी, अगुरुलघु अवगाहना, अनंतसुख।

आठ कर्मो के सम्पूर्ण नाश होने पर ये गुण स्वाभाविक रीति से प्रकट होते हैं। सिद्ध भगवन्त हमारे लिए प्रेरणा स्थान हैं। आदर्श लक्ष्य है। अिस लक्ष्य के बिना धर्म करणीकी कोई विशेप कीमत नहीं है। मुक्ति प्राप्तिके बिना ध्येय की कोई भी क्रिया प्रायः साफल्य-फ़लवती नहीं है। व्रत-पच्चक्खान,-सामायिक-प्रतिक्रमण-जप-तप सभी प्रकारो की हमें उपयोगिता

है ही। परन्तु वह भी सिद्ध बनने की एक भावना से। यह भावना संसार सुख का त्याग कराती है। सुखों की क्षणिकता-मारकता-महारौद्रता समझाती है।

श्री तीर्थंकर देव, कैवल्यज्ञानी महात्मा, गणधर-सुरीश्वर, साधु महात्मा, साध्वीगण, श्रावकश्राविकागण, सिर्फ सिद्ध बनने के लिए इतने कष्ट उठा रहे हैं। सम्यग् श्रद्धापूर्वक प्रयत्नशील हर कोई महाभाग सिद्ध बन सकते हैं। और बनेंगे भी। सिद्ध भगवन जीवों के समक्ष श्रेष्ठ आदरणीय शिखर है।

१५९ "'तीर्थ' स्थानों की महिमा।"

तीर्थ याने संसार पार करनेका साधन। पार करे वही तीर्थ। किसने पार करे। संसार सागर से। किसको पार करेंगे। जिसको इच्छा होगी उसीको। संसार सागर में डूब जानेका जिसको भय लगेगा उसीको। जिसको ऐसा लगे कि मेरी आत्मा हैरान-परेशान हो रही है। उसीको। आधि-व्याधि उपाधिसे पूर्ण यह संसार बड़ा भयानक है। जन्म और मृत्यु आदिवाले महा रोग है। संयोग के पीछे वियोगका महादुःख खड़ा है। राग द्वेष और मोहका सन्निपात लगा है। जड़ पुद्गलोंकी माया जालमें फँसा हुआ है। जिस प्रकार का समझवालोंके लिए तीर्थ स्थान अनुपम प्रेरणा धाम है।

तीर्थोंकी तारकता असरकारक है। पारसमणि लोहेको सिर्फ लगाते ही सुवर्ण बना देता है। कोई पंक-मैल न लगा हो तो। तीर्थ आत्माको शुद्ध स्फटिक स्वरूप होनेका स्वाद चखाता है। कर्मों के बड़े बड़े ढेरोंको दूर कर देते हैं।

त्वके तेजका भान कराता है । सौम्य, सुन्दर, मनोहर आकृति जिन प्रतिमा प्रेरणाका पान कराते है । श्री नाथकी उत्कृष्ट आचरणका ख्याल होता है । समझ जागृत होती है । सत्यको खोजकी । दुष्ट आचरणकी रुकावट करता है । रणसंग्राम शुरु होता है । अनादि कालीन हठी कर्मो और सुरेख बने हुए आत्माके बीच ।

तीर्थंकर देवोके पांचों कल्याणकोंकी भूमिकाए-शत्रुंजय महातीर्थ जहाँ समोसर्या आदीश्वरदादा, पूर्व निन्यानवे दफे श्री गीरनारजी जहाँ दीक्षा, कैवल्य ज्ञान, ओर मोक्ष तीन कल्याणक श्री नेमिनाथके । और जहाँ भावी चोवीस तीर्थंकर मुक्ति पधारेगे । श्री शिखरजी-बीस तीर्थंकरोंकी मोक्ष गमन भूमि । सिवाय श्री शखेश्वरजी कुल्पाकजी आदि अनेकानेक तारक तीर्थ । कुल्पाकजीके प्रभुश्री भरत चक्रवर्तीजीके समयके ओर उन्होने स्वयम् कारित । ठीक नजदीक मे श्री भगवन्त महावीर का विशाल काय बिम्ब पीरोजी रग उनमे अनोखी चोकडियाँ । ऊध्व पद्मासन मे स्थित । भारतभरमें ऊध्व पद्मासन स्थित, अन्य प्रतिमा प्रायः अप्राप्त है ।

तीर्थ पावनकार । कर्मदाहक दावाग्नि । भावसे विधिसे पूजा की जाय वो परमात्माकी मूर्ति तारक तो होती है ही परन्तु उक्त भूमिका स्पर्श महौषधि है । वहाकी आबोहवा आत्म सुवास को खिला देती है । ऐसे पवित्र वातावरणको जमानने विषमें परिवर्तन करके पलटना शुरू कर दिया है । विलास और निमर्याद हावभावसे, पुण्यस्थानमें महामारक पापोका संग्रह होने लग गया है । तैरनेके स्थान पर डूब जानेका खेल शुरू हो गया है ।

उन जीवोका बडा गुनाह नहीं है, । भयकर वातावरणका जालिम असर है। माँ बापके अज्ञान और बेफिक्रीका यह परिणाम है। अज्ञान ही महापाप है। पूज्य मार्गानुसारी साधुओंका सम्पर्क नही। वाचन उच्च कक्षाका नही। मगर हो तो भी विस्कार प्रेरक और उन्मादक। उन्मादक विचारोमे मर्यादा नही टिक सकेगी। मर्यादाके सिवा आत्मा भटकते जानवर बनता जैसा है। तारक तीथ को छेदवाली नाव जैसा बना देता है। चेतनेवाले जीत जायेंगे।

१६०. 'छरी' पालता हुआ संघ।'

तीर्थयात्रा छ'री' का पालन कर के करनी चाहिये। पहले के समय मे और आज के काल में भी कोई कोई महाभाग सामुदायिक सघ यात्रा कराते है। उसमे छ मुख्य ध्यान देने योग्य बातें होती ह। और उनका पालन भी सविशेप होना है।

(१) भूमि पर सथारोकारी (२) नारीसग परिहारी (३) सचित्त परिहारी (४ एकन आहारी (५) पादचारी (६) उभय समय प्रतिक्रमणकारी।

इस तरह इन छ बातो मे करने योग्य करनेवाले, ताज्य योग्य का ताज्य करनेवाले, छ "री" पालन कहा जाता है।

(१) जमीन पर सिर्फ एकपटी गरम आसन (सथारा) और ऊपर चादर के स्थान पर उत्तरपट्टा बिछाकर सोना।

(२) स्वस्त्री का भी यात्रा दरमियान पूणत त्याग चेन-चेष्टा भी नही।

(३) सचित्त क्या ? जिस वस्तु में स्पष्ट-जीव शरीर का अस्तित्व है । जैसे कि वनस्पति अग्नि [illegible] और अनुभव है ? जैसे कि कच्चा पानी सचित्त है ।

ठीक अग्नि से परिपक्व बनकर अचित्त बन जाती है । फलादि के रस निष्पन्न हो जाने के बाद ४८ मिनिट के बाद अचित्त हो जाते हैं । सचित्त का उपयोग नहीं करने से स्वाद त्याग थोड़े से अंशो में हिंसा त्याग इत्यादि बहुत से लाभ हैं । त्यागवृत्ति सिद्ध होती है । यात्रा काल में सचित्त सर्वथा त्याज्य है ।

(४) एकल आहारी अर्थात् एक समय भोजन अर्थात् एकासणा जिसमें सचित्त तो त्याज्य ही होता है न ? क्यों कि पानी ठीक से तीन उबालों के बाद ही, उपयोग में लिया जाता है । साथ ऊणोदरी तो होती ही है न ? ऐसा नहीं कि एक समय का भोजन लेना है, इसलिये थोड़ा और दबाकर खा लें । ऊणोदरी के साथ एकासणा याने, तन-मन-आत्मा की प्रफुल्लता, धर्म आराधन में स्फूर्ति और सावधानी ।

(५) पादचारी : -किसी भी वाहन का उपयोग नहीं करना । पैदल ही चलना और वह भी जूते के बिना । निम्न दृष्टि से, साढे तीन हाथ की दूरी तक निगाह डालते हुए जीवदया के उपयोग के साथ । यह है महालाभ । 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' । टेकसी मोटर या बस, ट्रेन में क्या ऐसा लाभ सुप्राप्य है ?

(६) प्रतिक्रमण :—सांझ और सुबह का प्रतिक्रमण-[दोषों का परिमार्जन । भूले याद कर के उनका पश्चात्ताप । भूलों से पीछे हटना । फिर से न होने पावे उसकी सावधानी

के साथ। यह कल्याणकारी क्रिया जैन शासन में आवश्यक मानी गई है। इस की आचरण, वही है आत्मा की सुरभि। फुल भी सौगन्ध देने वाला पसन्द किया जाता है। परम प्रभुश्री की पूजा मे उपयोग मे लिया जाता है।

ये छ 'री" का पालन करना सघ उदारता का अनुपम प्रतीक है। सघपति, सुखी,यात्री, धन व्यय किया करते ही है। जीण मदिरो का जीर्णोद्वार, नव्य का निर्माण, जहां जरुरत हो वहां अवश्यमेव उपाश्रय। धर्मशालाओ का सर्जन, और सुधारणा,। साधार्मिको की भक्ति बहुमान पुरस पूर्वस्थितिमें स्थापना। दीन अनाथ का पालन-पोपण इत्यादि कार्य श्री सघ की यात्रा का गौरव बन जाते है।

सुबह मे चले और दुपहरी मे पहुचे। साझ होते ही लौंटे। इसमे क्या खास फायदा हो सके ? क्या इसके पीछे आत्म कल्याण की भावना होगी ? लाखो मे एकाद भी हो तो। एकाद का निपेध क्यो करें ?

१६१. "अट्ठाई महोत्सव।"

ये जैनशाला-ज्ञान शालाओ की जैनो का सक्रिय उदघाटन है। बालको के सस्कार केन्द्र है। जिन ही जगदउद्धारक देव उसका डिम् डिम् नाद है। आत्मानद के खिलते उपवन हे। सुवास फैलती है उसीमे से भक्तिभाव की। त्याग धर्म की बहते उपदेशपूर्ण झरने हैं। शांति और सहिष्णुताओ की पाठशालएँ हैं। आवाल वृद्ध आते हैं। गीत गान करती नवयौवनाएँ भी आती हैं। वृद्धामाताएँ भी आती हैं। अपने साथ उंगलियोके सहारे छोटी बच्चो को भी साथ में लाती

है । अँगरचना देखें, सब खुश हो जाय । यह तो चतुर्थ भाग भी नहीं है । श्री भगवन्तने कोटी गुनी मिलकत त्याग दी, राजगद्दी छोड दी, सगे सम्बन्धियों को भी छोड दिया । सुख और वैभव भी छोडे । संवेग का रंग लग गया । वैराग्य के फव्वारे चारों ओर बिखर उठे । साथ में चले राजा महाराजा शेठ याने सौदागर ऐसे मेरे नाथ । दर्शन हुए । पावन बने ।

राग रागिणी से पुर्ण संगीत के सूर, नाद नाभिमें से उठे । पंचम सूर से सब शान्ति अनुभव करे । सब एक ध्यानस्थ बन जाय । प्रभु ! तूहि, तूहि घर भूले जाय, व्यापार भूले जाय । भूले जाय सब झंझट । प्रथम पूजा हुअी । शहनाई गूंज उठी । नौबत-डंके के ध्वनि तालबद्ध बहता रहा । पूजा समाप्त हुअी । प्रभावना ले भाग्यशाली । प्रभावना । लेते है तवंगर, लेते है मध्यम, लेते है बाल । बालक बडे होने पर प्रभावना करता हुआ बन जाय ।

दान-शील-तप-भाव चारो धर्म, वहाँ एक साथमें मनाते है, पापों के ढेर भी नष्ट हो जाय । जहाँ तक बैठे, उतना पुण्य । इतना समय सांसारिक पापो से बचा ? धर्म तो भगवान का ही । छोटे-बडे, रुग्ण-नीरोगी, धनवान-गरीब, या सामान्य सब कोई उपासक बन सके ।

आरती कीजिये आरती कीजिये । यह लूण मिट्टी लाओ कांसेकी जोडी ताल बध्ध बजाईये । तालसे ताल मिलाते चलो । आत्माका मेल मिलता जाय किसके साथ ! नाथके श्रीनाथके साथ । मंगल दीप प्रगट बनाओ, घटानाद करो नरघाके तालके साथ । ओह ! कैसी धून मची है । क्या ऐसी मस्तीमें दुनिया नही भुला जाती है ?

"मेरे नायकी बधाई आज के उत्सव पर ? दीनानाथकी बधाई वाजे । आलापका सुर वातावरणमे गूँज उठे । आरोह अवरोह सबोको स्तंभित कर देता है । लयमे लयलीन बने सब जगत्पतिकी "जय" बोले ।

सुशील श्राविकाओके गीत शुरू होते हैं । गीतमे गुंजन होता है । चारित्र्यका और चरित्रका, नवो तत्त्वोके बोध होता है । तार सूर ज्ञानके तारसे एक ही बनते हैं । गरबाओकी धमाधम चले । त्रिशला नंद वीरकी प्रशंसा होती रहे । वानीमे रागिनी बजे । दांडीयायोमे रोनक आ जाए ! मानो स्वर्गमेंसे उतरती हुई, साक्षात् देवियाँ । दानी–शाली और संसारको पैरोसे ठुकराती हुई ।

संसार भुला जाय । आत्मानंदके झुलेमे झुले । मन प्रफुल्ल बने । मुझे मिला अब जोग जिन–भक्तिका । तत्त्वरससे दिल भर आता है । सब भावसे विभोर बनते हैं । ऐसे हैं हमारे अट्ठाई महोत्सव । थोडी सी विवेककी अपेक्षा होना आवश्यक है । सब शांतिमे बैठ सके इतनी बडी योजना होनी चाहिये । और तो बहुत –बहुत ।

१६२ "साधर्मिक वात्सल्य ।"

सार्वमिक वात्सल्य । शब्दो दोनो सुन्दर । मनको आकृष्ट करे ऐसे । मार्वमिक माने जिनेश्वरकी आज्ञामे संपूर्णश्रद्धा रखनेवाले । जिनआणा एक ही सार । मुझे तैरना है संसार । कैसी मधुर भावना ? जैसे दिलमे वैसे मुँहमे । नायके नाम पर मनडा न्योछावर हो जाता है । आज्ञापालनमे शूरा रे । शासनकी रक्षामे प्राण समर्पण कर दे । सात्त्विकी ऐसे समय

पर विसात भी क्या ? सार्धमिक माने आत्मीय प्रमोदका हरियाला स्थान । जीवंत भावनाका प्रतिक ।

सार्धमिक मिलने पर दुविधा दूर हो जाय मनको शांति मिले तन स्फूर्तिला बन जाय । आत्मा तैयार हो जाय । शासनके समाचारकी लेनदेन हो जाय । देवाधिदेवके गुणानुवाद हो जाय । परस्परके मन खुल जाय । अन्योन्य सहायक बनें ।

"श्री संघके कार्योंकी आज्ञानुसार विचारणा भी होती रहे ।"

ऐसी सुन्दर आत्माएँ अन्योन्यके प्रति एकमनवाले बनें । देखते ही दिलमे आनंद छा जाय । विकसित बने आँखें । प्रणामका ध्वनि गूँज उठे । सत्कार-सन्मान-बहुमान हो जाय वात्सल्यका दिव्य झरना बहने लगे । उसकी महेक गुलाब चंपा मोगरासे भी अधिक से अधिक व्यापक बने ।

श्रमण-सत्कार बनते रहे । आनंदित निमंत्रण दिया जाय । भ्रमका अनोखा हो जायँ । बैठनेके लिये गदी-तकिया बिछाया जायँ । भोजन के समय पर बडे थाल रखे जायँ । रजत-जर्मन सिलवर आदिके और पित्तलके । लोटे-प्याले-बिलकुल स्वच्छ जिससे चेहरे भी देखें जायँ । उबले हुए अपितु स्वच्छ और ठंडा निर्मल जल, निर्मल मिट्टीके बर्तनके क्यों न हो बर्फका नाम नहीं । ये हे तो जैनोंके भोजन ? स्नेह और भक्तिकी रोशनी । पांचो पक्वान अवश्य है । और पंदह भी हों । जिसको जो अच्छा लगे उसीका उपयोग कर सके शाग-दाल नमकीन चीजे भांति भातिके । परन्तु उपयोग करनेवाले वृत्तिसंक्षेपवाले । पाँच या दश चीजोंका नियम हों ! लीजियें आग्रह तो होता है, परन्तु स्वीकार करनेकी 'ना' कह दे ।

आग्रह होने पर कहना पडता है कि भाई द्रव्य पूरा हो जाय। परोसनेवाला शक्तिमे पूरा। भोजन करनेवाला त्यागमे न अपूर्ण।

ऐसी जोडी दुर्लभ बन जाय ऐसे। शासन के काम होते रहे। सब बैठे शान्ति से मुक्ति का धाम शान्ति है।

तांबुल मुखवास रखे जायँ। शक्ति अनुसार 'पहेरामणी सौगात-भेट। अलंकार भी दिये जायँ। रुपिया और नालीयेर भी दिया जायँ। एकला श्रीफल भी अच्छा लगे। वह तो रखता है सबोकी ख्याति। सब जिनदेव के गुण-गान राग से गाते हैं। जिनदेव के पास एक पैसा भी न मांगे। परन्तु मुक्तिके भाव जागृत बने ही बने।

ये हमारे धर्म-स्नेह के मेले। स्वाभाविक स्नेहके बौछारे। सदधर्म की ममता की परछाइयाँ। उक्त परछाई जिस पर पडे वह पावन बन जाय। मार्ग समझाय। विवेक जागृत हो जाय। कच्चा-न बना रहे। जूठा न रहे बर्तन-प्याले। थालियाँ प्याले स्वच्छ। मानो कि किसीने उन मे भोजन भी न लिया हो। जीवदया की रक्षा होती रहे। सही नागरिकता विश्व को सिखाई जाय। कन कन का सदुपयोग होता रहे।

धर्मयोग के आधार पर भिखमगो को भी भोजन मिल जाय। मिठाईयाँ भी हो, उनके उदर तृप्त हो जाय। आशीर्वाद देते हुए चले जाय। जिन भगवान की। 'जय' बोलते चले। कोई आत्मा धर्माभिमुख हो जाय। सम्यक्त्व प्राप्त और करे प्राप्त किये हुए दृढ बने। वात्सल्य का विपुल झरना सबो को पावन करें।

१६३ "एक अनोखा प्रकार।"

सार्धमिक वे सार्धमिक। भवपथ में जिस को मिले वह पक्का पुण्यवान, बारहव्रत धारी भी हों। सम्यक्त्व धर भी हों। परन्तु भगवन्त का सच्चा भक्त। सत्य का साक्षी। हस्ति अपितु उन्माद कर बैठे परन्तु सार्धमिक तो समता का सागर बना रहैं। ममता को मारने के लिए प्रयत्न करें। तैयार रहे क्रोध को निकालने के लिए। कर्मोदय के कारण अगर आ जाय तो सहन कर ले। क्षमापन माँगता बिलकुल देरी न लगे। दिल का साफ। चाहे वस्त्र से उतना उज्जवल न भी हो।

दान-शान और समझ से भरा हुआ। जिन गुणगान में मस्त। व्यापार करे। नौकरी करे। परन्तु ध्यान धरे हमेशा जिनदेव का। घर में हो या दुकान पर। या बालक अंकमें खेलता हो। परन्तु आत्मा मुक्ति में खेलता है। मन भावना से पूण। बालक में भी अरिहत का वास हों।

कर्मोदय का अब क्या कहा जायगा। स्थिति समय समय पर पलटती रहती है। कुटुम्ब पोषणका प्रश्न भी उपस्थित हो जायँ। परन्तु दिल न बिगडे। पुण्य-पाप के ओघ विचार में आते जाते है। वहाँ के प्रखर सार्धमिक घर पर आवे। उसका स्वागत हो जाय। एकाँत में बैठे। बहुत दबाव करने पर सही परिस्थिति जानी जाय। किसी भी प्रकार चिन्ता न रहने दे। यह भी है, साधर्मिक वात्सल्य।

सार्धमिक श्रीमत है। लाखों का व्यापार चलता हैं, व्यापार में यकायक नुकसानी आ गयी। घाटा भी बहुत बडा आया। अब तो इज्जत का—नौक का प्रश्न है। इसके

अलावा अज्ञानी मनुष्य धर्मनिंदा करे उसकी वह बात है, क्या किया जाय ? ऐ मोके पर दो चार भगवान के भक्त इकट्ठे हो, तो विचार विनीमय भी हो जाय कि श्रीमत सार्धमिक को उसकी इज्जत रखकर, खड़ा रखने की । सब पहुँच जाय सार्धमिक श्रीमत के वहाँ । इधर उधर की बातें करते निश्चिंत बना दे । लाख दो लाख देकर, कीर्ति उज्जवल रखे । बाजार में टिके रहे । कोई न जानने पाये । अल्प समय मे अपने पैरो पर खड़ा रह सके । पहले ही दफे पैसे वापस देने के लिए दोड़े जायँ । माननेवाले 'ना' भी कह दे । क्या उतावली है ? परन्तु खानदान ऋण देकर ही शांत हो जाय । उपकार को भी भूले नही । धर्मपर श्रद्धा कई गुनी बढ़ जाय । बहुतो का आश्रयदाता और भक्तिकारक बन जाय । तन-मन-धन जिनके चरणो मे समर्पित कर दे । सार्धमिक भाव इसी का नाम हैं । क्या मेरे भगवान का भक्त इतनी चिंता मे । सत्य का परमसत्य का उपासक और इतनी चिंता मे ! शक्ति होने पर भी थोड़ी देर तक, तो देखा भी नहीं जाता है । सहा नही जाता है ।

"वात्सल्यमूर्ति' वीरके सन्तान इतने सुहावने होते हैं । कोई भी धर्मकी भावनासे टूटता हो तो, धर्मकर्ममें शिथिल बन जाता हो, कोई प्रमादी बनता हो, सबोंको प्रेरणा करें । दृष्टांतो के द्वारा सतर्क बनावें । आवश्यकता पड़ने पर दो गरम शब्द बोलकर भी सही बात सुना दे । अन्यथा सान सही रास्ते पर ला दे । धर्म प्रेरणा यह लगन है । मेरा सार्धमिक अत्यंत माननीय है । "सार्धमिक मम सगपण न किम्पु ?" "सवासोमाकी टूक उसका जिता-जागता प्रतीक ।

१६४ "साधर्मिक श्राविका सधवा या विधवा ?"

जैन शासनकी समतुला आश्चर्यसे भरी हुई है। मर्यादा-बध्ध, समघोरण, सर्वतोमुखी प्रशसा पा सके। पुरुष या स्त्री रंक या राजा, तिर्यंच या मनुष्य सबकी कक्षाके अनुसार एक कक्षा अनुमोदनीय। कुदरती अनर और उनके रक्षात्मक व्यूह तो टिक रखनेमें सब कुछ करना। नहीं तो उत्पात और उल्कापात ही उत्पन्न हो।

सब भव्यात्माएँ मुक्तिकी लियाकत वाले ही हैं। वहाँ पुरुष और स्त्रीका भेद नही है। और तो शारिरीक वबारणीय दृष्टिसे अंगोपांगोकी दृष्टिसे-विभन्नताओंसे, अविकार भेद तो रहेगा ही। भरहेसरकी सज्झाय स्त्री प्रत्येका बहुमानका ज्वलत उदाहरण है। सती स्त्रियाँ मन-वचन-कायासे शीलका आचारण करनेवाली होती हैं। प्राण जाय तो जाने दे। परन्तु शील स्वरुप अखडित रक्षित रखेगी। ऐसी महासतियोके नाम, पूज्य पंच महाव्रतधारी साधु महात्मा भी सुबहमे प्रतिदिन लेते है। उसमे भी शील पालनकी स्वच्छ, आह्लादमयी, अनुमोदना है।

इसलिए ही जैन शासनमें सार्धमिक श्राविकाओंका भी संपूर्ण सन्मान होता है। वहां भक्ति-श्रद्धाका बहुमान है। जैनत्वके तेजका है। विधवा या सधवाका वहाँ प्रश्न ही नहीं है। इसके अलावा विधवाके प्रति अति आदर बतानेसे सद्धर्ममे अधिक स्थिरता होती है। आत्मामें सुन्दर परिणामोकी श्रेणी बढती रहती है।

सार्धमिक भाव, यह स्वपर, आत्म-उत्थानका एक स्तुत्य सोपान। धर्म धर्मीमे ही रहता है। सार्धमिक भक्तिमें धर्म

और धर्मी दोनोका आदर है ।

विधवापन वयो प्राप्त हुआ, वह तो उक्त श्रद्धावान श्राविका ठीक तौरसे समझती है । किये हुए कर्मोंका फल पहचानती है । नव तत्वोंकी ज्ञाता होती है । कर्म परिणाम पहचानती हैं । दिल शात होता है । ब्रह्मचर्यकी नवो वाडोमें आदर रखती है । जमानेकी जहरीली असरसे दूर होती है । अनादिकालीन घातक भव भ्रमणका भान होता है । जिनाज्ञाका अद्‌भुत अमृत आत्मामें रमण करता है ।

यौवन-प्रागणमें प्रवेश करती बाल कुमारिकाएँ जैन शासनका नूर है । पढी-लिखी और समझदार । आजकी अेज्युकेशन प्राप्त की हुई । ससार व्यवहारमे सभी प्रकारसे सुखी-सपन्न निरोगी-सुन्दर काया । ऐसी बालिकाएँ भी छोट देती है ससारकी माया । सयममे स्नेह जगाती है । साध्वी सस्थामें रहकर अभ्यास करती है । ज्ञान और क्रियाओंका । विहारकी भी तालीम देती है । तपकी तो आदत रखती ही है । मातपिता हर्षपूर्वक महोत्सव मनाते हैं । शोभायात्राके धर्म-वरघोडा भी निकालते है । यथाशक्ति वर्षीदानमे धनकी बौछारे उछालते है । लक्ष्मीकी असारता जाहिर करते हैं । साध्वी सस्थाके अकमें जीवन समपण करती हैं । आजके विश्वमे यह भी एक अजायबी है न ? विलासके महामारक युगमे,- मोज-शौक और अमन-चमनके उत्कट आकर्षणमे । जीवन न्योछावर कर देती हैं धर्मको ।

बादमे, विधवा श्राविकाओंके लिए सर्वोत्तम मार्ग बने ही बने । स्वका भाव हो, तब ही । शक्ति-सयोग और मनका शात वेग सहकार दे । बलिहारी है, जैन शासनकी । उसके

प्रणेता तीर्थंकर देवोंकी। मार्ग ऊर्ध्व गामी ही हो। तैरनेका ही साधन। सुख—शांति और समाधिका ही राह। अधःपातके मार्ग और साधन आजके जमानेको मुबारक हों।

१६५. 'जुलूसकी विशेषता"

रथयात्रा—जलयात्रा के जुलूस। तपके बहुमानके बारेमें। गुरू प्रवेश का आगत—सुस्वागतम्। श्री संघ प्रयाण की शोभा—यात्रा। ये हैं जैन शासन के भक्ति प्रसंग। अनुमोदन के द्वारा सम्यक्त्व की सन्मुख बना देने वले। इतरों को भी जिनदेवके सर्व कल्याणक मार्ग की ओर आकृष्ट करते है। धर्मी आत्माओ के उत्तम मेले सर्व कल्याणकर ही होते है।

निशान डंका बजता है। सबोंके ध्यान आकृष्ट होते हैं। कभी डका ऊँट पर या घोड़े पर—यांत्रिक वाहनमें भी। इन्द्रध्वज या धर्मध्वज सुहावना। मानो आकाशसे बातें कर रहे हो। श्री नाथका धर्म स्वर्ग में भी है। धर्म से मुक्ति मिलेगी। ऐसी बाते धर्मध्वज भी कर रहा है। सांबेला के सुमार नहीं। कोई चकोर घोड़े पर। चार घोड़े की बग्गी में। कोओी आधुनिक मोटर रीक्षा में। सबो का उत्साह बेसुमार है। क्या है, भाओी आज! वाह रे! हमारे भगवान का वरघोडा है। त्रिशलानन्दन महावीर का जन्म दिन है। सभी को याद आता है। सभीको स्मरण कराता है।

मस्तीमे ड़ोलते हुए गजराज। एक-दो-पाँच-कैसी बढ़ी हुती है शोभा। उन पर है बैठक सुबर्ण-रजत की—मखमल की। होददे, तो होते ही हैं। साफा-फंटा—जरी—कसबोंके—अलंकार—सुन्दर मनोरम्य—और बढ़े-चढे। मोती—माणेक—

हीरोके, देखनेवाले अभागी जीवोके दिल जल जायँ। परन्तु हम क्या करे। सब वनस्पतियाँ खिल उठती है। तब ज़ावासा सूख जाता है। उलटी प्रकृति का उपाय भी नही।

श्वेत कमल सा, सयम सुरभि से पूर्ण। मुनिवर महाव्रत धारी। मुख उनके स्नेहपूर्ण। साजन-महाजन बडा। पाघ— पघडिया अब देखने मे नही आयेगी। परन्तु उत्साह तो जरूर देखा जाएगा। छोटे—बडे सब आयेंगे। श्रीमन्त, मध्यम कोई भी बाकी नही रह पावे। मर्यादा का पालन अवश्य होगा। धनिको को प्रथम पक्ति मे रखे जायँ। पुण्य तत्व का बहुमान हैं न। सब बाते करे और दिल भर दिल बढने चले। शासन की स्मृति हो जायँ। पूर्वकालीन शोभा-यात्रा का स्मरण हो जाय। लक्ष्मीमद गल जाय दो पैसो के खर्च करने का कजूस को भी मन हो जाय।

प्रभुजी का रथ आ पहूँचा। रजत और मीनाकारी कला। खच पूरे किये है। कलाकृति का मानो परम धाम। शिखर सुवर्ण का। बैलो की ओर दृष्टि करो। हृष्ट-पुष्ट और मनोहर शृग भी नुकीले और सुन्दर। प्रभुजीकी मूर्ति देखी गई। 'मनोहर मूर्ति वीर की देखी' नयनो मे अमीरस धाराजी' तारक देव। मुक्ति पथ प्रेरक देव। चर्तुगतिवारक देव। सुरनरके स्वामी। सर्वज्ञ ही देव सभीको अच्छा लगता है, सब नमस्कार करते हैं। सबो के मनमे स्मृति रहती है। वे भवो मे न भटकते फिरेगे। आत्मोत्थान ही अच्छे लगेगे। भव ताप शान्त हो जाय।

साध्वीगण सुहावना। धूसर दृष्टि। दृष्टि करो नत मस्तक से। नमन कीजिये। तन, मन पावन कीजिये।

सुहावना नारी वृन्द। गीत गान गाता हुआ सुन्दर समूह। विविध वेशभूषा और अलंकारके तेज। आंखे नुकीली परन्तु निर्विकारी। दृष्टि अरसपरसमें परन्तु दिल तो प्रभुजी के ध्यानमें। गीत झीलाती है, कोकिल कण्ठी। सब झीलते हैं। और वन्दना करे श्री नाथजी के चरणों में।

वेन्ड के सूर होते ही है। भक्ति मंडलके दाँडीयारास और धून। बस, जहाँ देखो, वहां महावीर, नाम तो महावीर का और दर्शन भी महावीर का। ध्यान तो वीरके तपका। जुलूस माने ज्वलन्त जिन्दा सद्धर्मका प्रचार। सत्यके प्रति प्रेमका प्रतीक। प्रभावना है न? क्यों न हो? जैनों के किसी भी कार्यमें प्रभावना तो है धर्मका प्रतीक।

१६६ "प्रभावना"।

प्रभावना किसकी? जैन शासनकी! जैन धर्मकी। सनातन सत्यकी। जन कल्याण की। मूक प्राणी गजका भी कल्याणकी। सर्वतोमुखी फैलावा परम सत्यका वही ही है "प्रभावना न?" ऐसी प्रभावना बहुत रुपोंमें हो सके। बहुत आत्माएं धर्मके मर्मको पहचान लें। ऐसी योजनाएँ बनाकर। शासन समर्पित सिद्धांतनिष्ठ, आचार्यादि मुनिवरोंके, प्रवचन प्रसगोंका आयोजन रख कर। संपूर्ण श्रद्धावालोका-शास्त्र-ज्ञानी और पूर्ण एक निष्ठ और धर्मके रहस्योंको गुरुगणोसे प्राप्त, सुश्रावकोंके वार्तालापोका आयोजन रख कर।
प्रभुभक्ति-श्रुतभक्ति के शास्त्रानुसारी आयोजनों के प्रबंध कर के। साधर्मिक वात्सल्यों के प्रसंगों में, भक्ति गीतो या रासादिद्वारा।

ये, और ऐसे बहुत प्रसंगों द्वारा, आये हुए साधर्मिकों की

वैसे प्रकार की सुन्दर वस्तुओ द्वारा भक्ति, वह भी है "प्रभावना" । मेवे-मिठाईयां-श्रीफलादि प्रणाम करके नम्र भाव से अपण करे । लेनेवाले भी प्रणाम कर के प्राप्त करे । इतर भी आये होगे । उनको भी सद्भाव से दिये जायँ । देखनेवालो को भी अनुमोदना करने का मन हो जाय । बिल्कुल आवाज नही । सबो के मुखारविंद हसते ।

जिन जिन प्रसगों मे जो जो क्षतियां आयी हो, उनको दूर करनी चाहिये । परन्तु मूल तारक मार्ग कैसे बन्द किया जाय । मलम पट्टी से उँगली का दर्द-दु ख नष्ट न ही होता है । तब उँगली का ओपरेशन भी करना पडता है । अपितु हाथ काटा नही जाता है । धर्म की कोई भी क्रिया मे अगर शिथिलता घुस गई हो तो अवश्यमेव दूर करनी चाहिए । परन्तु क्रिया को लुप्त नही कर देना चाहिये । हर कोई धर्मप्रभावक वस्तु प्रभावना मे सम्मिलित हो जाती है ।

१६७ "श्री संघ पूजा"

यह एक महत्त्व का कार्य है । त्रिभुवनपति देवाधिदेव की सेवा मे तैयार बने रहते धर्म मे अतुल श्रद्धालु । प्रभुश्री की आज्ञा ही सही आज्ञा है । वैसा समझनेवाले । शास्त्र-सिद्धातो को सम्पूर्ण रीति से अमल करनेवाले । निष्ठावान ऐसे ऐसे आत्माओ का समूह हि हैं, "श्री सघ" ॥ बारह व्रतधारी भी होता है । शुद्ध सम्यक्त्व से शोभता हो । मार्गानुसारी गुणोंके साथ, जिनदेव को मानने वाले हो । ये सब सघ के भीतर आ जाय । ऐसे श्री सघ की भक्ति पूजा यह हैं जीवन का एक बडा मुनाफा-लाभ । जिन-भक्ति का भी पालन है ।

श्री संघ माने श्रमण प्रधान चतुर्विध संघ । चारों शासन के अंग । शासन को समर्पित । वह ही हे सत्य, और बिना शंकास्पद, जो जिनेश्वरोंने कहा हैं । ये विचार रोम-रोम ब्यापक बने रहे । धर्म की किसी भी प्रवृत्ति में, मार्गस्थ आचार्यादि मुनिवरों से ही पूछना चाहिये । उनका फरमान ही मान्य रखना । धर्म आराधन करने वाले को श्री संघ किसी भी प्रकार की सुविधा जरुरत पडने पर कर ही देता है ।

संयम के लिए सच्चे वैराग्यशील को सदा सहायक ही बने रहता है । आवश्यकता पडने पर, उसके कुटुम्ब का रक्षक, पालक श्री सघ ही बने रहता है । सातों क्षेत्रों की देखभाल विधि अनुसार श्री संघ रखता है ।

ऐसे श्री संघ की, हरकोई संसारी प्रसंग पर भी उसकी कुछ न कुछ सेवा अवश्य करनी चाहिये । अवश्यमेव यथाशक्ति । अधूना तो व्याख्यानादि प्रसागो पर, कपाल मै तिलक कर । रुपिया और श्रीफल अर्पण करते है, नमस्कार के साथ । यह प्रथा आज भी प्रचलित है ।

१६८. 'सात क्षेत्र"

सात क्षेत्र, प्रसिद्ध पारिभासिक शब्द है, श्री जैनशास्त्र मे सात माननीय स्थलो की भक्ति अब भी जीवन्त है । अवश्यमेव कमिनापन, तो आया ही है । उस मे खास करके जमाने का जहर और आजके युग की शिक्षा की भीतर की नीति मुख्यतः कारण है । सात क्षेत्र नीचे से ऊपर तक, एक से एक बढिया है । प्रथम के तीन पूज्य है । शेष चार पूजक है । इन चारों मे भी दो पूज्य और दो पूजक भी है

। बीज सुभूमिमें अगर बोया जाय तो उग निकलता है। इधर उधर फेंक दिये बीज' अधिकाधिक शकटोके शकट नाज उत्पन्न होता है। इन सातोमे व्यय किया हुआ धन, अनेक गुना बनकर फिरसे मिलता रहता है। इच्छा न करने पर भी। सिर्फ इस भव में ही नही, बल्कि आगामी भवोमे भी आगे ही दौडते हैं। अपितु आत्मा उन भवो मे कष्ट नहीं पाता है।

वे सात क्षेत्र क्रमश —जिनमूर्ति—जिनमन्दिर—जिन आगम—साधु—साध्वी—श्रावक—श्राविकाएँ हैं। आखिर चार का महा आलम्बन —मूर्ति है। मोक्ष की सीडी है। साधु या श्रावक सबो को त्रिकाल, उक्त आलम्बन की जरूरत है। देव मन्दिर हो और साधु दर्शन न करे, तो प्रायश्चित लगे, तो श्रावकके लिये क्या ?

'गाँव मे देरासरजी हो और दर्शन करने न जाय, तो जैन शासनका गुनाह बनता है, पाप का भागीदार बनता है।

श्री जिन आगम। भगवन्त त्रिपदी प्रकाशित करते हैं। गणधर देव प्रकाशन को द्वादशांगी मे गुम्फित करते हैं। उस पर निर्युक्ति—भाष्यचूर्णि टीकाएं रची जाती हैं।

उस पर उन उन देशोंकी भाषाओमे 'टबा' भी लिखे जाते हैं। परन्तु सबोको मूल अर्थोको अनुसरना पडता है। अपनी इच्छा के अनुसार अपना स्वयम् या बाहरी कोई विचार मनस्वी रीतिसे लिखना या जोड देना नहीं। दो या तीन मत दीखनेमे आ जाय, तो एक ही वाक्य। "तत्त्व-बिलकुल सही मर्म-तो केवली भगवन्त ही पहचाने।' यह है, आगम ज्ञान पहचाननेकी या पढने की सफलता।

शेष दो पूज्यों की पूज्यता जग प्रसिद्ध देदिप्यमान है। पूज्यों, के प्रति दोनों वर्ग की उपासकता, आजके विषम कालमें भी देदिप्य मान है। सातों भी सद्धर बेंक के समान हैं। कदापि न डुब जाय। दशगुना या सोलहगुना तो सामान्यत: वापसी रुपमें देते रहे। कदापि सौ गुना या हजारगुना या असख्य गुना भी दे तो आश्चर्य भी नहीं। परन्तु इस बेंक में वापस लेनेकी इच्छा से भेंट देनेसे तो नुकसानी। सर्वश्रेष्ठ मुक्ति का फल न पा सके। शांति-समाधि बीच के भवमें न मिल सके। क्या यह कम नुकसान है। त्याग-विराग-शम संवेग-संवर ये पाँच फल प्राप्ति, उक्त सातों क्षेत्रोंकी कृषिकी फलश्रुति है।

१६६ "अनुकम्पा"

सात क्षेत्रोंकी शोभारुप यह एक अनुमोदनीय क्षेत्र है। धर्मका शणगार है। शणगार इस तरह नही कहना जाता हैं कि इसे शरीरको हर्ज हो जाय। शरीर कुरुप बने। ठीक वैसे ही धर्मके प्राण नष्ट हो जाय। धर्म दुर्बल बन जाय। या धर्मके छोटे-मोटे सिद्धांत या आचरण को हर्ज हो जाय उक्त प्रकारकी अनुकम्पाको अनुकम्पा ही न किया जा सकता है।

अनुकम्पा अर्थात् जिसमें अपनी आत्मा, परके दुःख देखकर कम्पने लगे। शक्ति अगर हो या साधन हो, तो, अवश्य दुःख दूर करे। सामनी व्यक्ति का दुःख दूर करे, तब ही अपनेको शांतिका अनुभव हो। धर्मी आत्माका धर्म ही उसकी आत्माको चैन न पडने दे क्योंकि धर्मके आचरणमें ही दयाका आचरण तो है ही। दया और दान मानव आत्माके शणगाररुप हैं। इन दो गुणोंमेंसे अन्य बहुत गुण उत्पन्न होते हैं।

दया की जागृति हुई। शक्ति हे, इसलिये दान अवश्यमेव

होंगे ही होंगे । दयामेंसे आविर्भाव हुआ दान, मान-न उत्पन्न होने दे । मान मिलेगा अवश्यमेव । अभिमान न आयगा यह निश्चित बात है। **दया देवी है, दान वरदान है ।** दान देनेवालो को वरदान मिल चुका है ही सबसे बडा वरदान ससार से मुक्ति । मुक्ति न मिले वहाँ तक, देव-मानवके विना माँगे हुए सुख । अपितु सुखसे वाधित नही हो जाता है । दानवृत्ति वढती चले । सासारिक आसक्ति कम होती रहे । मस्त आनदमे विरमे ।

आज दयाके नाम पर दम्भ भी चलता है । दयाके नाम पर सिर्फ स्वार्थ साधना भी हो रही है । परन्तु इससे दया के गुण को नही भुला जा सकता । उमकी उपेक्षा नही की सकती है । दयाके नाम पर अंधेरेमें देखनेवालोको स्वयम् ही धोखा मिलता है । दया करनेवालोको फायदा मिलता ही है । पहला लाभ आत्माको सतोष और समाधि । एक शुभ कर्तव्य कर्मांनुष्ठानका आनद । प्रकृति तत्त्वके पथका प्रयाण ।

भूखा हुओको अन्न, तृषितोको पानी, नग्नोको अग ढकने के लिए वस्त्र । आश्रय विहीनो को आश्रय दिया जाय । ये सब द्रव्यदया गृहस्थोंके लिए जरुरी है । मगर भावदया पर कुठराघात करनेवाले विश्वका अमगल कर रहे हैं । भावदया जननी है । द्रव्यदया उमकी छोटी घुमक्कड लडकी है । फिर भी एक बडा कौभाड खडा हुआ है । यह तो प्राय नव्वे से निन्यान्बे प्रतिशत जनसमाजका वर्ग समझता भी नही है ।

अनुकम्पाके मही धर्मकी प्राप्ति करनी है । तो उक्त कौभांड भी समझ लेना चाहिये । राजकीय षडयन्त्र और वह भी अन्तर राष्ट्रीय कक्षा पर यह एक बडा तूफान है इरादा पुरस्स योजनाएँ निकालना । बहुतसे युद्ध खडे करते रहना । जो हुकमी हुक्म निकालते रहना । लोगोको हाँकते रहना ।

निराश्रित बना देना बादमें निराश्रित सहायक-फंड= निधि इकट्ठ करते रहना, ईस पर विचार करो कितना किसको पहूँचता होगा ? वह जाननेवाले ही जान सकते है। ईस तरह लोगोका ध्यान जागृत बनते, सही अनुकम्या लुप्त हो गई है।

सचमुच, सही जरुरतवाले दु.खी ही रहते है। लम्बी कतारें कृत्रिमरीति से खडी कर रखी है। साथ ही साथ भयंकर महँगाओी ओर बेकारी खडी करे ही जाना। इसलिये ही लोगोंका दयाभाव सागर में लुप्त हो जाय। बाद में धर्म कार्यो की निंदा करते ही रहना। इस तरह धर्म विमुख बनाते चलना। और अनुकम्पा भी विलुप्त हो चुकी। वाह, रे! कौभांड।

द्रव्यदया की सही रक्षक पालक माता भावदया। आत्मा के स्वरुप को पहचाने। उसके दिल में भाव दया जागृत होती ही है। जड का बल भी पहचान लें। आत्मा का अनादि का पतन परख लें। उत्थान के प्रयत्न करें। यही भावदया को परख सकेगे। ससार बुरा और धर्म अच्छा, जन्म-मृत्यु के चक्कर कठिन। अजन्मा बननेका वही श्रेष्ठ उपाय है। तहि सर्वतोमुखी, हमेंशा की; सुख-शांति-समाधि मिले-स्थिरता करे और अनुभवी भी सके।

यह समझ ऐसी है। संपत्ति विपत्ति के समान लगती है। सुख पाप के मूल समान लगे। दुःख से न डरे। सुख मे मति डोले नही प्राप्त शक्ति का सदुपयोग। तन-मन-धन का व्यय उदारता से करें, दीन की दया ऐसों के दील में खीले। उदार हस्तों से दुःखी के दुःख दूर करें। दानशालाएँ पहले इस भाव से उत्पन्न हुई थी। परन्तु उसमें। सिर्फ भोजन तृप्ति। साथ में सुबोध की सरणी। आडम्बर नहीं। दूषणों का जन्म

नही । दभ नही । वडाई नही । स्वार्थ नही । नि स्वार्थ नम्रभाव की सिर्फ सेवा ।

१७०. "उपधान तप"

उपधान भावानुकम्पा का उत्तम प्रकार है । तपधर्म का आचरण है । सर्वविरति महालय मे प्रवेश करने का एक अनोखा द्वार है । जिन कथित ज्ञान की विधिपूर्वक की आराधना है । प्रभु आज्ञा का द्रव्यभाव पालन है । शरीर शक्ति के मापदण्ड के लिए एक प्रेक्टीकल प्रयोगशाला है ।

४७/३५/२८/दिनो का उपधान तप होता है । इन तीन हफ्तो से सूत्रज्ञान का प्रकाश मिलता है । ४७ दिनो के, तो बालक से वृद्ध भी करते हैं । श्रीमत-समझदार करवाते हैं । अन्यो को करने की सुविधा करवा देते हैं । अशक्त श्रीमत वर्ग बडे उमग के साथ करवाते हैं । अनुमोदना करे न ?

शरीर और लक्ष्मी दोनो से अशक्त सिर्फ अनुमोदना प्रशसा करे ही करे । निजरा साधे । पुण्यानुबन्धी पुण्य प्राप्ति करे ।

पू आचार्य मुनिवर उपदेश देते हैं । विधियाँ बतलाते हैं । करवाते भी है । ४७ दिनो तक जिन कथित धर्म का प्रवाह वहता रखे । वाचन करे, सूत्रो के अर्थ-भाव और मर्म भी समझावे । आराधक गृही, स सार भी भूल जाय । बाहर की सब झझट भूल ही जाय । कितने ही सयमी बने । कितने ही सम्यक्त्व को प्राप्त करे । सत्य नीति के मार्ग पर चलने के लिए सब समाज-जागृत बने ।

सुबह ब्राह्म मुहुर्तकाल मे चार बजे उठे । प्रतिक्रमण-देववदन-पडिलेहण-सौ लोगस्स का काउस्सग्ग-सौ खमासणम-२० नोकारवाली—माला । व्याख्यान-देवदर्शन करे और पुण्य

के ढेर भरें। कर्मों को निर्जरें। उपवास के दूसरे दिन निवी-एकासणा। दुपहर में एक बजने पर।

मिठी-मिठाइयाँ लालची बनवा दें इसलिए? क्या जीह्वा के स्वाद के लिए? करो तो सब प्रकार का ख्याल आ जायगा। और तो और देश-विदेश के लोग आये हैं। महाराष्ट्र - खानदेश - गुजरात काठियाबाड-झालाबाड-बंगला इत्यादि। सबो की अभिरुचि, शरोर प्रकृति, स्वास्थ्य लक्षी होती है। किसी को अरदकी या किसी को मुंगकी दाल पच जायँ। किसी की जठरा को तुरदाल ही अनुकूल आयें। फिर ४८ घंटो के बाद ही खुराक लेना है। सुबह चार से नौ तक एकदम-सतत क्रिया चलती है। बहुतशः खडे पैरों पर और खमासमणा देकर।

बाल-युवा-वृद्ध भी हो। कडक या नम्र और निर्बल शरीर वाले भी हों। किस को कौन सी चीज पथ्य बने? अन्यों के लिए अन्य इसलिए बहुत सी वानगी चीज वनती हैं। शरीर टिका रखने के लिए शक्ति के सदुपयोग को भी लक्ष में लेना चाहिये। तपस्विओं के प्रति भक्ति उभडती है।

चीजें ३५ बनती है। उपयोग करनेवाले पाँच या सात के नियम करते हैं। नीवि के दिन, आयंबिल भी करते है। आँख और दिल खुले होते है, उनको स्पष्टरुप से दीखा और समझा जाता है।

भक्ति करनेवाले. किस लिये, कसर रखे। उसके मनमें ऐसे प्रसगों में लक्ष्मी तो ककर के समान है। विलकुल तकलीफ, तपस्वीओं को न हाने दों। विवेक न चुके। तपस्वीओ के शरीरो के स्वास्थ्य को नुकसान कारक बहुत तीखे, गरम, पदार्थ न परोंसे जायँ, जिन से उन्हें सिर्फ नाम की क्षुधा-कृत्रिमता से भूखद लग पावे।

और तो उपधान, तो इस काल के लिए सविशेष कर के तारक चीज बन जाती है। प्रभावक भी होती ही है। बहुतों के आत्माओ के दिल मे धम प्रत्ये की सद्भावना पैदा करती है। बालको को उच्च कोटी की खिलती सस्कार भूमि है। सचमुच ही धर्मराजा के सूरभि से भरा हुआ बाग हैं ?

१७१ 'देवद्रव्य ।'

दीक्षा की कक्षा का ही श्री संघ का पवित्र प्रश्न। देव को समर्पित हुआ। देवलक्षी द्रव्य, वह है देवद्रव्य। देव तीर्थकर। च्यवे स्वर्ग में से तब से ही तीर्थकर की गणना। च्यवन जन्म-दीक्षा-कैवल्यज्ञान और मोक्षगमन पाँचो कल्याणक सुरनर सब मनाते हैं। खुश होते हैं, नाचते हैं और वाजित्र भी बजाते है। कल्याणक माने आत्म कल्याण साधने के लिए श्री तीर्थंकरगत सविशेप दिन।

श्री तीर्थंकरो का आत्माएँ माता के गर्भ मे आते है। तीर्थंकरत्व सूचक, चौदह तेजस्वी स्वप्न माता देखती है। पर्युषणादि प्रसगो मे भी ये सूचक चिह्नो का बहुमान होता है। श्री प्रभुजी विश्वकल्याणकारी पधारे, इस की मगरूरी में उसके आनन्द में उछामणी बोलकर भावपूर्वक एकैक स्वप्नो का और उक्त विधिका बहुमान होता है। तीर्थंकर लक्षी होने के कारण ही देवद्रव्य माना जाता है। बाद मे पागल प्रश्न करना कि क्या भगवान को राजऋद्धि देवद्रव्य न मानी जाय ? एक उनमत्त आत्माने, वहाँ तक लिख डाला कि क्या देवीजी श्री यशोदाजी देवद्रव्य न माना जाय ? खैर, यह तो है, आज के अज्ञान का एक मात्र दृष्टांत।

पूजादि प्रसगो में, अष्ट प्रकारादि की बोली, बोली जाती है। प्रतिष्ठा अजन शलाका के प्रसग पर लाखो की आय,

देवद्रव्य की होती है । इन्द्रमाल-तीर्थमाल-उपधानी माल-प्रसंगों में धर्मात्माएँ- बहुत धन खर्च कर के देवद्रव्य की वृद्धि करते हैं । और इस तरह वे सर्वश्रेष्ठ संस्कृति को जीवंत रखते हैं ।

इन सबों के लिए, शास्त्रोंमें-स्पष्ट मालूम हो जाय, इसलिए उल्लेख और सादी समझ दी गाई हैं । परन्तु यहाँ उसकी गहराई में नही जायेंगे सिर्फ़ देवद्रव्य क्या है ? और कितना आवश्यक है ? इतना ही लिखना गनीमत है । मतलब कि जिन मदिर में या बाहर धार्मिक स्थल में, देव के अनुसधानमें जो बोली बोली जाती है, रकम दी जायँ । भेट में दिये जायँ । ये सब देवद्रव्य कहा जायगा ।

और तो देव वीतराग है, उन को द्रव्य क्या ? ऐसा न बोला जाय । देवसत्क द्रव्य ऐसा जरुर बोला जाय । उनका उपयोग जहा श्रावक समर्थ न हो वहाँ जीन बिम्ब-पूर्ति करने या जिर्णोद्धार या नूतन मदिर निर्माण में उपयोग में लिया जायँ । और तो देवद्रव्य का निधि, और साधारण का निधि । दोनों निधियाँ दर्शनीय है । उनका उपयोग आसमानी सुल्तानी के समय के ही करना चाहिये । और वह भी शास्त्राज्ञा अनुसार । तदुक्त विधि के अनुसार करें ।

अवश्यमेव आज के काल में, उनका संचय न करने पर शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार, उपयोग कर डालना चाहिये ।

"सब द्रव्य-देवद्रव्य एकी साथ व्यय कर दे जायँ, तो भी जीर्णोद्धार के कार्य पूर्ण करने में प्रश्न उपस्थित रहेगा ।"

अपितु प्रश्न खातिर मान लीजिये कि अगर उनमें से थोडा सा बच गया, तो आवश्यक नव्य निर्माण तो पूरे नहीं

होंगे ही । ऐसे पवित्र देवद्रव्य का ससारी उपयोग ससार वढाने वाला ही बन जाय उस मे आश्चर्य भी नही है ।

'देवद्रव्य सम्यक्त्व का रक्षक है ।"

यह वात तुरन्त ही नही जँचेगी । परन्तु आज देवालयो की रक्षा-जीर्णाद्धार देवद्रव्य होने से ही होती है, यो तो बहुत से तीर्थ, और जिनालय धराशायी बन चुके हो । क्योकि अपनी लक्ष्मी का व्यय इस महातारक स्थानो मे करनेवाले बहुत कम सख्या मे ही हैं ।

'दानके प्रवाहको भक्तिके मार्गमेंसे हटानेके चक्र बडे जोरोंसे गतिमान वन चुके हैं । 'कृत्रिम उपद्रव हटानेके नाम पर मारक साधन खडे करनेका प्रचार बहुत चलता है । मानव-मन चलित भी हो जाता है ।

जहाँ बिलकुल साधन भी नही हैं । श्रावक होने पर भी निगरानी नही है, क्योकि नाम-मात्र श्रावकत्व रह पाया है । वहाँ कतिपय व्यवस्था देवद्रव्यसे ही चलती है । पोपती भी हैं । और जिनालय तो आत्माके आश्रयस्थान भी है, भौतिक-जडसे धर्मात्माको मन-चेतन-आत्माकी कीमत अवश्यमेव अधिक ही होती है । आत्माकी जडीबुट्टी के समान देवालय हैं ।

जहाँ देवालय होते हैं, वहाँ पूज्य साधु-साध्वी गण भी अवश्य आते हैं । जीवोको बोध प्राप्त होता है । नये आत्माएँ धर्म मार्गमें प्रस्थान करे । सोते हुए प्रमादी जागृति बने । अतमे कुलव्रतका भी ज्ञान हो जाय । धर्मपालन-रक्षण दोनो फिरसे वेगवान बने । शुद्ध परम्परा रक्षित बने रहे । सर्वोत्तम जीवन मार्ग, पीढी प्रत्येक पीढी वढताही चले । इससे कौनसा दूसरा बढकर लाभ है ? इससे देव द्रव्यसे सम्यक्त्व, सम्यक्त्वमे से दान और दयाकी अद्भुतता आविर्भूत होती हैं । और जन्मती भी

रहेगी। देवद्रव्य सम्यक्त्व सर्जक रक्षक और प्रचारक भी है।

१७२ "चंदोके निधि और निधियाँ"

चदोके निधि-निवियॉ-प्रसंग पर आवश्यक भी बने रहते हैं। परन्तु उसकी व्यवस्था उसकी इकठे करनेकी रीति ? एक प्रसंग बहता चला। सौ निकल पडे। अपनी अपनी रीतिके अनुसार। कौन कौन निकले। कितना किया ? किससे और कोनसी संस्था को सौप दिया ? संस्था भी क्या सही या बोगस है ? मै-बावा-और-मंगलदास-ऐसे जनोंने उपस्थित की हुई है क्या ? ऐसे बहुतसे प्रश्न खडे हैं।

अपितु योग्य संस्थामें इक्टठी हुई रकम का क्या ?

कुर्सी, टैबील, और ऑफिस खर्चमें कितने व्यय हुए ? और ध्येयलक्षी आर्त मानवोंको कितना पहुँच सका ? चदों के निवियाँ का अपव्यय हो चुके है ? इकटठे हुऐ चदे गायब हो गये ? ये सब यों कैसे बन पावें। सुव्यवस्थित योजनाके अभावसे। इसलिए स्वयम् जाकर अपने ही हाथों से उस व्यकितको पहूँचा दो। परन्तु वैसी फुरसत कितनोंको ?

परन्तु उसका अर्थ यह नहीं है, कि सही प्रसंग पर, चंदेमें कुछ नही देना परन्तु व्यवस्थित पद्धतिसे इक्टठा करना और वितरणके लिए सुव्यवस्थित होना आवश्यक है। अपितु अपवाद के रुपमें दूषण, उक्त मार्गको रुकावट नहीं करेंगा।

परन्तु उन सबोंके लिए दिलमें मानवताका स्थान होना आवश्यक है। **मानवता-धर्म के निम्न स्टेजका उत्थान हैं। परन्तु मानवताके नाम पर, आत्मिक उत्थानको छेद देनेका प्रचार, वह सिर्फ पागलपन ही है।**

आत्मिक समक्ष ही मानवता को टिकानेवाली और पोषण करने-वाली है ? चदोमें धन देनेवाले भी बहुतश धर्मी वर्ग है। यह एक सत्य हकीकत है।

१७३ उत्थान-पतन-उत्थान

महाभयकर हैं, भवके फेरे। मिटाते ही मिटनेवाले नहीं मनको भी अच्छे न लगे। अपना छोर छोडेंगे भी नही। कर्मके बधन कपरे। नये नये उत्थान पतन होते रहे।

आत्मा अनादि कालीन है। कर्म भी अनादि कालीन है। आत्मा और कर्मका जोग-सबध अनादिसे ही है। कर्म जडपुद गलोंका समूह-आत्मा चेतन। असख्य प्रदेशी। जडके चेतन-परका जोर-जमाव, यही है ससार। ससार और बिना कर्मके यह बात बन ही नही सकती है। जीवात्मा मुक्त और जन्म लेना ही पडता है, वह बात ही गलत। जैन शासनकी बात ही बडी है। न माननेवालोको पड कर्म की मोटी।

निगोद अनादिकी। उनमे अनत जीवात्माएं।

असख्यात गोले निगोदके। एक एक गोलेमें असख्यात निगोद एक एक निगोदमें अनता जीवात्माएं। वाह! जैन शासनकी सूक्ष्मता। अनादिकालसे अनतानत जीवात्माएं निगोदमें व्यतीत किया।

एक आत्माकी सिद्धिमें एक जीव निगोदसे निकला। जिसकी भवितव्यताका सुन्दर परिपाक निष्पन्न हुआ हो, वही ही निकल पावे न ? अव्यवहार राशीमेंसे व्यवहार राशीमे आये हुए माने जावें। इत्यादि सूक्ष्मता बहुत ही बहुत समझने योग्य ही है। सूक्ष्म अनत कायमेंसे बादर अनत कायमें। जिनके शरीर दिखे जाते हैं। परन्तु एक ही शरीरमें जीव तो अनत ही होते है। जैसे की मूर्दगो मोक पर ४० फ्रा कदम्ब, आजके विज्ञानके-

देखनेमें आते हैं। और तो निगोद तो न देखा जाय। न जले न शस्त्र घात भी लगे, अपितु एक श्वासोश्वासमें भव साढे सत्तर। अति सूक्ष्म गहरा, सर्वदर्शी ज्ञान ही यह निरीशणमें समझ सके। देख सके कह सके, वही है कैवल्य ज्ञान न ?

सूक्ष्म अनतकाय कहो। फिर असख्यात काल २-३-४ इन्द्रियोंमें और संमूच्छिंम पचेन्द्रियोंमें भी पार हो सके। बल्कि पचेन्द्रि तीर्यंच भी वन सके। क्रूरता प्रायक होती ही है। शेर—वाघ—सर्प चिता—ऐसे होते हैं न ? नरक गमन अनिवार्य बन जाय। थोडे ऊँचे पहुँचे हुए जीव अवः पतनमें गिरे। फिरसे बहुतः पशु—पछिओमें बादमें नर्क या निगोदमें भी हो आत्मा काल असंख्य, अनंत दुःखके सागरमें ही डूब रहता।

उनमेंसे कुछ उच्च कक्षा पर आते मनुष्य भवमें आ जाते है। परन्तु पारधी—शिकारी—कसाई—मच्छीमार भी वन जायँ। फिर भी नरक या तीर्यंच्के फेरे। यातनाऐं असंख्यातीत इस तरह पतनका चक्र काटते महामुसीवतसे पूर्णकरके ब्राह्मणादि व्यवहारमे अच्छे माने जाने वाले कुलोंमें आ जायें। परन्तु यज्ञादि, देवीभोग और क्रूर धर्मका आचरणसे वही ही नरकादि दुःखोमें कर भवभ्रमण करता रहे।

परन्तु कुछ कर्मो कमी वनते तीर्यंच या मनुष्य भवमेंसे निम्न कोटिकी देवयोनीमें भी जाय। वहाँ बड़े चक्कर काटते अल्प बहुत समय वितावे। ऐसे करते करते जैन कुलमें भी जन्म पा ले। देव—गुरु—धर्मकी सत् सामग्री भी मिल जाय। परतु बदनसीब तो कमनसीब ही बना रहे, श्रद्धा बढ़े ही नही। अभिमानी सीना तानकर ही धूमता रहे। मै बोलूँ वही ही सत्य। बस डूबा। और चले फिरसे चौरासीमें। वहाँसे असंख्य, अनत कालके बाद मनुष्य जन्म प्राप्त हो जाने पर भाग्योदय फलदायी बने।

जैन कुलके अच्छे सस्कार प्राप्त हो जावे । सद्गुरुके वचनमे श्रध्घा हो जाय । यथाशक्ति आचरणमे भी रहे । आयुष्य समाप्त होनेके बाद वैज्ञानिक श्रद्धावान देव बन जाय। भवितव्यता सुन्दर बन गई । श्रद्धाकी सही चिनगारीसे आत्मा जागृत बन गया । देव मनुष्यके भव हो जाय । श्रध्घा - सवेग —विराग वढता चले । प्रथम सघयण युक्त मनुष्य भव मिले । सयम निरतिचारोका पालन करें । क्षपक श्रेणी शुरु कर दे । वीतरागी बन जाय । निर्मोही बने । तेरहवे गुणस्थान पर कैवल्यज्ञान प्राप्त करें। आयुष्यकी समाप्ति पर अजन्मा बनकर चिदानदपदका भोकता बने ।

यह तो है अति स्थूलसे "पतन और उत्थान" की सामान्य रेखाकन । सचमुच तो यह विषय दिलको कम्पा देनेवाला है । वैराग्य पैदा करके, जहां खडा हो वहांसे, सीधा साधुके चरणमे भेज दे वैसा है । सविग रगशाला ही आत्मामे खेलती बन जाय वैसा है । परन्तु दिल पर मेल लग गया हो तो क्या हो सके ? कानमे अगर वहरा हो तो, दुदुभिके नाद भी क्या कर सकें ?

१७४ "शासनपतिके अनंत उपकार"

और तो त्रिभुवनपति, त्रिशलानदन, शासनपति, महावीर देवने तो अनत उपकार विश्व पर किया है । बारह बारह वर्षोसे भी अधिक कठिन तपश्चर्या की । दुःखोंके पहाडके पहाड गिर पडे । समता सागरने सबकुछ सह लिये । आंख की पलके भी ऊंची न की । कइयों की दया दिलमे भरी कमियोंका अपनी उपस्थितिसे उद्धार किये ।

आवेश मे आये हुए को ज्ञान की सखावत की । नही, नही, अपनी कक्षा तक के बना दिये । शासन के महत्व सुकानी बना दये ।

केवल्यज्ञान का प्रकाश विश्व पर फैला दिया। शुद्ध अहिंसा, निर्मल सयम-निरीह तप के परम सत्य विश्व को निस्वार्थ रीति से निष्पक्षपात से समझा दिये। अतिम समय पर १६ प्रहार की अखंड देशना। ४८ घण्टों की सर्व कल्याणकारी एकधारी वाग्धारा। अनंत उपकार! अनत उपकार? अखूट भाव दया। अत्रूट भाव दया।

शांति-सुख-समाधि, अनंत काल के लिए स्वयम् स्वीकार लिया। जिन को प्राप्त करनी हो, उनके लिए सरल-स्पष्ट-सुविधा से परिपूर्णं मार्ग बतलाते गए। और वह भी जीवन में आचरण कर के। पूर्वभवन अपना पतन-उत्थान स्वमुख से प्रकाशित कर गये। लोकोत्तर पुरुष! लोकोत्तर दिल? लोकोत्तर आचरण। उदारता अलौंकिक अपितु मार्गं मर्म भरा। कर्म का अंतक. मोह का मारक, मुक्ति वरमाला पहनानेवाला।

यह है, शासनपति की स्वल्प गीति। यह छोटा-सा ग्रंथ। बन सके जो प्रभुमार्ग का रथ। महासागर का बिंदु तो नहीं ही, परन्तु बिंदु की शीतल छाया भी आलेखनमें से जन्में, तो जन्म सफल। महाफलदायी प्रभुश्री का शासन। उस में जमा देना है, स्थिर आसन। जिससे सिर पर न रहे, कोई भी दुन्यवी शासन। सिवा के जिनाज्ञा ओर गुरुदेव की कृपा।

आज भी शासन जीवन्त ही है। क्यों कि जिनाज्ञा को श्रध्धा और पालन जीवन्त है ही। मार्गस्थ श्रद्धेय पूज्य महात्मा आज भी शासन की गहरी खानमें से, पैदा होते ही हैं। अनमोल ज्ञान खजाना। सर्वतो मुखी विषयों की स्पष्ट चर्चा, और जगततारकता की अभेद्य भावना छलाछल भरी हुओ।

१७५ "ॐ" ह्रीं में क्या है ?

ॐ शब्द पचपरमेष्ठि सूचक है। अ+अ+आ+उ+म् का पचाक्षरी समावेश हो जाता है। व्यापक है। नाभिकी गहराई से नाद निकलता है। एक ही साथ पांचो परमेष्ठि भगवतोका बीजयत्र है। मुक्तिदायी है। मुक्तिभावनासे ही उच्चारण करना है। अखड नादका द्योतक है। जिसे अच्छा लगे वह भवमे न भ्रमण करे। जो उनकी गिनती करे उसकी जपे वह मोहके सामने युद्ध करता रहे। जप करने वाले के दिलमें खेलता ही है। वह मुक्तिमहेलमे आनद करे।

"अ" मे अरिहत है। दूसरे 'अ' मे अशरीरी सिद्ध है।
'आ' कारमे आचार्य है। उ' उपाध्यायका सूचक है।
'म्' मुनि महाराजका प्रतीक है। पांचोके १०८ गुण हैं।
१०८ मणकोकी माला-नोकारवाली होती है। १०८ जाप होता है।

नवकारके प्रथम पांचो, पदोके साथ 'ओम्' लगाकर जप होता है। पांचो ज्ञान विशद रूपसे प्राप्त होता है। पचाचारका ज्ञान कराता है। पांच महाव्रतोकी प्राप्ति और पालन सुलभ और सुकर बनता हैं। भावना मुक्ति प्राप्तिकी दिलमें होनी चाहिये।

"ह्रीं" कार प्राय दिलसे उच्चार किया जाता है। अन्तरगत मृदुता है। २४ सो तीर्थंकरोकी व्यवस्था है। वे भी बीजाक्षर महातारक मत्र है। "ॐ" के पीछे उसे भी जोडा जाता है। असे अनुपम बीजमत्र आत्माके उत्थानके लिए अपूर्व साधनके रूपमे हैं।

पांचो परमेष्ठि भगवत, चोबीस तीर्थंकर देव दिलमे बस जाये। उनके सब कर्म दूर हट गये। वे जीवात्माए सिद्धिमें जा बसे। आपकी क्या भावना ? १७५ छोटे विषय जान—

विचार कर क्या करना है हमें ? कह दीजिये । उदात्तभावसे बोल दो ।

संसार सागर तैरना है । भवभ्रमण दूर करना है । बुरे कर्मोको हंमेशाके लिए दूर करना है । अनंत कर्मोका अंत लाना है ।

एही भावना और वैसी ही भावना भवपार करेंगे । "मान लिया संसार का अन्त हुआ ।" गौरववन्ता जिनराज मिला । "भावना भवनाशीनी" भावना आत्मा का बल है । परिणाम—अध्यवसाय अमल में रखने का वेग है । वेग, जितना ही बलवन्त, उतना ही निजरा वेगवन्ती । सम्भवित बन्ध, पुण्यानुबन्धी पुण्य का । गुणस्थान प्रत्ययी । और वही पुण्य अध्यवसायके लिए साधक बल है। खेर, बाद में भव की परम्परा ही नहीं । भव भी अल्प फलस्वरुप भवच्छेद ।

सभी आत्माएँ परम प्रभु श्री महावीर के परम शासन को समझो धर्म लगन की हेली–मस्तीअे चढो । दुष्कर्मो को दूर रखो । सुपुण्य का उपार्जना करो । निर्जरा साधक परिणाम की धारा की बढती में ही रहो । क्षपक श्रेणी का सर्जन करो । निर्मोही बनो । कैवल्यज्ञान प्राप्त कर लो । सिद्धिपुरी श्री नाथजी के साथ स्थायी बनकर रहो । अनंत सुख में हमेशा के लिए विलसते ही रहो । वही है अभ्यर्थना ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

दो लब्ज

मुझ प्रारभमें याद करना चाहिए पू मुनिराज श्री रत्नभूपण विजयजी महारा्जको स्व पू -आचार्य देव श्रीमद् विजयजितमृगांक सू. म. के वे सुशिष्यकी उपकारक प्रेरणासे यह लघुग्रथ, अल्पक्षयोपशम होने पर भी आलेखनका दील हुआ ।

प्रेरणा मुझे नितान्त उपकारक हो गइ । आलेखनके समय नव्य नव्य प्रकास गभीर सूत्रोमेसे प्राप्त होनेका सद्‌भाग्य खिलता रहा । 'श्री राजनगर जैन प्रश्नोत्तर माला'में से ठीक प्रेरणा मिली इस वजेसे उन लेखक महाशयोकी अनुमोदना घटित है ।

आलेखन करते हुए नई नई घटना दील-दीमाकमें पेदा हुइ । मगर मेरा सार्वीय आधार-स्टेन्ड पोइन्ट मेरे भवोदधितारक परमोपकारी आराध्यापाद श्रीमद् विजयरामचन्द्र सूरीश्वरजी महाराजाकी 'गणधरगुम्फित वीतराग वाणी' मे हि सदा स्थित है । यह प्रकाशनमे वे हि प्रकाश प्रधान कारण और फलरुप कार्य बना है ।

क्षतिया शायद होएगी किन्तु सैध्धान्तिक दृष्टिकी प्राय नहि ऐसा मेरा आत्मविश्वास है । फिर भी छद्मस्थ प्रायोग्य क्षतिया सुधारनेये लिये और सार्धमिक भावसे सूचन करनेके लिये विज्ञप्ति ।

अन्य मनस्क गतिमे उपयोग चूकनेसे मनागपि सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्षति सर्वज्ञ भगवतके सिद्धातसे हो गई हो उसका मिथ्यादुष्कृत देता हु ।

श्रमण सघ सेवक

मुनि भुवनचन्द्रविजय.

ज्ञानपद भजना रे

ज्ञान और सम्मक्. ज्ञान मिथ्या. मोक्षलक्षी ज्ञान सम्यग्. संसारलक्षी-संसारवर्धक ज्ञान मिथ्या. मिथ्या हेय. समयग् उपादेय.

यह लघु ग्रंथ 'जैन धर्मका विज्ञान' सम्यग् ज्ञानका अंग हैं. मोहजन्य उन्मार्गी ज्ञानकी विकृतियां समजाके, शुध्ध आत्मज्ञानको भव्यात्माओके दीलदिमागमें स्थित करनेकी शुभ कोशिष है :-सुदेव-सुगुरु-सद्धर्म-साधर्मिक-सत्क्रियाका पक्का ख्याल पेदा होता है. हेय-उपादेयका भान खडा होता है. आचार विचार कर्तव्यकी जागृति पेदा होती है. तीर्थो-पर्वो-पच्चकखाणकी समज आती है. शुद्ध दृष्टिकी भौगोलिक व्यवस्थाकी रजुआत होती है. साधर्मिक वात्सल्य-नोकारसी जमण-अट्ठाई महोत्सवकी का सुन्दरता और साधकता का चित्र खडा होता है.

विशेषतः आजके अेज्युकेटेड वर्गको और सामान्य जनताको महासंस्कृति और पायेमें ढवराइ हुई आर्यसंस्कृतिका आदर्श और मार्ग की समजके साथ अमल करनेकी इच्छा पेदा होवे, वेहि शुभ हेतुसे यह ग्रन्थमालाका प्रारंभ हुआ है ।

६०००. नकल गुजराती भाषाकी शायद जनताके पास पहूंच गई । यह १५०० नकल हिंदीमें प्रगट हो रही है । विना मूल्यसे वितरण हो रहा है । ५० या १०० नकल मूल्यसे दी जाती है. वे हि मूल्य दुसरी आवृत्तिको जन्म देती है ।

लेखक मुनिश्री के भवोदधितारक परमोपकारी गुरुभगवंत शास्त्रसिध्धांतसंरक्षक समर्थ गच्छाधिपति आराध्यपाद श्रीमद् विजयरामचन्द्र सूरीश्वरजी महाराजाकी 'गणधर

गुम्फित' वीतराग वाणीकी प्रसादी रूपमें यह ग्रन्थमाला पेश होती है।

'उत्सूत्रके जेघा पाप न कोनसा भी' यह पवित्र चेतवणीका सूर लेखकश्रीके वजेसे, हमारे दीलदीमाकमें जागृत है. फिरभी किसी भी क्षति या प्रेसदोष ध्यान पर लानेवाले महानुभाव आत्माके हम ऋणी बने गे

ज्ञानकी, गति सरल, मायासे पर, निर्दंभ ही होनी चाहिए. ज्ञानदीपक है सूर्यसे ज्यादा प्रकाशक ज्ञान है सद्गुरूगण दीवादांडी है. उसीके आधारसे भवसागर पार करना है यह भान-सान-ज्ञान जीवत बन रहे फिर क्या आत्माके लिये संसारसागर दुस्तर है?

ग्रन्थमालामे सदा सूचक, सहायक याने प्रस्तुत ग्रथके प्रेरक पू० विद्वान आगम प्रेमी मुनिराजश्री, रत्नभूषण विजयजी म की और अन्याय द्रव्य द्वारा याने शुभ लागणीयो के द्वारा-सहायक आत्माओकी विशेष अनुमोदना

राग-द्वेष-मोहसे सदा पर सर्वज्ञ वीतराग परमात्माकी आज्ञाको शिरसावन्द्य बनाके, विश्वके आत्माए श्रेय साधक बने-ये ही अभिलाषा

प्रकाशको.